उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

पद्य साहित्य -।। एवं लोक साहित्य

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एच0पी0 शुक्ला निदेशक,मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
प्रो.आर.सी.शर्मा हिन्दी विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़	
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा0 राजेन्द्र कैड़ा एकेडेमिक एसोसिएट हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2014
सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
ISBN - 978-93-84632-66-3

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डा0 शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	1
प्रो0 चन्द्रकला त्रिपाठी हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी	2
डा0 बीना पाण्डे बरेली, उ0प्र0	3
डा0 समीर पाठक हिंदी विभाग,फ़ैजाम पी0जी0 कॉलेज, शाहजहाँपुर उ0प्र0	4,5,6
डा.हेमचन्द्र दुबे हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गरूड़ ,बागेश्वर	7,8,9,10,11
डा0 नागेन्द्र प्रसाद ध्यानी उप-निदेशक, उत्तराखंड भाषा संस्थान देहरादून	12,13,14,15,16,17

खण्ड 1 – स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता : विभिन्न प्रवृत्तियां	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 1 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य	1-24
इकाई 2 अज्ञेय : पाठ एवं आलोचना	25-41
इकाई 3 मुक्तिबोध : पाठ एवं आलोचना	42-73
इकाई 4 शमशेर : पाठ एवं आलोचना	74-94
इकाई 5 श्रीकान्त वर्मा : पाठ एवं आलोचना	95-125
इकाई 6 केदारनाथ सिंह : पाठ एवं आलोचना	126-150
खण्ड 2 – कुमाउनी लोकसाहित्य का परिचय	
इकाई 7 कुमाउनी लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरुप	151-165
इकाई 8 कुमाउनी लोक गीत : इतिहास, स्वरुप एवं साहित्य	166-186
इकाई 9 कुमाउनी लोक गाथाएं : इतिहास, स्वरुप एवं साहित्य	187-207
इकाई 10 कुमाउनी लोक कथाएं : इतिहास, स्वरुप एवं साहित्य	208-222
इकाई 11 कुमाउनी लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियां	223-234
खण्ड 3 – गढ़वाली लोक साहित्य का परिचय	
इकाई 12 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरुप	235-250
इकाई 13 गढ़वाली लोक गीत : स्वरुप एवं साहित्य	251-276
इकाई 14 गढ़वाली लोक गाथाएं : स्वरुप एवं साहित्य	277-298
इकाई 15 गढ़वाली लोक कथाएं : स्वरुप एवं साहित्य	299-318
इकाई 16 गढ़वाली लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियां	319-339
इकाई 17 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं	340-357

इकाई 1 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

इकाई की रूपरेखा

1.1.प्रस्तावना
1.2.उद्देश्य
1.3.हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य
1.3.1काल विभाजन एवं नामकरण
1.3.2मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर
1.3.3आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठ भूमि
1.3.4 राजनैतिक परिस्थिति
1.3.5 आर्थिक परिस्थिति
1.3.6 धार्मिक परिस्थिति
1.3.7 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति
1.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ
1.4.1 राष्ट्रीयता
1.4.2 समाज- सुधार
1.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन
1.4.4 विमर्श केंद्रीयता
1.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्त्व
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से आप आधुनिक हिन्दी कविता से परिचित होंगे। इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों से परिचित होंगे। इसके अतिरिक्त आप यह भी जान सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ कौन से रहे हैं। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर पद्य (कविता) की दृष्टि से विचार करने पर सबसे पहले यह बात स्मरण रखनी चाहिए की आधुनिकता का प्रवेश गद्य के माध्यम से हुआ, कविता तो बहुत समय तक

पुराने ढंग की चलती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए आधुनिक काल को 'गद्य काल' कहा है। मध्यकालीन प्रवृत्ति के केन्द्र में भक्ति, आस्था विश्वास, नीति और श्रृंगार रहे हैं, जबकि आधुनिक प्रवृत्ति के केन्द्र में तर्क, विचार, वर्तमान बोध रहे हैं। विचार मूलतः गद्य में ही हो सकता है, कविता में नहीं। कविता मूलतः भाव को लेकर चलती है, संवेदना को लेकर चलती है, इसीलिए कम शब्दों में बिम्बात्मक रूप में उसे भावना का प्रसरण करना होता है। अतः कविता विचार पैदा करने का कार्य नहीं करती । विचार पैदा करने का कार्य गद्य की केन्द्रीय विशेषता है। आधुनिक काल का प्रवर्तन इसीलिए गद्य के माध्यम से हुआ। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि सारे ज्ञान-विज्ञान, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र के विषय, गणित गद्य में ही लिखे जाते हैं, पद्य में नहीं। यह गद्य और पद्य का मूलभूत अन्तर है। हिन्दी कविता के प्रारम्भ की दृष्टि से विचार करें तो खडी़ बोली हिन्दी कविता का इतिहास 'भारतेन्दु युग(1850) से होता है। लेकिन इस युग में कविता में ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही। कविता का विषय भी भक्ति, नीति और श्रृंगार बने रहे। खडी़ बोली कविता का प्रयास भारतेन्दु हरिचन्द्र ने किया, लेकिन उनका मूल चित्त भक्ति-नीति और श्रृंगार का ही था। 'द्विवेदी युग' (महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में इसे 'द्विवेदी युग' 1900-1920) में कविता खडी़ बोली हिन्दी में प्रारम्भ हुई, थोडी़ बहुत आधुनिक भी हुई। इसके पश्चात् छायावाद युग, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता मोहभंग की कविता, उत्तर-आधुनिक कविता जैसे कई मोडों से हिन्दी कविता गुजरी। हर युग की कविता अपने स्वरूप एवं प्रवृत्ति में अलग है। पिछली इकाईयों में आपने हिन्दी कविता और आधुनिकता पर विवेचन किया। इस इकाई में आप हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों का विश्लेषण करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आगामी चार इाकइयों की पृष्ठ भूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। इस इकाई के अन्तर्गत हम हिन्दी कविता के नामकरण, काल सीमा निर्धारण, आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों को जानने से पूर्व हम आधुनिक साहित्य पद्य के काल विभाजन एवं नामकरण को जान लें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई में आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया हैं इसके पूर्व आपने आधुनिकता की अवधारणा, आधुनिकता के आधार विचारक एवं दर्शन, आधुनिकता की पृष्ठ भूमि तथा आधुनिकता के साहित्यिक संन्दर्भों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन पिछली इकाई में किया है। इस इकाई में आप आधुनिक कविता की मूलभूत विशेषता से अवगत हो सकेंगे। आधुनिकता के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- आधुनिक हिन्दी कविता के काल-विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- मध्यकालीन कविता एव खडी बोली कविता का मूल भूत अन्तर समझ सकेंगे।

- आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता के पारिभाषिक शब्दों एवं मुहावरों से परिचित हो सकेंगे।

1.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, विशेषतय: पद्य हिन्दी साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। प्रायः युग कविता के नामकरण पर ही रहे हैं। आधुनिक हिन्दी कविता का विकास क्रमशः हुआ लेकिन वह अपने युग-समाज की सार्थक अभिव्यक्ति सिद्ध हुई है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का खा़सतौर से पद्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके, इसके लिए आवश्यक हैं कि हम आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण और काल विभाजन को जान लें।

1.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण

आधुनिक हिन्दी साहित्य के पद्य का काल-विभाजन एवं नामकरण की समस्या उलझी हुई है। आधुनिक साहितय का प्रारम्भ जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 1900 (ईसवी में 1843, क्योंकि संवत् ईसवी से 57 वर्ष ज्यादा होता है) से मानते हैं, वहीं डॉ0 नगेन्द्र 1868 ईसवी से। रामविलास शर्मा के लिए केन्द्रीय बिन्दु 1857 की क्रान्ति है, वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 1850 ईसवीं को सुविधाजनक तरीके से आधुनिकता का केन्द्र बिन्दु निर्धारित करते हैं। मिश्रबन्धुओं ने 1833 से 1868 तक के समय को परिवर्तनकाल कहते हैं वही डॉ0 नगेन्द्र 1843 से 1868 ईसवी तक के समय को 'पृष्ठभूमि काल'। तात्पर्य यह कि 1843 से भारतेन्दु के रचनाकाल (1868 ईसवीं) तक के समय में आधुनिकता का वैचारिक आधार स्पष्ट हुआ, अतः भारतेन्दु काल से हम आधुनिक कविता का प्रारम्भ मान सकते हैं। लकिन इस सन्दर्भ में हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि 1850 या 1868 से 1900 तक को समय पद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है, बल्कि गद्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पद्य की दृष्टि से तो 1900 ईसवी के बाद महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक काल का प्रारम्भ 1900 ईसवी से माना है, जिसे हम पद्य के सन्दर्भ में निर्धारित कर सकते है। अतः हम चाहें तो 1850 से 1900 ईसवी तक का समय आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। संक्षेप में हम यहाँ आधुनिक पद्य के विभिन्न मोड़ों की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

1850- 1900 (पृष्ठभूमि काल)

1900- 1918 (द्विवेदी युग)

1918-1936 (छायावाद युग)

1936- 1943 (प्रगतिवाद)

1943- 1951 (प्रयोगवाद)

1951- 1959 (नयी कविता)

1960- 1964 (अ- कविता)

1965- 1975 (मोहभंग की कविता)

1975-1990 (जनवादी कविता)

1990- अब तक(उत्तर-आधुनिक कविता'/ विमर्श केन्द्रीत कविता/समकालीन कविता)

काल विभाजन एवं नामकरण की यह रूपरेखा सुविधाजनक है। इतिहास में कोई समय/काल निश्चित हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे हिन्दी कविता के प्रारम्भ की हम बात करें तो 1850 से 1900 ईसवीं तक के समय को हमने 'पृष्ठभूमि काल' कहा है, जबकि इसी समय आधुनिक हिन्दी गद्य का समुचित विकास होता है। 1850 से 1900 ईसवी के मध्य की भी बात करें तो इसी समय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लगभग 70 कविताएँ खडी़ बोली हिन्दी में लिखीं थी। इसके पश्चात् श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से 1886 ईसवी में किया था। इसके अतिरिक्त श्रीधर पाठक की स्फुट कविताओं का संग्रह 'जगत-सचाई-सार' 1887 ईसवी में प्रकाशित होता है। स्पष्ट है कि 1900 ई0 से पूर्व खडी़ बोली हिन्दी में काव्य रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः इस युग को काव्य रचना की दृष्टि से 'पृष्ठभूमि काल' कहना सार्थक है। नामकरण के सन्दर्भ में 'भारतेन्दु काल' को पुनर्जागरण काल तथा द्विवेदी युग को 'सुधार' काल भी कहा गया है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में जागरण एवं सुधार की प्रवृत्ति मुख्य रूप से थी, इसलिए उपर्युक्त नामकरण किया गया। 'छायावाद' के सन्दर्भ में विचार करें तो इसे 'स्वच्छंदतावाद' भी कहा गया है। डॉ0 बच्चन सिंह 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण को ज्यादा अर्थगर्भित मानते हैं, क्योंकि 'छायावाद' केवल कविता का सूचक है। जबकि 'स्वच्छंतावाद' में गद्य औेर पद्य दोनों आ जोते हैं। वस्तुतः 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ है। शुक्ल जी पश्चिमी रोमैंटिसिज़्म के हिन्दी पर्याय के रूप में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'छायावाद' और 'स्वच्छंदतावाद' में बुनियादी अन्तर है, इसलिए हम यहाँ 'छायावाद' नामकरण को ही प्रमुखता दे रहे हैं।

कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या के सन्दर्भ में 1935 से 1945 तक के समय को 'प्रगतिवादी एवं 'प्रयोगवाद' कहा गया है। इसी समय दो काव्यान्दोलन और चले। सन् 1935 के लगभग हरिवंशराय बच्चन के प्रतिनिधित्व में 'हालावाद' आन्दोलन आया, जो उनकी चर्चित कृति 'मधुशाला' के पश्चात् उत्पन्न हुआ। इसी समय 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' नामक अन्य काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह, दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा, नीवन इत्यादि थे। अब समस्या यह हैं कि 'हालावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', तथा 'राष्ट्रीय-

सांस्कृतिक कविता' का रचना काल प्रायः एक ही हैं, फिर किसे हम काल-विभाजन के केन्द्र में रखें। इतिहास में कभी-कभी दो धराएँ समानान्तर रूप में चलती हैं, हिन्दी की उपर्युक्त काव्यधाराओं के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है।

सन् 1960 के बाद की कविता को 'साठोत्तरी कविता' भी कहा गया है और अ-कविता' भी। एक नामकरण में 'काल' को आधार बनाया गया है, दूसरे नामकरण में साहित्यिक प्रवृत्ति को। 1960 से 1965 के आस-पास 64 काव्यान्दोलनों की सूची जगदीश गुप्त जी ने दी है। इन्हें आन्दोलन कहना भी उचित नहीं है। ये मात्र मत-मतान्तर हैं। 'नयी कविता' के समय (1951-1959) के बीच सन् 1956 में 'नकेनवाद' नामक आन्दोलन भी चला, किन्तु इसमें भी व्यापक जीवन दृष्टि का अभाव था। इसी क्रम में 'मोहभंग की कविता' नामकरण भी निर्विवाद नहीं है। काई इसे 'नक्सलवाड़ी कविता' कहता है, कोई 'भूखी पीड़ी आन्दोलन'। सन् 1990 के बाद के समय को कोई उत्तर- आधुनिक समय कहता है, कोई 'समकालीन'। अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि काल-विभाजन एवं नामकरण का प्रश्न निर्विवाद हो, यह सम्भव ही नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आधुनिक चेतना लाने में गद्य का क्या योगदान है? लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक वर्ष निर्धारित करने की समस्या लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश पद्य के माध्यम से हुआ।

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'गद्य काल' कहा है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ 1900 ईसवी से मानते हैं।

4. आधुनिक साहित्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं।

5. छायावादी काव्यान्दोलन का समय 1900 से 1930 इेसवी तक है।

1.3.2 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर

जैसा कि पूर्व में आपने पढा़ कि मध्यकालीन हिन्दी कविता की दो धाराएँ रही हैं। पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा गया है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की सामाजिक चेतना में बुनियादी अन्तर है। भक्तिकाल के केन्द्र में ईश्वर-भक्ति है तथा रीतिकाल के केन्द्र में राजा-श्रृंगार। भक्तिकाल सामाजिक - ऐतिहासिक बोध से युक्त है तथा रीतिकाल ऐन्द्रिय सुखों के प्रति आग्रही। दोनो वर्गो की सामूहिक प्रवृत्ति को हम केन्द्रित करें तो पूरे मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता भक्ति-नीति-श्रृंगार निर्धारित होती है। वहीं आधुनिक पद्य के केन्द्र में ईश्वर की जगह मनुष्य, भावना-भक्ति की जगह विचार एवं तर्क, नीति की जगह कार्य-कारण भाव संबंध तथा अलंकार की जगह बिम्ब ले लेते हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति भक्ति के संदर्भ में ज्यादा होती है। श्रेष्ठ पुरूष या ईश्वर की हम अतिश्योक्ति पूर्ण प्रशंसा या स्तुति करते हैं। अतः स्तुति-प्रशंसा में अलंकार का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है। आधुनिक काल की कविताओं में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य एवं भाव की जगह विचार ने ले लिया। विचार का वहन अलंकार नहीं कर सकते। विचार के लिए बिंब की उपयोगिता बढी़। बिंब का काम चित्र निर्मित करता है। बिंब संवेदना से जुड़े होते हैं। बिंब भावना का बिंब आन्तरिक रूप होते हैं। आधुनिक पद्य की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन आप आगे की इकाईयों में विस्तार से करेंगे। अतः यहाँ संझेप में यह विवेचित किया गया कि मध्यकालीन कविता की चेतना में भक्ति एवं श्रृंगार केन्द्रीय विषय वस्तु रहे हैं तथा आधुनिक कविता की ऊर्जा तर्क एवं बुद्धि रहे हैं। इसीलिए आधुनिक पद्य में ईश्वर के स्थान पर 'मनुष्य' स्थापित होता है। पुराना 'मानवतावाद' अब 'मानववाद' के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। 'मानवतावादी' में ईश्वर, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्रकृति सबके लिए जगह है। सबके लिए सम्मान, स्नेह, प्रेम एवं आदर का भाव है, लेकिन 'मानववाद' मनुष्य केन्द्रित दर्शन है। प्रकृति के सारे मूल्य- नीति मानव की उपयोगिता से संचालित होते हैं, यानी मानव ही सारी चीजों का नियन्ता है। इन सारी अवधारणों का सम्बन्ध आधुनिक काल के पद्य पर पड़ता है, जिसके कारण यह मध्यकालीन पद्य से अलग हो जाती है।

1.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध व्यापक रूप में आधुनिकरण की प्रक्रिया से है। आधुनिकीकरण का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के आगमन से माना जाता है। (हाँलाकि रामविलास शर्मा इसको आधुनिक काल कें पूर्व से ही मानते हैं) अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज जड़, एकरस, बन्द समाज था। हिन्दू धर्म जड़ता, अंधविश्वास से घिरा हुआ था। मुगल वंश के हास के साथ ही मुस्लिम सत्ता भी छोटे-छोटे टुकडो़ं में विभक्त हो गई थी। हिन्दू और मुस्लिम धर्म सामंतीय समाज थे। जबकि अंगेज यानी ईसाई संस्कृति पूँजीवादी विकास का आग्रह लेकर भारत आई थी, इसलिए उसमें एक आकर्षण था। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों के रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-विचार, साहित्य-संस्कृति, शिक्षा-कला में परिवर्तन होने लगे। शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यवसाय, समाजिक नियम- कानून, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा आधारभूत भौतिक विकास जैसे- सड़क, नहर, रेल, तार, डाक सेवा आदि में

मूलभूत परिवर्तन उपस्थित हुआ। सारे परिवर्तनों पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। शिक्षा-पद्धति, धर्म, प्रेस तथा कानून- प्रशासन पर दूरगामी प्रभाव पडा़। मुस्लिम धर्म के सत्ता में रहने पर भी हिन्दू धर्म पूर्ववत बना रहा, क्योंकि मूल रूप से दोनों संस्कृतियाँ पिछड़ी-सामंती संस्कृतियाँ थीं। लेकिन ईसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति की टकराहट से एक नयी ऊर्जा पैदा हुई, जिसे कुछ लोगों ने ‘नवजागरण’ कहा है तो कुछ ने ‘पुनजागरण’। आधुनिक हिन्दी पद्य के स्वरूप निर्माण में इन बदली हुई परिस्थितियों को महत्त्वपूर्ण योगदान था। अतः यहाँ हम यूरोप से आ रही ‘आधुनिकता’ के कारणों को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

1.3.4 राजनीतिक परिस्थिति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। आधुनिकी करण की प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यापार से है। 1498 में वास्कोडिगामा के समुद्री मार्ग से भारत आने की घटना के पश्चात् व्यापार को और बढा़वा मिला। वास्कोडिगामा ने यहाँ के कई राजाओं से व्यापारिक संधि की और कई फैक्टरियाँ स्थापित की। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व पुर्तगालियों का अधिकांश पश्चिमी समुद्र तट पर वर्चस्व स्थापित हो गया था। 1600 ईसवीं में अंग्रेजों द्वारा स्थापित ईस्ट इंडिया कम्पनी का शुरू में उद्देश्य तो व्यापारिक था किन्तु क्रमशः उन्होंने राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया। पुर्तगाली एवं अंग्रेजों को व्यापारिक-राजनीतिक लाभ लेते देखकर डच और फ्रांसीसीयों ने भी भारत आकर व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने लगे। प्रारम्भ में इन सभी का उद्देश्य व्यापार कर लाभ कमाना था किन्तु बाद में ये भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगीं। पुर्तगालियों ने गोवा, दमन और द्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित किया, फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी, चन्द्रनगर एवं माही में अपना उपनिवेश स्थापित किया। किन्तु इनमें सबसे अधिक सफलता मिली अंग्रेजों को। 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भ से लेकर 1757 ईसवीं के प्लासी युद्ध तक अंग्रेज इस स्थिति में आ चुके थे कि वे पूरे भारत पर शासन करने का स्पप्न देख सकें। सन् 1757 ई0 में जनरल क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रजों ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की लडा़ई में हराकर अपनी सैनिक ओर कूटनीतिक ताकत में काफी इजा़फा कर लिया था। सिराजुद्दौला की इस हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। सन् 1764 ई. में बक्सर युद्ध में मुगल सम्राट शाह आलम भी पराजित हुआ। इस युद्ध के बाद बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा अवध का नवाब उनके हाथों की कठपुतली बन गया। सन् 1765 इसवीं में शाह आलम के कडा़ के युद्ध में पराजय से उसी शक्ति पूरी तरह समाप्त हो गई। इस पराजय के पश्चात् मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उडी़सा की दीवानी अंग्रेजों को सुपुर्द कर दी। सन् 1793 ई0 में अंग्रेजों ने मैसूर शासक टीपू सुल्तान को पराजित कर आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक तक अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों को दो शक्तियों पर वर्चस्व स्थापित करना शेष था- वे शक्तिशाली साम्राज्य मराठे और सिक्खों का था। आपसी फूट-संघर्ष के कारण 1803 के उसी तथा लासवारी युद्ध में तथा 1818 के चार युद्धों के बाद

मराठों की शक्ति क्षीण हो गई। 1849 ईसवी में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् तथा सिक्खों को पराजित करने के बाद लगभग सम्पूर्ण देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। रही-सही कसर लॉर्ड डलहौजी की विलय नीति ने कर दिया। विलय नीति की प्रतिक्रिया रूपरूप हुए 1857 के संघर्ष के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया।

1857 ईसवी तक सम्पूर्ण भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन चुका था। पराजय- बोध ने भारतीयों के मन में राष्ट्रीय बोध बन कर उभरा। हिन्दी साहित्य पहली बार तत्कालीन समस्याओं से जुड़ा- यह जुड़ाव गद्य के माध्यम से हुआ, पद्य के माध्यम से नहीं। यह सही भी था क्योंकि विचार जल्दी बदलते हैं, संवेदना बाद में ढलती है। लेकिन यह समझना भूल होगी कि पद्य में बदलाव की प्रक्रिया थोड़े बाद में शुरू हुई। अनायास नहीं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र की कविता में राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति का इन्द्व देखने को मिलता है।

1.3.5 आर्थिक परिस्थिति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज में ग्रामीण- कृषि प्रधान व्यवस्था थी। भारत के गाँव आर्थिक रूप से स्वावलम्बी थे और अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे। भारतीय गॉवों की अपरिवर्तनीय स्थिति पर चार्ल्स मेटाकफ ने लिखा है- ‘‘ गाँव छोटे-छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जीती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे। ’’

प्रारम्भ में अंग्रेज कम्पनी का उद्देश्य व्यापारकि था, किन्तु बाद में उन्होंने इस देश को अपना बाजार बनाया। भारत के उद्योग -धंधों और हस्तशिल्प को नष्ट करके अंग्रेजों ने यहाँ के बाज़ार को अपने अधीन कर लिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र तथा उनके सहयोगियों ने विदेशी आर्थिक शोषण का उल्लेख किया है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप् ब्रिटेन में कच्चे माल की खपत/ माँग बढी। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना कच्चा माल इग्लैण्ड को देना पडा। उसी कच्चे माल की खपत भारत के बाजारों में होने लगी। कच्चे माल से निर्मित वस्तुएँ भारतीय बाज़ारों में इंग्लैण्ड से दुगने दाम पर मिलने लगीं। शोषण के इस रूप की प्रतिक्रिया स्वदेशी आन्दोलन’ के रूप में हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन का घोषणापत्र अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया। 1793 ईसवीं में कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उडी़सा में जमींदारी प्रथा लागू करने तथा 1830 में सर टॉमस मुनरो द्वारा इस्तमरारी बंदोबस्त लागू करने से मालगुजारी, लगान की नकारात्मक स्थितियाँ उत्पन्न हुई। रही- सही कसर देश में पड़े अकालों ने किया। लेकिन विश्लेषण का एक पक्ष और हो सकता है। कई विचारकों ने इस तथ्य की ओर संकेत किय है कि पुराने अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, वह शोषण पर आधारित होने के बावजूद, अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ गया।

डॉ0 नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में टिप्पणी की है- '' बहुत से शहरी उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा से काल कवलित हो गए। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया। उससे अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी। गाँव दूसरे गाँवों और शहर के सम्पर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बँधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 443)। उपर्युक्त उदाहरण का सार यह है कि अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह नष्ट किया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से लाभ यह हुआ कि भारतीय समाज व्यापार या दूसरे रोजगार के लिए गाँव से बाहर आया और उसमें एक राष्ट्रीय चेतना का जन्म हुआ।

1.3.6 धार्मिक परिस्थिति

अंग्रेजों शासन के आधिप्य ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म को गहरे रूप में प्रभावित किया। अंग्रेज जब भारत आये तब हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों धर्म अपनी प्रगतिशीलता खो चुके थे। हिन्दू धर्म, जो कभी ज्ञान एवं समृद्धि का भण्डार माना जाता था, वह भी जाति-पात, छूआछूत एवं ब्राह्यआडम्बरों में सिमट कर रह गया था। नवीन धर्म-दर्शन की निष्पत्ति तो दूर की बात रही, पुराने ग्रन्थों की मौलिक व्याख्या भी प्रायः नहीं होती थीं। कहने का भाव यह है कि सामान्य हिन्दू जनता धार्मिक कर्मकाण्डों से तंग थी। उसी तरह मुस्लिम धर्म भी कई तरह की संकीर्णताओं के आबद्ध हो चुका था। हाँलाकि मुगल सत्ता के समय 'दीन-ए-इलाही' जैसी व्यापक अवधारणाएँ भी आई थीं, लेकिन वह पूरे धर्म को प्रभावित करने में असफल रहीं, ऐसी स्थिति में दोनों धर्मों की संकीर्णताओं का लाभ उठाकर ईसाई मिशनरियों ने हिन्दु तथा मुस्लिम धर्म पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बाइबिल के हिन्दी अनुवाद वितरित किये जाने लगे। अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने धन का प्रलोभन देना भी शुरू कर दिया। अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से घिरी हिन्दू जनता ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हुई। बहुत सी निर्धन जनता ने ईसाई धर्म स्वीकार की कर लिया। ईसाई धार्मिक प्रचार की कट्टरता ने हिन्दू पुनरूत्थान की भावना को विकसित किया। हिन्दू धर्म के गौरव पर नये सन्दर्भों में विचार किया जाने लगा। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर हिन्दू धर्म की आधुनिक संन्दर्भों में व्याख्या की। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी ने धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर हिन्दू धर्म तथा भारतीय समाज को गहरे रूप में प्रभावित किया। ईसाई धर्म के धार्मिक आक्रमण के फलस्वरूप हिन्दू चेतना से जुटे। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह के खिलाफ कानून इसी जागरूकता के प्रमाण थे। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो (अमरीका) वक्तृत्व ने हिन्दू धर्म को पूरे विश्व में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित किया। अंग्रेजों का धार्मिक प्रचार हिन्दू धर्म के पुनरूस्थान से जुडा। हिन्दू धर्म की जड़ता टूटी और वह गतिशील हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का साहित्य सेक्युलर दृष्टि से ओत प्रोत है, जिसके पीछे पुनजगिरण की भावना ही काम कर रही थी।

1.3.7 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है, अंग्रजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज परम्परागत रूप का समाज था। भारतीय रहन-सहन, खान-पान का स्तर एवं जीविकोपार्जन का साधन परम्परागत थे, उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का अभाव था। अंग्रेज आधुनिक विज्ञान के सम्पर्क में आते जा रहे थे। विज्ञान का उपयोग उन्होंने विश्व में वर्चस्व स्थापित करने में किया। रेल, यातायात के साधन, सड़कें, तार, डाक व्यवस्था जो आधुनिक प्रगति के वाहक थे, अंग्रजों के माध्यम से भारत में आये। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय समाज निर्धन था, या उनका आर्थिक स्तर निम्न था। क्योंकि आँकड़े कहते हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में भारतीय हिस्सेदारी कई सम्पन्न देशों से ज्यादा थी। यहाँ परम्परागत समाज कहने से तात्पर्य यही है कि भारतीय समाज ग्रामीण व्यवस्था के ढंग में रंगा था। छोटे से जगह में उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थीं, हाँलाकि उस समय भी भारतीय व्यापार कई देशों में फैला हुआ था। भारत पर आधिपत्य स्थापित कर अंग्रेजों ने यहाँ की भाषा एवं संस्कृति पर भी श्रेष्ठता स्थापित करने की पहल करनी शुरू कर दी। लॉर्ड मैकाले की भाषा नीति ने भारतीय भाषाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया। 1800 ई0 में स्थापिम फोर्ट विलियम कॉलेज का उद्देश्य भी भारतीयों को ब्रिटिश प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजी भाषा सीखाना था। लेकिन इसी के साथ ही विलियम जोंस, मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने भारतीय भाषाओं की महत्ता को स्वीकार भी किया तथा अनेक ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये या करवाये। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से भी अनेक अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा सीखी। भाषा के प्रति गौरव-बोध ने सांस्कृतिक बोध को जन्म दिया।

भारतीय संस्कृति आध्यिक, आध्यात्मिक रूप से विकसित संस्कृति थी। संस्कृति के दो स्तर होते हैं- एक स्तरहै। बाह्य और दसरा है आन्तरिक। बाह्य स्तर के अतिरिक्त रहन-सहन , वेश-भूषा, खान-पान आते हैं तथा आन्तरिक स्तर के अन्तर्गत आत्मिक- आध्यात्मिक -बौद्धिक चेतना आती है। किसी समाज-संस्कृति के प्रभाव से बाह्य स्तर पहले प्रभावित होता है। यह प्रभाव चिंतनीय नहीं है। लेकिन अगर कोई संस्कृति किसी अन्य संस्कृति की जातीय चेतना पर आधिपत्य करना शुरू कर देती है तो वह ज्यादा गंभीर एवं खतरनाक होती है। अंग्रेजों ने अपनी औपनिवेशिक मानसिकता का आधिपत्य भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं पर हमले करके स्थापित किया। इस सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम हुआ कि भारतीय सामंती संस्कृति में हलचल हुई। अपने 'निज भाषा' एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता का भाव पैदा हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने घोषणा की - ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।'' जाहिर है सब उन्नति में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी शामिल है। यह निजता का भाव आधुनिक हिन्दी पद्य की पीठिका बनता है।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थान की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

1. भक्तिकाल.............................बोध से युक्त है। (भौतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक)

2. मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता......................... निर्धारित होती है। (तर्क, भक्ति-श्रृंगार, कार्य-कारण सम्बन्ध)

3. ....भावना का संवेदनात्मक शब्द-चित्र है। (अलंकार, प्रतीक, बिंब)

4. मानवतावाद में ईश्वर, मनुष्य, प्रकृति, पशु-पक्षी सबके लिए जगह है, जबकि 'मानववाद'.......................केन्द्रित दर्शन है। (ईश्वर, मानव, प्रकृति)

5. आधुनिकीकरण का मख्य सम्बन्ध .... के भारत आगमन से जुडा़ हुआ है। (पुर्तगाली, फ्रांसीसीयों, अंग्रेजों)

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. अंग्रजों के आगमन का प्रारंभिक उद्देश्य व्यापारिक था।

2. प्लासी का युद्ध सन् 1757 ई0 में हुआ।

3. वारेन हेस्टिगंज़ ने भारत में विलय-नीति प्रारम्भ की।

4. स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सबसे पहले भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जागरूकता दिखाई

5. ब्रह्म समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

1.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि आधुनिक पद्य का सम्बन्ध पुनजगिरण वादी चेतना से हे। पुनजगिरण का अर्थ करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- '' पुनजगिरण का एक चिह्न यदि दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट है तो दूसरा चिह्न यह भी कहा जाएगा कि वह मनुष्य के सम्पूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज, और उसका परिष्कार करना चाहता है'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ 80)।

आधुनिकता के केन्द्र में मनुष्य रहा हैं हिन्दी साहित्य में मनुष्य की अवधारणा कई बार बदली हैं। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इंगित किया है आदिकाल में मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जब कि भक्तिकाल में ईश्वर का चित्रण मनुष्य के रूप में हुआ है।

रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण हुआ है। तथा आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बनता है, और ईश्वर की धारण व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कि कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता। (चतुर्वेदी,

रामस्वरूप, पृष्ठ 78-79) रामस्वरूप चतुर्वेदी के तर्क का सरल रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दी कविता में मनुष्य की बदलती अवधारणा

आदिकालः	मनुष्य	ईश्वर
भक्तिकालः	ईश्वर	मनुष्य
रीतिकालः	ईश्वर+मनुष्य	मनुष्य
आधुनिककाल:	मनुष्य	मनुष्य

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का तर्क मोटे रूप में सही है। लेकिन इसे पूरी तरह मान लेना भी संगत नहीं है। जैसे आधुनिक काल की हम बात करें तो हम देखते हैं इस युग में मनुष्य के साथ ईश्वर का चित्रण भी हुआ है तथा रहस्वादी प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है। यह अलग बात है कि पौराणिक- ऐतिहासिक सन्दर्भों की आधुनिक व्याख्या आधुनिकता की देन है। यहाँ इस बात का संकेत करके हम आधुनिक की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप चर्चा करेंगे। चूँकि यह इकाई आधुनिक पद्य की पृष्ठ भूमि के रूप में है इसलिए आगे की कविता-प्रवृत्तियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

1.4.1 राष्ट्रीयता

आधुनिक हिन्दी पद्य का प्रारम्भ राष्ट्रीय भाव बोध से हुआ है। राष्ट्रीय भावबोध का प्रारम्भ भारतेन्दु के गद्य के माधम से हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पंक्ति देखें-

''अँगरेज राज सुख साज सजै सब भारी

पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।''

इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य के शोषण का संकेत भारतेन्दु ने अप्रत्यक्ष तरीके से इस प्रकार किया कि ''अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।।''

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ''भात-दुर्दशा'' नाट्क की यह पंक्ति भी राष्ट्रीय बोध की ही निष्पत्ति हैः

''रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।

हा ! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

यहाँ भारतेन्दु हरिशचन्द्र की चिन्ता कबीर की चिन्ता से मिल जाती है। 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै' कहने वाले कबीर भारतेन्दु की पूर्ववर्ती प्रेरणा बनते हैं, यह ठीक ही है।

भक्तिकाल जहाँ सांस्कृतिक जागरण है वहीं पुनजगिरण भौतिक-सामाजिक-ऐतिहासिक-सांस्कृति सभी प्राकर का जागरण है। 'प्रेमधन' ने भी अंग्रेजी सरकार के शोषण पर कटाक्ष करते हुए लिखा है- 'राओं सब मुंह बाया बाय हाय टिकस हाय हाया।'

राष्ट्रीयता की भावना 'द्विवेदी युग' में और तेज हुई, क्योंकि उस समय तक स्वतंत्रता आन्दोलन में और गति आ चुकी थी। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य राष्ट्रीय भाव-बोध से विशेष रूप से संचालित है। ''भारत-भारती'' काव्य अपने राष्ट्रीय बोध के कारण विशेष रूप से चर्चित हुआ। जिसके कारण उसे ब्रिटिश सत्ता ने प्रतिबंधित कर दिया था। 'भारत-भारती' का केन्द्रीय उद्बोधन है-

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।''

द्विवेदी युग के बाद छायावादी आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक बोध का आन्दोलन कहा गया है। छायावादी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक जागरण के तत्वों से अनुस्यूत है। 'कामायनी' की प्रसिद्ध पंक्तियाँ देखें-

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, जो निरूपाय,

समन्वय उसका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।''

हिन्दी कविता में सही रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत होती है- 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक'क कविता आन्दोलन से। रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओं 'दिल्ली', 'हाहाकार', 'विपथगा', तथा 'समर शेष है' में राष्ट्रीय भाव बोध की प्रबलता है। इसके अतिरिक्त उनके विचार-प्रधान काव्य 'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी' भी राष्ट्रीय भाव बोध से अछूती नहीं है। 'दिनकर' ने 'हुँकार' को राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह कहा है।- 'तिमिर ज्योति की सरमभूमि का मैं चारण' में वैताली।' यह 'दिनकर' का मूल स्वर है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता काफी लोकप्रिय हुई थी। सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त' और 'दैनिकी' राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच की कविताएँ हैं। बालकृष्ण शार्मा 'नवीन' की पंक्ति - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये' राष्ट्रीय भावधारा की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार सुभ्रदाकुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' तो राष्ट्रीय भावधारा का केन्द्रीय गीत ही बन गया। बुन्देलखण्डी लोकशैली में लिखी गई कविता- ''बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी। खूब लडी़ मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी। '' राष्ट्रीय आन्दोलन के समय काफी लोकप्रिय हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कविता में राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया। राष्ट्रीय चेतना की कविता का सम्बन्ध प्रायः पराधीनता की स्थिति हुआ

करती है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विद्रोह- प्रतिकार का केन्द्र बदल गया। पहले विद्रोह क केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्य था, अब व्यवस्था आ गई। तय था कि अपने भीतर का संघर्ष बाहरी संघर्ष से ज्यादा जटिल होता है। फलतः कविता में भी सांकेतिकता, बिंब, अंतर्विरोध, तनाव, विसंगति, बिडम्बना का प्रयोग होने लगा। कह सकते हैं प्रगतिवादी धारा तक राष्ट्रीय भाव बोध की खुली अभिव्यक्ति होती रही किन्तु उसके बाद राष्ट्रीयता का स्वरूप सूक्ष्म हो गया। इस पर आगे की इकाइयों में विस्तार से विचार किया जाएगा।

1.4.2 समाज -सुधार

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय पुनजगिरण का शुरूआती स्वरूप सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित रहा है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे ''समाज'' सुधारवादी प्रवृत्ति से ही संचालित रहे हैं। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह अधिनियम, बाल-विवाह निषेध कानून जागरण-सूधार की ही व्यावहारिक निष्पत्तियाँ हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने स्त्री शिक्षा के प्रचारार्थ 'बालाबोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की थी। आधुनिक हिन्दी पद्य का सम्बन्ध सुधारवादी चेतना से है। जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है भारतेन्दु युग तक पद्य में आधुनिकता का संस्पर्श नहीं हो पया था, लेकिन स्वंय भारतेन्दु 'निजभाषा' की आवश्यकता एवं महत्त्व को महसूस कर रहे थे। भारतेन्दु की चेतना का विकास महावीरप्रसाद द्विवेदी के माधम से पद्य में फलीभूत हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए''। उपदेशजनक एवं नीतियुक्त प्रकृति के कारण ही 'द्विवेदी युग' की कविता को जागरण -सुधार नाम दिया गया है। द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं- मैथिलीशरण गुप्त। मैथलीशरण गुप्त के ऊपर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।'' 'भारतेन्दु' के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारतभारती' में मिलता है। इधर के राजनीतिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसक पूरा आभास पिछली रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यवाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान, सबकी झलक हम पाते है।'' गुप्त जी का 'साकेत' ग्रन्थ व्यापक रूप से भारतीय नवजागरण के प्रभाव तले लिखा गया है। स्त्री संबधी सुधार या करूणा उनके काव्य की केंन्द्रीय विशेषताओं में से एक है। 'यशोधरा' खण्डकाव्य की पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

''अबला हाय तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी युग में सुधारवादी भावना सौन्दर्यवादी चेतना से आप्लावित हुई। छायावाद ने कल्पना का व्यापक प्रयोग किया। द्विवेदी युग में जो नारी 'अबला' थी छायावाद में- 'देवि, माँ, प्राण, सहचरि प्रिये हो तुम।' वह कई रूपों में स्वीकार की गई। निराला ने इसी प्रकार वर्ग-वैषम्प का विरोध करते लिखा है- 'अमीरों की हवेली होगी/ आज होगी गरीबों की पाठशाला।' सामाजिक रूढ़ियों पर चोट करते हुए निराला ने लिखा है- 'तुम करो व्याह, तोड़ता

नियम/ मैं सामाजिक योग के प्रथम।' श्रम सौन्दर्य पर निराला ने 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' कविता लिखकर प्रगतिवादी धारा का सूत्रपात कर दिया था। प्रगतिवादी साहित्य में कविता का स्वर प्रचारात्मक बना। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', अमृतराय, रांगेय राघव की कविता तत्कालीन व्यवस्था विसंगतियों पर चोट करती है। प्रगतिवाद के बाद का पद्य समाज सुधार के स्थूल आवरण से हटकर सूक्ष्म रूप से विसंगति-विडम्बना के माध्यम से पहल करता चाहता है। अतः हिन्दी पद्य जो समाज सुधार की भावना से प्रारम्भ हुआ था, क्रमशः वैचारिक होता गया। आज का पद्य तो दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श को अपने में समेटे हुए है। इस दृष्टि से हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के प्रति पर्याप्त सजग रही है।

1.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ व्यवस्था यर्थाथ के उद्घाटन से ही हुआ है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का 'भारत-दुर्दशा' तथा 'अंधेरे नगरी' नाटक व्यवस्था यर्थाथ उद्घाटन के ही तो प्रयास है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है भारतुन्दु युगीन कविता 'कहाँ करूणानिधि केशव सोये,' से आगे नहीं जा पाई थी, लेकिन उस युग का गद्य पयप्ति रूप से अपने युग के प्रति सजग था। द्विवेदी युगीन कविता पर भारतीय नवजागरणवादी चेतना का र्प्याप्त प्रभाव है। और सुधारवादी रूझानों से भी संयुक्त है, लेकिन व्यवस्था-उद्घाटन की तीव्रता का उसमें अभाव है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' कृति, जो युवा क्रान्तिकारियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई थी, उसे भी हम जागरण- कृति कह सकते हैं, व्यवस्था उद्घाटन की कृति नहीं। प्रश्न है जागरण कृति एवं व्यवस्था उद्घाटन कृति में क्या अन्तर है? वस्तुतः जागरण की भावना पूर्ववर्ती भावना है, जबकि व्यवस्था उद्घाटन की भावना पश्चवर्ती। जागरण होने के पश्चात् ही हम व्यवस्था की विसंगतियों, अंतर्विरोध या यर्थाथ को देख-समझ सकते हैं। अतः जागरण एवं व्यवस्था उद्घाटन एक ही प्रक्रिया की पूर्व एवं पर स्थितियाँ हैं। 'भारत-भारती' का जागरण व्यवस्था के यर्थाथ के कारण पैदा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि पहले व्यवस्था के यर्थाथ का बोध होता है, फिर जागरण की भावना आती है तत्पश्चात् व्यवस्था के यर्थाथ का उद्घाटन होता है। व्यवस्था के यर्थाथ की विसंगति इसका अगला चरण है। द्विवेदी युग तक राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से जागरणवादी भावना का आगमन हो चुका था। छायावाद युग में व्यवस्था की विसंगति के पर्याप्त चित्र हमें देखने को मिलते हैं। निराला की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चाहे वह 'भिक्षुक' हो या 'तोड़ती पत्थर' या 'कुकुरमुत्ता'। लेकिन अन्य रचनाकारों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। जयशंकर प्रसद एवं महादेवी वर्मा का साहित्य व्यापक रूप से सौन्दर्यवादी-दार्शनिक रूझानों से गतिशील है वहीं सुमित्रानन्दन पन्त का साहित्य सौन्दर्य -चित्रों से होते हुए यर्थाथ के अंकन तक पहुँचा है। पन्त जी की कविता की पंक्ति देखें-

''साम्राज्यवाद था कंस, वन्दिनी

मानवता पशु बलाक्रांत

श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु

निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत

निराला ने इसी प्रकार लिखा है-

''रूद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,

अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक अंक पर काँप रहे हैं

धनी, वज्र-गर्जन से बादल

त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर

हे विप्लव के वीर! ''

या ' देखता रहा में खड़ा अपल

वह शरक्षेप, वह रणकौशल,

या ' ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,

खाकर पत्तल में करें छेद, ''

× × ×

'दुःख ही जीवन की कथा रही/क्या कहूँ आज जो नहीं कही! '

जैसी पंक्तियाँ व्यक्तिगत जीवन से होती हुई सामाजिक - राष्ट्रीय यर्थाथ को बखूबी व्यक्त करती हैं। लेकिन छायावाद तक कविता का मूल स्वर आदर्शवादी एवं सौन्दर्यवादी ही था। प्रगतिवादी आन्दोलन के घोषणापत्र से एक नये प्रकार की चेतना की जन्म हुआ, जिसने व्यवस्था की विसंगति का पर्याप्त पर्दाफ़ाश किया। प्रगतिवादी साहित्य तथा मोहभंग की कविता इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं प्रगतिवादी धारा में नागार्जुन अपने व्यंग्यपरक रचनाओं, जो व्यवस्था की विसंगति पर आधारित हैं, के कारण विशेष रूप् से चर्चित रहे हैं। नागार्जुन की कविता के कुछ उदाहरण देखें-

''बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

सकल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के! ''

× × ×

'कई दिनों तक चल्हा रोया/चक्की रही उदास/

कई दिनों तक काली कुतिाया/ सोई उनके पास

× × ×

'धुन खाये शहतीरों पर बारहखडी़ विधाता बाँचे

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे,

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें-

'काटो, काटो , काटो, कदबी

मरो, मारो, मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

× × ×

'मिल के मालिकों को

अर्थ के पैशाचिकों को

भूमि के हड़पे हुए धरणीधरों को

मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ''

× × ×

'मैंने उसको जब भी देखा/ लोहा देखा/

लोहा जैसे गलते देखा/ लोहा जैसे ढलते देखा/

लोहा जैसे चलते देखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक व्यवस्था चित्रण का स्वरूप अलग किस्म का था और स्वतंत्रता पश्चात् व्यवस्था चित्रण का स्वरूप दूसरे प्रकार का। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व व्यवस्था के केन्द्र में ब्रिटिश सत्ता थी, जबकि उसके पश्चात् केन्द्र में शासन कर रही व्यवस्था, जिसमें कार्यपालिका,

विद्यायिका एवं न्यायपालिका सभी आते हैं, आ जाती है। केन्द्र बदलते हैं तो परिधियाँ भी बदल जाती है। प्रारम्भ में कवियों का लक्ष्य सामाजिक यर्थाथ का चित्रण करना था, फिर राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति पर ध्यान गया उसके पश्चात् विसंगति के प्रति क्रान्ति की भावना तक कवि दृष्टि गई। गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की लम्बी कविता 'अंधेरे में' इस दृष्टि से प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। पूरी कविता जन-संगठन के क्रान्तिकारी तत्वों से आबद्ध है। ''अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। '' कविता की केन्द्रीय पंक्तियाँ हैं। इसके बाद हिन्दी कविता में 'व्यवस्था से मोहभंग' की बात सीधे-सीधे उठने लगी। मुक्तिबोध ने लोक युद्ध का सपना तो देखा लेकिन उन्होंने इसके लिए फैंटसी शिल्प (स्वप्न शैली) का सहारा लिया। लेकिन मोहभंग की कविता के सामने ऐसे किसी शिल्प की मजबरी न रह गई। अमरीकी कवि एलेन गीन्सवर्ग से प्रभावित कवियों का एक वर्ग उभरा, जो व्यवस्था की विसंगतियों पर खुलकर चोट करता था। इस धारा में राजकमल चौधरी, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', लीलाधर जगूडी, चंद्रकान्त देवताले मगलेश डबराल इत्यादि प्रमुख कवि शामिल थे। इस धारा की अगुआई कवि राजकमल चौधरी ने तथा सबसे सशक्त कवि थे 'धूमिल'। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए/ दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

× × ×

'अपने यहाँ संसद/तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है' इसी क्रम में धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'रोटी और संसद' देखें- 'एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है और न रोटी खाता है/ वही सिर्फ रोटी से खेलता है/ वह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है।'

1.4.4 विमर्श केन्द्रीयता

कविता अपने मूल रूप में भाव का परिष्कार एवं विस्तार करने वाली छांदिक एवं लययुक्त भाषा-विधान है। कविता सबसे पहले भाव निर्माण करती है। भाव निर्माण का कार्य कविता बिंब निर्माण करके करती है। युग-सन्दर्भ के अनुसार हाँलाकि कविता के औजार भी बदलते रहते हैं। 'विमर्श' शब्द उत्तर-आधुनिक युग की देन है। यह 'डिस्कोर्स' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रयोग होता है, जिसका अर्थ चर्चा-परिचर्चा के समतुल्य होता है। कविता और विमर्श का क्या सम्बन्ध है? कविता के लिए विमर्श की क्या आवश्यकता है? इन प्रश्नों को जानना जरूरी हो जाता है, क्योंकि कविता युगानुरूप अपने तेवर विमर्श से ही प्राप्त करती रहती है। 'विमर्श' आलोचना की पृष्ठभूमि है। समकालीन घटनाओं पर जन-प्रतिक्रिया का बौद्धिक हस्तक्षेप है। भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ या काव्य गोष्ठियाँ विमर्श के ही प्रकार थे। संस्कृत साहित्य में राजेशेखर द्वारा वर्णित 'कविचर्चा' या ' विदग्ध गोष्ठी' विमर्श के ही प्राचीन नाम थे। अतः विमर्श साहित्य को तत्कालीन घटनाओं से जोड़ने का साधन हैं । भारतेन्दु का 'पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।'' समकालीन विमर्श का साहित्यिक रूपान्तर ही तो है। भारतेन्दु के 'अंधेरनगरी' का रूपक विमर्श नहीं तो और क्या है। मैथिलीशरण गुप्त की नवजागरणवादी साहित्यिक पंक्ति देखें-

'राम तुम मानव है? ईश्वर नहीं हो क्या? / विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?/ तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें,/ तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

× × ×

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।,'

मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्ति बदलते युगीन संवदेना को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त करती है। छायावाद का मूल स्वर सांस्कृतिक पुनरूत्थान या सांस्कृतिक जागरण का बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक हों यो प्रसाद, निराला की लम्बी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण को बखूबी व्यक्त करती है। अनायास नहीं कि छायावाद युग में सर्वाधिक जागरण गीत लिख गये। जयशंकर प्रसाद के 'प्रथम प्रभात', 'आँखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री'!, निराला के 'जागो दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धनिके,'! सुमित्रानन्दन पन्त के 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत', तथा महादेवी वर्मा के 'जाग बेसुध जाग' तथा जाग तुझको दूर जाना' जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण-विमर्श की रचनात्मक प्रतीतियाँ हैं। जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' खण्डकाव्य में ' जोगो, मेरे मधुवन में ' तथा निराला के 'तुलसीदास' के इन पंक्तियों में (जागो, जागो, आया प्रभात,/बीती वह, बीती अंध रात') जागरण का ही स्वर है। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि व्यवस्था चित्रण और विमर्श में स्वरूपगत भेद है। व्यवस्था चित्रण तत्कालीन घटना क्रम की सीधी अभिव्यक्ति है तो 'विमर्श' तत्कालीन घटना क्रम की साहित्यिक- सामाजिक पृष्ठभूमि। प्रगतिवादी साहित्य का वर्ग - वैषम्य उद्घाटन व्यापक रूप से 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक विमर्श से जुड़ता है। 'प्रगतिशील लेखक संध (1936) के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचन्द्र के अध्यक्षीय संबोधन 'साहित्य का उद्देश्य' पूरे प्रगतिवादी साहित्य का विमर्श ही है। इसी प्रकार प्रयोगवाद का आधुनिक बोध पश्चिमी विचारधाराओं (मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद आदि का) के विमर्श का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। धूमिल जैस कवि पर नक्सलवादी आन्दोलन का कितना प्रभाव पडा़ है, यह ध्यान देने वाली बात है। नागार्जुन जैसे कवि पर राजनीतिक घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव हम देख सकते हैं। सन् 1990 के बाद के साहित्य को हमने विमर्श केन्द्रित साहित्य का नाम ही दे दिया है। सन् 90 के बाद कई विमर्श भारत और विशेषकर हिन्दी साहित्य में उभरे। जैसे भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर-आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। पहले के मुकाबले आज की राजनीतिक-भौतिक स्थिति में परिवर्तन आ चुका है। आत का युग संचार का युग है। संचार माध्यमों के प्रभाव से आज ढेरों घटनाएँ हमारे मन -मस्तिष्क का हिस्सा बनती है, किन्तु

कम घटनाएँ ही हमारी संवेदना का हिस्सा बनती हैं। विमर्श के लिए संवेदना को घटना तक पहुँचना अनिवार्य है।

आधुनिक पद्य प्रवृत्तियों में 'विमर्श केन्द्रियता' मुख्य है। आधुनिक पद्य में स्वचेतन वृत्ति के कारण बदलाव की प्रक्रिया मध्यकालीन कविता से तीव्र रही है। आदिकाल एवं मध्यकालीन कविता शताब्दियों तक एक ही धारा में बहती रही हैं। आधुनिक काल के पश्चात् सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया भी तीव्र हुई। इस काल को सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर उत्तर-आधुनिकता कहा गया है। विचारधारा के स्तर पर इसे भूमंडलीकरण- वैश्वीकरण कहा गया है। इसी दौर में विचारधारा का अन्त' 'लेखक की मृत्यु', कविता की मृत्यु' जैसी नकारवादी अवधारणाएँ भी सामने आई। 'विचारधार का अन्त' प्रतिबद्धता हीन समाज की विलय का ही संकेत समझना चाहिए। उपर्युक्त नकारवादी दर्शनों में आंशिक सच्चाई थी। ये ज्यादातर पश्चिमी देशों का सच था। 'नकारवादी दर्शन' में सब कुछ नकारात्मक हो, हम यह भी नहीं कह सकते। उत्तर-आधुनिक सैद्धान्तिकी (हांलाकि यह किसी भी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं मानता) दबे हुए समाज/ हाशिये के समाज के लिए किसी वरदान से कम नहीं हुआ। अनुपस्थित की तलाश उन सारे सिद्धान्तों को चुनौती देता है जो श्रेष्ठता के मानदण्ड से स्थिर किये गये थे। अनुपस्थिति की तलाश का ही वैचारिक रूप 'विमर्श' है, जिसे पश्चिमी देशों में 'डिस्कोर्स' कहा गया। 'विमर्श की केन्दीयता के दबाव के चलते ही स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श , आदिवासी विमर्श, भाषा-विमर्श, संस्कृति-विमर्श इत्यादि नये रूप में हमारे साने आये। सन् 1990 के बाद भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य में उपर्युक्त विमर्श नये ढंग से विश्लेषित किये जाने लगे।

अभ्यास प्रश्न 3

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-छह पंक्तियों में दीजिए-

1. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

....
....
....
....
....
....
....

2. हिन्दी कविता में मुनष्य की बदलती अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

....
....

....
....
....
....
....

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गय विकल्पों में से कीजिए।

1. 'भारत दुर्दशा न देखी जाई' पंक्ति के लेखक.. हैं। (मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

3. सांस्कृतिक जागरण......................की विशेषता है। (भारतेन्दु काल, द्विवेदी युग, छायावाद)

3. राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से .... उल्लेखनीय काव्यान्दोलन है। (छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक, प्रयोगवाद)

4. 'साकेत' ग्रन्थ के रचनाकार... हैं। (जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त)

5. 'दुःख ही जीवन की कथा रही' पंक्ति के लेखक.............................. है। (नागार्जुन, दिनकर, निराला)

1.5 आधुनिक हिन्दी पद्‌य का महत्त्व

अभी तक आपने हिन्दी कविता के सम्पूर्ण इतिहास का विस्तार से अध्ययन किया। इसी क्रम में आपने मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य के अन्तर का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि मध्यकालीन पद्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं। मध्यकालीन समाज-संस्कृति और काल को देखते हुए इसे पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता । मध्यकाल के अन्तर्गत 'भक्तिकाल' एवं रीतिकाल' दोनों आते हैं। कथ्य, संवेदना, लोकधर्मिता की दृष्टि के कारण महत्त्वपूर्ण है। फिर भी अपनी सारी लोकधर्मिता और ऐहिक दृष्टि के बावजूद भक्तिकाल और रीतिकाल के सारे मूल्य ईश्वर एवं सामन्तों से संचालित होते हैं और यही मध्यकाल की सीमा है। आधुनिक काल के केन्द्र में मानव केन्द्रित मूल्य, तर्क केन्द्रित वैज्ञानिक दृष्टि एवं वर्तमानकालिक चेतना रही है। आधुनिक कालीन हिन्दी कविता ने क्रमशः ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित किये। रामस्वरूप ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित कये। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''आधुनिक काल में मनुष्य सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केन्द्र में हैं, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।'' प्रियप्रवास की भूमिका में 'हरिऔध ' ने

लिखा है- ‘‘मैने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरूष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।’’ हिन्दी के अन्य महत्त्वपूर्ण महाकाव्य ‘साकेत’ में मैथिलीशरण गुप्त ले ‘ईश्वर’ की भूमिका को लेकर उनर्मूल्यांकन का प्रयत्न किया है- ‘राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?’ मानव केंद्रित मूल्य में काव्य की अभिव्यक्ति शैली ही बदल दी/ वर्तमानकालिक चेतना सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का आधुनिक संदर्भों में मल्यांकन करने की चेतना प्रदान की। हिन्दी पद्य ने नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप् सामंती मूल्यों का बहिष्कार कर लोकधर्मी मूल्य विकसित किये।

1.6 सारांश

- आधुनिक काल नवजागरणवादी चेतना से निसृत वैचारिक एवं प्रायोगिक दर्शन है। नवजागरणवादी चेतना सांस्कृतिक ऊर्जा से उत्पन्न चेतना है। अपनी जातीय चेतना, अस्मिता एवं संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन का सृजनात्मक प्रयत्न ही नवजागरण या पुनर्जागरण है।
- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य के माध्यम से आया। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने इसे ‘गद्य काल’ कहा है। गद्य विचार प्रधान रूप है, जबकि पद्य संवेदना प्रधान। पहले विचार बदलते हैं फिर संवेदना। इस दृष्टि से हिन्दी पद्य का विकास हिन्दी गद्य के पश्चात् हुआ।
- प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता का काव्य प्रवाह कई वर्षो तक एम-सा ही चलता रहा है, लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता बदलती काव्य चेतना के कारण कई प्रवृत्तियों से होकर गुजरी है।
- आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न नामकरण को बदलती हुई साहित्यिक यात्रा का ही संकेत समझना चाहिए। नामकरण में भी कहीं साहित्यकार व्यक्तित्व (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग) कहीं साहित्यिक प्रवृत्ति (छायावाद, नयी कविता, हालावाद, प्रयोगवाद, मोहभंग की कविता इत्यादि) कहीं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थिति (पुनजगिरण, प्रगतिवाद, उत्तर-आधुनिकता इत्यादि) का मुख्य योगदान रहा है।
- खडी़ बोली हिन्दी कविता का आगमन अकस्मात नहीं हुआ है कि इसके पीछे सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक -सांस्कृतिक परिस्थितियों की मुख्य भूमिका थी।
- हिन्दी कविता आधुनिक बोध से युक्त रही है। आधुनिक बोध से युक्त होने का अर्थ है वर्तमानकालिक, तर्क केन्द्रित दृष्टि सम्पन्न होना।
- आधुनिक हिन्दी पद्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन एवं विमर्श केन्द्रीयता मुख्य रहे हैं।

1.7 शब्दावली

1. वर्तमानबोध - अपने समय की गति से परिचित होना।
2. स्वच्छंदतावाद- रूढ़ियों से मुक्ति का आन्दोलन
3. ऐंद्रियता - इस लोक के प्रति चेतना का भाव।
4. सेक्युलर - धार्मिक कट्टरता से परे का दर्शन
5. संश्लिष्ट - सम्पूर्ण, व्यापक रूप
6. विसंगति - सामाजिक व्यवस्था में संगति न होना
7. बिडम्बना - जीवन/समाज की चिन्तनीय स्थिति
8. लोकधर्मिता - लोक संवेदना का अनुभव।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 (ख)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2 (क)

1. ऐतिहासिक 2. भक्ति श्रृंगार 3. बिम्ब 4. मानव 5. अंग्रजों

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3 (ख)

1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. छायावाद 3. राष्ट्रीय- सांस्कृतिक

4. मैथिलीशरण गुप्त 5. निराला

1.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिका सभा।

3. (सं) डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, सं, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन

2. तिवारी, रामचन्द्र, रामचन्द्र शुक्लः आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि पर निबन्ध लिखिए।

2. मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

ईकाई 2 अज्ञेय : पाठ और आलोचना

ईकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अज्ञेय: कवि परिचय
2.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत
2.5 असाध्यवीणा:संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

यह इकाई सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय की महत्त्वपूर्ण कविता 'असाध्यवीणा' के पाठ और मूल्यांकन पर केन्द्रित है। जैसा कि हमें ज्ञात है अज्ञेय ने छायावादोत्तर दौर की काव्य संवेदना और भाषा में परिवर्तन की समस्या के सृजनात्मक हल के लिए 'अन्वेषण' को जरूरी रचनात्मक युक्ति माना था। इसी संदर्भ में प्रयोग उनके लिए महत्त्वपूर्ण हो उठा। प्रयोग को लेकर चली कवि की सक्रियताओं ने हिन्दी कविता के इतिहास में एक मोड़ भी प्रस्तुत किया तथा काफी हद तक नई कविता के लिए नये सौन्दर्यबोधीय मूल्यों का स्वरूप सामने आया। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता में अज्ञेय के सृजन सम्बन्धी सरोकारों का प्रातिनिधिक स्वरूप उभरता दिखाई देता है। इस कविता में अज्ञेय 'मम' और 'ममेतर' अर्थात् 'आत्म' और 'वस्तु' के सम्बन्ध को दार्शनिक बारीकियों में जाकर हल करते हैं साथ ही 'असाध्यवीणा' के बज उठने में सृजन प्रक्रिया के निष्पन्न होने का निरुपण करते हैं। इस कविता का आधार एक चीनी लोककथा है। उसके सूत्रों को अज्ञेय एक भारतीय सन्दर्भ प्रदान करते हैं तथा सृजन की समग्रता के लिए साधक के या कि रचनाकार के सम्पूर्ण समर्पण का पक्ष रखते हैं। इसके अलावा 'असाध्यवीणा' में वर्णित कथा के द्वारा अज्ञेय ने सृजन की व्याप्ति के स्तरों को स्पर्श किया है। अज्ञेय की निरन्तर विकसित होती हुई सृजन प्रक्रिया में यह विश्वास पुष्ट होता चला है कि रचयिता द्वारा सृजन में निष्पन्न होता हुआ अर्थ और आलोक पुनः रचयिता में भी उस आलोकमय स्फुरण को भरकर उसे मुक्त करता है। 'असाध्यवीणा' में उन्होंने स्रष्टा और सृजन के परस्पर मेल के अर्थ को पूरी गरिमा में उभारा है। इस विलय में 'अस्मिता' के घुल जाने को वे श्रेयस्कर नहीं मानते, बल्कि सृजन की उच्चतम

भावभूमि की असाधारणता के आविष्कार द्वारा चेतना का सारपूर्ण ढंग से संघटित होना लक्ष्य करते हैं। इस संघटन के द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। इसके मूल में सर्जनात्मक संपृक्ति है जिसके विषय में अज्ञेय की 'दीप अकेला' या 'नदी के दीप' जैसी कविताएं संकेत करती हैं। यही है 'संघटित' निजता'। इस प्रकार के व्यक्तित्व की अर्थवान सामाजिक उपादेयता है, अज्ञेय यह रेखांकित करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़कर हम अज्ञेय की रचनाशीलता के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

- 'असाध्यवीणा' शीर्षक लम्बी कविता की संवेदना के विषय में जान सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान के रूपकात्मक अभिप्राय के विषय में समझ सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की व्याख्या में सक्षम हो सकेंगे।

2.3 अज्ञेय: कवि परिचय

अज्ञेय कवि कथाकार चिंतक आलोचक और सम्पादक रहे हैं। वे विलक्षण यात्रा-वृत्तान्तों और संस्मरणों के लेखक हैं। 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उनका एक नाटक भी है। इसके अलावा अज्ञेय ने शरतचन्द्र के 'श्रीकांत' और जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 को कुशीनगर में एक पुरातात्त्विक खनन स्थल पर हुआ। पिता पं0 हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे। अज्ञेय ने विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त की थी तथा अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर के प्रथम वर्ष में अध्ययन किया किंतु 1929-36 तक क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रियता के कारण शिक्षा में व्यवधान आया। अज्ञेय चन्द्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल थे। इसी सिलसिले में उन्हें जेल भी हुई। 'चिन्ता' शीर्षक काव्य संग्रह तथा 'शेखर: एक जीवनी' जैसा उपन्यास जेल में ही लिखा गया। एक वर्ष तक (1936) 'सैनिक' के संपादक मण्डल में रहे। 1937 में 'विशाल भारत' के सम्पादन से जुड़े। 1943 में सेना में नौकरी की तथा असम बर्मा फ्रंट पर नियुक्ति मिली। 1950-55 में आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नियुक्ति मिली। स्वदेश और विदेश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। दद्दा यानी कि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त से कवि की अत्यधिक निकटता थी। विदेश यात्राओं में 'जापान यात्रा' का प्रभाव उनके रचनाकार पर सर्वाधिक है। बर्कले के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। 1965 से 69 तक साप्ताहिक दिनमान का सम्पादन किया। अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमैंस' का भी सम्पादन किया।

'प्रतीक' और 'नया प्रतीक' जैसे साहित्यिक पत्रों में सम्पादन के साथ इसी दौर में कविता कहानी उपन्यास लेखन भी चलता रहा। सप्तकों के सम्पादन का कार्य भी हुआ। 1961 में प्रकाशित काव्यकृति 'आँगन के पार द्वार' को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 'कितनी नावो में कितनी बार' शीर्षक काव्यकृति को 1979 में भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान मिला। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती सम्मान मरणोपरान्त इला डालमिया ने ग्रहण कर उसे वत्सलनिधि को प्रदान कर दिया था।

अज्ञेय की प्रथम काव्यकृति 'भग्नदूत' (1933) है। क्रमशः इस रचना यात्रा में 'चिन्ता' (1942) 'इत्यलम्' (1946) 'हरी घास पर क्षण भर' (1949) 'बावरा अहेरी' (1954) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957) 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) 'आँगन के पार द्वार' (1961) 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967) 'क्यों कि मैं उसे जानता हूँ' (1968) 'सागर मुद्रा' (1969) 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1970) 'महावृक्ष के नीचे' (1977) 'नदी की बांकपर छाया' (1981) 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' (1986) आदि हैं। 'प्रिजन डेज एंड अदर पोयम्स' (1946) उनकी अंग्रेजी कविताओं का संग्रह है। 'शेखर: एक जीवनी' के दो भागों के अलावा 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उनके उपन्यास हैं। विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945) शरणार्थी (1948) जयदोल (1951) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'भवंती', 'सर्जना और संदर्भ' उनके लेखों का संग्रह है। तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) तीसरा सप्तक (1959) चौथा सप्तक (1978) का अज्ञेय ने सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' उनके यात्रा वृत्तांत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय का रचना संसार व्यापक और विविध हैं।

2.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत

'असाध्यवीणा' 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' शीर्षक संग्रह की अनेक कविताएं जैसे इस महत्त्वपूर्ण कविता का पूर्व पक्ष है। इस उल्लेख का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय की कविताएं यहाँ विशेष आध्यात्मिक गहराई में ढलती दिखाई देती है। इस आध्यात्मिकता के केन्द्र में ईश्वर नहीं बल्कि मनुष्य है। इस अध्यात्म की विशेषता यह है कि यहाँ कवि उस आत्म का आविष्कार करता है जो उदात्त और समर्पणशील है। उसका संघर्ष व्यापक सत्य से जुड़ने का है। अज्ञेय इस एकात्म में व्यक्ति का शेष हो जाना ठीक नहीं मानते। व्यापक सत्य ही उनके लिए ममेतर है जो अपनी व्याप्ति और अर्थ से व्यक्ति अर्थात 'मम' को अर्थवान सोद्देश्य और मानवीय बनाता है। इस दार्शनिक बोध से भरी हुई अज्ञेय की अनेक कविताएं हैं, जिनमें से एक की ये पंक्तियाँ देखिए: 'मुझको दीख गया:/सूने विराट के सम्मुख'/हर आलोक छुआ अपनापन/है उन्मोचन/नश्वरता के दाग से।(अरी ओ करुणा प्रभामय) 'असाध्यवीणा' की कथा वस्तुतः एक रूपक के रूप में प्रयुक्त है। पूरी कविता 'सृजन' की उस

प्रक्रिया का अर्थ बताना चाहती है जिसके द्वारा सृजन व्यापक अर्थवान और गहरे अर्थ में मानवीय उद्देश्य को अर्जित करता है।

अभ्यास प्रश्न: 1

- अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में दीजिए।
- ईकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता का मूल मन्तव्य बताइए।

ख) अज्ञेय के लिए 'अन्वेषण' का क्या महत्त्व है बताइए।

ग) अज्ञेय ने रचनाकार के लिए क्या जरूरी माना है?

घ) अज्ञेय के जन्म वर्ष और पिता के विषय में बताइए

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'असाध्यवीणा' .... शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ....

ग) अज्ञेय को .... शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी सम्मान मिला।

घ) अज्ञेय .... के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) 'आँगन के पार द्वार' संग्रह की कविताओं की विशेषता क्या है?

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिता के विलय का क्या अर्थ है?

----

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) अज्ञेय द्वारा संपादित कृति का नाम है।

i) चिंता ii) इंद्रधनु रौंदे हुए ये iii) तारसप्तक

ख) अज्ञेय के यात्रा वृत्तांत सम्बन्धी पुस्तक का नाम है-

i) आलवाल ii) त्रिशंकु iii) अरे यायावर रहेगा याद!

2.5 असाध्यवीणा: संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)

अज्ञेय आधुनिक कवि हैं यह कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के भावबोध और मूल्यदृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। यह मनुष्य अपने चतुर्दिक के तीव्र परिवर्तनशील और किन्हीं अर्थों में विघटन की ओर जाते हुए जीवन से निरपेक्ष या दायित्वहीन नहीं है। एक सजग रचनाकार की तरह अज्ञेय की चिंता में मानवीय गतिशील समाज और सामाजिकता का पक्ष है। अपनी रचनाशीलता में अज्ञेय ने अपनी अर्जित वैचारिकी और अनुभव से यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि ऐसे विघटन के विरुद्ध मूल्यावेषी समर्पणशील व्यक्तित्व ही सकारात्मक भूमिका जरूरी है। इसके लिए मनुष्य को अपनी सृजनात्मकता के मानवीय रूप के लिए संघर्ष करना होगा। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक मानवीय दीप्ति है जो अपनी रचने की क्षमता को रहस्य में आवेष्टित किये पड़ी रहती है। उन्होंने प्रत्येक मानवीय अस्तित्व के भीतर ऐसे अनूठेपन की थाह ली। इस भाव को हम अज्ञेय की 'दीप अकेला' शीर्षक कविता में देख सकते हैं। 'त्रिशंकु' में अज्ञेय ने लिखा है कि कला एक श्रेष्ठतम नीति(एथिक) की दिशा में गतिशील होती है, इस श्रेष्ठतम नीति को वे सामान्य नैतिकता से अलग भी करते हैं इसी अर्थ में वे कला की

सामाजिकता का पक्ष भी रखते हैं। अज्ञेय ने संवेदना को वह यंत्र कहा है- 'जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर के साथ सम्बन्ध जोड़ती है' (अज्ञेय: आलवाल)। अज्ञेय मनुष्य के लिए दायित्वबोध से भरी सामाजिकता को जरुरी मानते हैं किन्तु इसके लिए उसकी 'अस्मिता' के मिट कर विलयित हो जाने को ठीक नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व वाह्य संघर्ष की टकराहट का अपने सृजनात्मक केन्द्र पर अडिग रहकर सामना करता है तब वह अपने व्यक्तित्व को अधिक संघटित सामाजिक उपादेयता में प्राप्त करता है।

इस प्रकार के अपने विश्वासों को कविता में ढालते हुए अज्ञेय ने अपने अभिप्रेत अर्थ को जीवन की गहरी सारपूर्णता में अर्जित किया है इसीलिए उनकी कविता में यह मूल्यबोध अपनी सूक्ष्मता में व्यक्त होता है। यहाँ से यदि हम 'असाध्यवीणा' के धुरी भाव की खोज करें तो सम्भवतः वह सृजन को समर्पणशील आत्मोत्तीर्णता के द्वारा लेने का भाव है। यही 'आत्म' और 'आत्मेतर' का वह मिलन बिंदु है जहाँ वे एक दूसरे को अपना-अपना अर्जित 'विराट' सौंपते हैं और पूर्णकाम होते हैं। यह अलग प्रकार का आत्मदान है जो दाता को रिक्त नहीं करता बल्कि देय की महिमा और आलोक से दोनों को भर देता है, दाता को भी और पाने वाले को भी। 'असाध्यवीणा' में यह प्रक्रिया प्रियंवद और 'असाध्यवीणा' के बीच इसी गरिमापूर्ण संपूर्णता में घटित होती है। यहाँ आकर साधक, साधना और साध्य तीनों के भीतर वह संगीत बज उठता है जो आस्वादन की उस उच्च भूमि तक ले जाता है जहाँ जाकर सारी निजताएं अपने आकांक्षित सत्य का एक सघन आत्मिक एकांत में साक्षात्कार करती हैं। इस प्रकार 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान में सृजन प्रक्रिया का रूपक ध्यान या समाधि के द्वारा एक विलक्षण लोकोत्तरता में सम्पन्न होता है जिसमें 'लौकिक' या 'लौकिकता' के स्थूल अर्थ को लेकर चलना संभव नहीं है। वस्तुतः इस संसार को सच्चे अर्थ में सुसंस्कृत और मानवीय रूप में ढालने के स्वप्न और आकांक्षा को अज्ञेय मनुष्य में ऐसे आत्मविस्तार के द्वारा संभव होते देखते हैं। यहाँ से हम इस कविता में मनुष्य के उस रागबोध प्रज्ञा और साधना का रूप निष्पन्न होते देखते हैं जहाँ वह व्यापक सत्य के साक्षात्कार और तादात्म्य के योग्य हो पाता है। अकारण नहीं है कि 'असाध्यवीणा' को सुनते हुए सभी अपने व्यक्तित्व की तुच्छता द्वेष इत्यादि से मुक्त होते हैं और उसके भीतर अपने प्रिय स्वप्नों की छवि देखते हैं। 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं, 'अन्तः सलिला', 'चक्रांतशिला' और 'असाध्यवीणा'। तीनों खण्डों में रूपक और प्रतीक मिलजुल कर 'व्यापक सत्य' के अनिर्वचनीय साक्षात्कार बोध और अभिव्यक्ति को संभव करना चाहते हैं। 'अन्तः सलिला' में रेत रिक्त या सूखी हुई नहीं है उसके भीतर रस की निरन्तर गति है। अज्ञेय का प्रिय 'मौन' यहाँ अपने प्रेय और सार्थक रूप में मौजूद हैं, 'ज्ञेय' को सम्पूर्णता में जानने के लिए यह मौन या कि चरम एकांत आवश्यक है। जानने की सीमा से परे स्थित सत्य को जानने की साधना इस मौन में है, इसके बावजूद वह अव्यक्त रूप में ही बना रह सकता है। अज्ञेय इन कविताओं में बौद्ध दर्शन की निष्पत्तियों के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार 'अन्तः सलिला' में जीवन बाह्य रूपाकारों से अलग आंतरिक गतियों के अर्थ में जाना गया है और कई बार अर्थ को एक रहस्यमयता मिलती दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय अस्तित्व की सार्थकता के प्रश्न को 'विराट' से उसके सम्बन्ध के नजदीक जाकर समझाना

चाहते हैं। वह 'मछली' उनका प्रिय प्रतीक है जो सागर और आकाश के नील अनन्त के बीच अपनी जिजीविषा के संघर्ष के साथ अपनी प्राणवायु के लिए उछलती है और उन विराटों के बीच अपने अस्तित्व की सार्थकता बता जाती है। इस तरह उसका जीवन सागर और आकाश दोनों को अपनी समाई भर छूकर भी क्षुद्र नहीं है बल्कि अर्थवान बनता है। 'इयत्ता' के भीतर विराट के अर्थ को अज्ञेय इस प्रकार समझते हैं।

'चक्रांतशिला' शीर्षक खण्ड में एक 'चक्रमितशिला' का रूपक है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ 'पियेर-क्वि-वीर' से अज्ञेय को इस चक्रमण करती शिला का रूपक मिला, जिसे उन्होंने 'काल' के अर्थ में ग्रहण किया है। 'एक बूंद सहसा उछली' में वे लिखते हैं- 'वह पत्थर जो घूमता है, चक्रमित शिला, चक्रांतशिला.......... वह काल के अतिरिक्त और क्या है।' इस खण्ड में अज्ञेय पुनः तथागत करुणामय बुद्ध की उस छवि का साक्षात्कार करते हैं जो सारी विषमताओं पर अपनी धवल करुणामयी मुस्कान डालते हैं। इस प्रकार कालरुपी काक जो कुछ भी लिखता जाता है, उसे यह मुक्ति दूत मिटाता जाता है।

'आँगन के पार द्वार' का अर्थ समझते चलें। यह वह द्वार है जो हमें बाहर से जोड़ता है किंतु भीतर भी आँगन है यानी व्यक्ति के अर्जित विस्तार को व्यापक विस्तार से जोड़ता है। इस प्रकार 'आत्म' का 'आत्मेतर' से सम्बन्ध रागात्मक और परस्पर आलोक का सृजन करने वाला बनता दिखाई देता है।

इस कविता में अज्ञेय ने एक चीनी लोक कथा का आधार लिया है। यह लोककथा उस भारतीय रंग रूप के आख्यान में बदल जाती है जिसमें किरीटीतरु के अंश से गढ़ी गई वीणा वस्तुतः असाधारण साधक वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना थी। विडम्बना यह कि वीणा तो पूरी हुई किंतु उसके भीतर का संगीत जागता इसके पूर्व ही वज्रकीर्ति का जीवन शेष हो गया। पहले हम उस चीनी लोककथा को देखें। डॉ. रामदरश मिश्र ने सन्दर्भ दिया है कि 'ओकाकुरा की 'द बुक ऑफ ट्री' में 'टेमिंग ऑफ द हार्फ' शीर्षक कथा में किरी नामक विलक्षण वृक्ष का उल्लेख मिलता है। इसी वृक्ष के अंश को लेकर एक जादूगर ने वीणा को निर्मित किया। वीणा चीनी सम्राट के पास थी। सम्राट को इसके भीतर सोये असाधारण संगीत का भान था किंतु उसने देखा कि इस वीणा का संगीत जगा सकने में कोई कलाकार सक्षम नहीं हो सका। राजकुमार पीवो ने एकांत साधना के द्वारा उस उच्चतर भूमि को स्पर्श कर लिया कि जिससे वह 'वीणा' बज उठी। सम्राट के पूछने पर राजकुमार ने यह अद्भुत उत्तर दिया कि उसे कुछ भी ज्ञात नहीं है। सिवाय इसके कि वीणा और उसके बीच एक योग बन गया, अर्थात उनके बीच का पार्थक्य मिट गया और वीणा बज उठी।

अज्ञेय इस कथा को जापानी ज़ेन साधना के सोपानों में ढाल देते हैं। उनकी दृष्टि में कहीं यह रचना और रचयिता के सम्बन्ध को गहराई से समझा जाने वाला अर्थवान रूपक है। इसीलिए प्रायः इस कविता को सृजन प्रक्रिया की निष्पत्तियों के साथ मिलाकर देखा गया है।

व्याख्या - वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना का प्रतिफल हुई वीणा राजा के पास है। अनेक कलावंतो ने उस वीणा को बजाने का उद्यम किया है किंतु निष्फल हुए हैं। राजा पुनः नयी उम्मीद के साथ प्रियवंद का आवाह्न करते हैं और उस विलक्षण वीणा को प्रियवंद को सौंपते हैं। राजसभा टकटकी लगाए प्रियवंद को देख रही है। प्रियवंद कम विलक्षण नहीं है। केशकंबली गुफागेह वासी प्रियवंद भी अनन्य साधक हैं। अपनी विकट लंबी साधना के चलते ही वे केशकंबली हुए हैं। अज्ञेय प्रियवंद की विशेषताओं के सन्दर्भ से साधना की उन एकांत नीरव स्थितियों की ओर संकेत करते हैं जिसके द्वारा कोई साधक अपने मन आत्मा और व्यक्तित्व की उच्चतम भूमि को प्राप्त कर सकता है। यह उस उदात्त को अर्जित करना है जिसमें स्वार्थ, संकीर्णता और किसी प्रकार का कलुष नहीं है। एक प्रकार से यही एकांत समर्पण के योग्य मन आत्मा और प्रतिभा की तैयारी है। अज्ञेय इसे 'अहं' का विलयन कहते हैं। प्रियंवद के सम्मुख राजा उस किरीटीतरु की विशालता गहराई व्यापकता और ऊँचाई का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः यह वृक्ष अखण्ड गतिमान परम्परा ही नहीं है, बल्कि समूची संसृति है। इस वृक्ष के आदि मध्य अंत में सृष्टि का पूरा वैभव विस्तार और भविष्य समाहित है। कविता में स्पष्ट रूप से यह प्रसंग आता है कि उत्तराखण्ड के उस शांत आत्मिक वैभव से परिपूर्ण वन खण्ड में वह वृक्ष संस्कृति के पितर सरीखा स्थित था। उसकी वत्सलता, शांति गंभीरता और विस्तार को अज्ञेय ने अनूठे ढंग से कहा है। वृक्ष इतना विशाल कि उसके कंधों पर बादल सोते थे, कानों में हिमशिखर अपना रहस्य कह जाते थे। जड़ें पाताल में दूर तक गयीं थी कि जिन पर फण टिका कर वासुकि सोता था। वन प्रान्तर के वासी हिमवर्षा से बचने के लिए उसके विस्तृत आच्छादन के नीचे आ जाते थे। भालू, सिंह आदि उसकी छालों से अपनी पीठ रगड़ लेते। सबका आत्मीय पितर, गुरू और सखा सरीखा यह वृक्ष अपनी काया में ही नहीं अपितु अपनी आत्मा में भी ममता से भरा हुआ सबके आत्मविस्तार को संभव करने वाला है। राजा का विश्वास है कि वज्रकीर्ति की कठिन साधना व्यर्थ नहीं होगी। वीणा बजेगी अवश्य अगर कोई सच्चा साधक उसी ममता समर्पण और आत्मविस्तार में ढल कर उसे अपने अंक में लेगा। यह कह कर राजा वीणा प्रियंवद को सौंपते हैं। सभी अत्यधिक उत्सुकता जिज्ञासा और प्रतीक्षा पूर्वक इसे देख रहे हैं, अर्थात् राजा, रानी, प्रजा समेत पूर्ण सभा उत्सुक और आतुर हैं।

प्रियवंद अपने केश कंबल पर बैठे, वीणा उस पर रखकर प्राणों को उर्ध्वता में साधा, आँखें बंद की और वीणा को प्रणाम किया। यह समाधि की आरम्भिक अवस्था थी। प्रियवंद के द्वारा रचा हुआ वह एकांत जिसमें उन्हें सभी चीजों से हटा कर अपने ध्यान को चरम एकाग्रता में केन्द्रित करना था। अज्ञेय ने यहाँ लिखा है- 'अस्पर्श छुवन से छुए तार' अर्थात प्रियंवद ने अपनी गहन होती हुई समाधि में 'वीणा' को अपने ध्यान में धारण किया। 'वीणा' उनके ध्याता का एकांत ध्येय थी और ध्यान को उस पर केन्द्रित करना उनकी ध्यान प्रक्रिया का आरम्भ था। ध्यान में डूबे हुए मद्धिम स्वर में प्रियंवद ने 'अहं' से मुक्त होने का प्रमाण भी दिया। उन्होंने कहा कि वे कलाकार नहीं बल्कि शिष्य साधक हैं। वे साधक होने की अपनी स्थिति को किसी महत्त्व बोध के साथ नहीं बताते। प्रियंवद उस महान वीणा की निकटता से रोमांचित है। 'वीणा' जो उस परम

अव्यक्त सत्य की साक्षी है, वज्रकीर्ति की महान साधन का प्रतिफल है और वह महान किरीटी वृक्ष। ऐसी अभिमंत्रित वीणा के ध्यान ने प्रियंवद में विलक्षण हर्षाकुलता को भर दिया।

क्रमशः प्रियंवद ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं। प्रियंवद मौन है, इस मौन के साथ सभा भी मौन है। प्रियंवद ने वीणा को गहरे समर्पण भरे प्रेम के साथ अपने अंक में ले लिया। इस अहंमुक्त साधक ने धीरे-धीरे झुकते हुए अपने माथे को वीणा के तारों पर टिका दिया। सभा की प्रतिक्रिया यह हुई कि क्या प्रियंवद सो गए, क्या वीणा का बजना सचमुच असंभव है?

अज्ञेय यहाँ कथा में नाटकीयता की युक्ति को सहेजते हैं। 'असाध्यवीणा' एक लंबी आख्यानपरक कविता है। इस युक्ति से कथा का नाटकीय तनाव बनता है।

कवि की दृष्टि प्रियंवद पर टिकती है और वह उस साधक की गहनतर होती हुई ध्यानावस्था के विषय में बताता है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में प्रायः व्यक्तित्व के संघटन की बात कही है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तित्व की सर्जनात्मक अर्थवत्ता बनती है। अपने व्यक्तित्व के एकांत साक्षात्कार के उन्हीं क्षणों में उसकी क्षमता का साक्षात्कार या आविष्कार किया जा सकता है। ज़ेन बुद्धिज्म द्वारा अर्जित सातोरी ध्यान पद्वति के अर्थ ने अज्ञेय को इसीलिए आकृष्ट किया। इस आत्म साक्षात्कार के द्वारा सबसे पहले आत्मपरिष्कृति रूप लेती है। इस कविता में भी प्रियंवद उस महान वीणा के स्वर को मुक्त करने लायक साधक होने की साधनावस्था में जब उतरते हैं तो आत्मपरिष्कार की भावभूमि को छूते हैं। एक स्पंदित एकांत का परिवेश है जो मौन से संभव है। शब्दों के निर्मम कोलाहल का थम जाना ही आत्मिक स्फुरण को गति प्रदान कर सकता है।

ध्यान दें कि सातोरी ध्यान पद्धति में निहित ध्यान की चारो अवस्थाओं का क्रमशः निरुपण 'असाध्यवीणा' में है। प्रथम अवस्था में ध्याता अपने अहं से मुक्त होकर विस्तृत भावभूमि के प्रति उन्मुख होता है। ऐसा करते हुए वह एक प्रकार की विस्मृति में चला जाता है जो समाधि की तरह है। इस समाधि में उसकी चेतना का ध्येय से सम्बन्ध होता है और उसकी विराटता और व्याप्ति को धारण करता है। तीसरी अवस्था में ध्याता और ध्येय का 'योग' अपनी अखंडता निर्मित करता है और चौथी अवस्था में ध्येय ध्याता के भीतर आविर्भूत होता है। यहाँ से हम 'प्रियंवद' के मौन समर्पण एकात्म और वीणा में संगीत अवतरण को समझ सकते हैं। इस प्रकार यह नीरव मौन की मुखरित महामौन तक की यात्रा है। इस समाधि के भीतर प्रियवंद की 'वीणा' के पितर कीरीटीतरू से गहरी समर्पित एकात्मकता बनती है। इसके साथ ही किरीटीतरू अपने व्यापक विशद विलक्षण जीवनानुभवों के साथ प्रियंवद की स्मृति में प्रकट होता है। प्रियवंद उसकी स्मृतियों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि सदियों, सहस्राब्दियों में असंख्य पतझरों के बाद नव-नव पल्लवनों ने जिसे निर्मित किया। जीवनानुभवों के ऐसे कितने ही वैविध्य हैं जिनका साक्षी है किरीटीतरू! बरसात की अंधेरी रातों में जुगनुओं ने जिसकी अपनी समवेत चमक से आरती उतारी। दिन को भँवरों ने अपनी गूंज से भर दिया। रात झिंगुरों ने अपने संगीत से सजाया और सवेरा अनगिनत प्रजातियों के पक्षियों के कलरव से भरता गया। उनका उल्लास

उनकी क्रीड़ाएँ किरीटीतरू के सर्वांग में आनंद की विह्वलता भर देती हैं। प्रियंवद सम्बोधन देते हैं ओ दीर्घकाय! अर्थात् ऐसे प्रकृत स्वर संभार के आमोद से भरे हुए विशाल वृक्ष उस वन प्रदेश में सबसे सयाने पिता, मित्र, शरणदाता सरीखे महावृक्ष तुम्हारे भीतर वे तमाम वन्य ध्वनियाँ समाहित हैं, मैं चाहता हूँ कि वे समस्त मेरी अनुभूति में अवतरित हों, मैं तुम्हारी उस मुखरित साकारता को अपने ध्यान में धारण करूं। महावृक्ष का इस प्रकार आह्वान करते हुए प्रियवंद को पुनः अपनी लघुता का बोध होता है, कहते हैं उस साक्षात्कार और योग का साहस कैसे पाऊँ, वीणा में अवस्थित संगीत को बलात मुखरित करने की स्थिति प्रियवंद को काम्य नहीं है, वह उसे उस अद्भुत वीणा से छीनने की स्पर्धा से विरत होकर पुनः अहं के विलयन के साथ महावृक्ष को राग और समर्पण पूर्वक सम्बोधित करते हैं। वे उसकी वत्सल गोद का आह्वान करते हुए कहते हैं कि हे तुम पिता मुझे अपने शिशु की तरह सम्हालो, मेरी बालसुलभ किलकें तुम्हारे वत्सल स्पर्श की प्रसन्नता से भर जाएं। इस प्रकार प्रियंवद अपने अस्तित्व को शिशु की निश्छल प्रेममयी भावभूमि में ले आते हैं। वे उस महावृक्ष में व्याप्त संगीत का स्वर में प्रकट होने का आह्वान करते हैं। वह संगीत जो उनकी सांसो को अपनी लय से आनन्द की चरम 'विश्रांति' की भावभूमि में भरा-पूरा करेगा। वे पुनः उस महावृक्ष का आदर और प्रेम के साथ आह्वान करते हैं। यहाँ हम प्रियंवद और किरीटीतरू के बीच के वत्सल एकात्म को अनुभव कर सकते हैं। प्रियंवद वीणा के अंगी स्वरूप तरु को जो रसविद् और स्मृति और श्रुति का सार स्वरूप है, तू गा! तू गा! कह कर पुकारते हैं।

महावृक्ष अपने समस्त जीवनानुभवों व स्मृतियों सहित मुखर हो उठा है। तू गा! के मनुहार को गुनता हुआ सा वह प्रियंवद की साधना को स्वीकार कर अपनी स्मृतियों का पुनः पुनः साक्षात्कार करता प्रतीत होता है। यहाँ हम उसके विशाल और निरन्तर हुए अनुभवों की लड़ियों को क्रमशः खुलते देखते हैं। महावृक्ष की स्मृति में निर्मल प्रकृति के अनेक अनुभव हैं। विशाल वन प्रदेश के नैसर्गिक क्रियाकलापों में बदली भरे आकाश की कौंध, पत्तियों पर वर्षा की बूंदों की टप-टप ध्वनि, निस्तब्ध रात में महुए का टप-टप टपकना, शिशु पक्षियों का चौंक-चिहुंक जाना, शिलाओं पर बहते झरनों का द्रुत जल, उनका कल-कल स्वर संभार, शीतभरी रातों का कुहरा, उसे चीर कर आती गाँवों में उत्सव के वाद्य वृंद की आवाजें, गड़रिये की बांसुरी के खोये-खोये से स्वर, कठफोड़वा का अपनी लम्बी चोंच से काठ पर ठक-ठक करना, फुलसुंघनी की क्षिप्र-चंचल गतियाँ ढ़रते हुए ओसकणों का हरसिंगार बन जाना, कुंजपक्षी की ध्वनियाँ, हंसों की पंक्तियाँ, चीड़ वनों में गंध उन्मद पतंग का ठिठकना टकराना, जलप्रपातों के स्वर, इन सबके भीतर निसर्ग की मुखरता, स्वरों के गतिरूप उसकी स्मृति में उतरते हैं।

इस क्रम में हम निरंतर दृश्यों में एक सूक्ष्म बदलाव देख सकते हैं। स्मृति के ऐसे आह्वान में जीवनानुभवों के शांत मृदुल कोमल ही नहीं भीषण रूप भी हैं। ये सभी प्रकृति के रूप हैं, स्वरों में नाना वैभव से सजी प्रकृति के इन रूपों में सुदूर पहाड़ों को घेरते आक्रान्त करते बढ़ते चले आते ऐसे काले बादल हैं जो हाथियों के समूह से लगते हैं, पानी का घुमड़ कर बढ़ना, करारों का नदी में टूट कर छप-छड़ाप गिरना, आंधियों की रोषभरी हुंकार, वृक्षों की डालों का टूट कर अलग हो

जाना, ओले की तीखीमार, पाले से आहत घास का टूटना, शीत जमी मिट्टी का धूप की स्निग्धता में क्रमशः कोमल होना हिमवर्षा से चोटिल धरती पर हिम के फाहे जैसे, घाटियों में गिरती चट्टानों का शोर क्रमशः धीमा और शांत होता हुआ, पहाड़ों के बीच के समतल की हरी घासों के निकट मध्यम कद के वृक्षों और तालाबों पर सुबह-शाम वन पशुओं का जुटना और शब्द करना, वे विविध स्वर भिन्न-भिन्न पुकारों से, कहीं गर्जना, कहीं घुर घुराना, चीखना, भूकना या चिचियाना, नाना पशुओं के अपने-अपने स्वर का विलक्षण मेल-जोल, तालों में छाये कुमुदिनी और कमल के पत्तों पर तेजी से जलजन्तुओं का सरक जाना, मेढक की तेज छलांगों से उत्पन्न ध्वनि, वन प्रांतर के निकट से गुजरते रास्तों पर पथिक के घोड़ों की टापें अथवा मंद स्थिर गति से चलते भैंसों के भारी खुरों की आवाजें, स्वरों का यह बहुरंगी स्वरूप सबका सब महावृक्ष की स्मृति में घुलकर घुलता गया है। अति प्रातः का वह दृश्य भी जब क्षितिज से भोर की पहली किरण झांकती है और ओस की बूंदों में उसकी सिहरन और दीप्ति उतर आती है, मधुमक्खियों के गुंजार में अलसाई सी वे दुपहरियायें जब घास-फूस की असंख्य प्रजातियों के नाना पुष्प खिल उठते हैं, शांत सी संध्याएं जब तारों से अनछुई सी सिहरने लगती हैं कुछ ऐसे जैसे आकाश में अश्रुभरी आँखों वाली असंख्य बछड़ों वाली युवा धेनुओं के आशीष उस गोधूलि बेला को पुलकन में रच रहे हों। कीरीटीतरू का अनुराग भरा स्वीकार यह है कि उस महावृक्ष ये स्वर और दृश्य अपने वैभव में अचंचल कर देते हैं, प्रत्येक स्वर वृक्ष के अस्तित्व को अपनी लय में लीन कर लेता है, यह जीवन की विराट बहुरंगी छवियाँ हैं जो वृक्ष की अस्मिता को अपनी स्फूर्ति तरलता संगीत और तरंग में डुबा देती है। यह व्यापक व्याप्त जीवन के प्रतीक किरीटीतरू की विस्मृति या कि समाधि अवस्था है जो अपने जीवन को उस व्याप्ति और वैविध्य में घुला कर अर्थ पाती है। इसीलिए उसका सच यह है कि- 'मुझे स्मरण है पर मुझको मैं भूल गया हूँ।' यह भी कि ''मैं नहीं, नहीं मैं कहीं नहीं'', वृक्ष की यह उदात्त समाधि अवस्था प्रियंवद की चेतना को अपनी व्याप्ति और ऊँचाई सौंपती है और वे कातर होकर अपने गूंगेपन में उस स्वर ज्वार का आह्वान करते हैं। पुनः पुनः वे किरीटीतरू का उसके समृद्ध जीवनानुभवों से अखण्ड तादात्मय के लिए आवाहन करते हैं और उस समस्त अर्जित संगीत के लय में ढल कर मुखर हो उठने की मनुहार करते हैं। 'अंग' में व्यापते अंगी को प्रियंवद इस तरह पुकारते हैं।

सघन समाधि में घटित होते इस आह्वान को अज्ञेय ने उसके उदात्त के अनुरूप ही शब्द दिये हैं। एक प्रकार से यहाँ साधना से साधना तक की अंतरंग यात्रा है। प्रियंवद की साधना वज्रकीर्ति की साधना को पूरा करने के लिए उस समग्र जीवन संगीत को टोहती है जिसका वैभव अपने जीवंत वैविध्य में किरीटीतरू में बसता है। एक सम्मोहन सा यहाँ बनता दिखाई देता है। सृजन की प्रक्रिया में निहित वह रहस्यमयता जिसका आत्मिक सा संवाद ही संभव है, यहाँ जैसे उस पूरे जादू की सृष्टि करती है और वीणा बज उठती है। उस संगीत को अज्ञेय ने स्वयंभू कहा है। उसके भीतर सृष्टा का अखण्ड मौन सोता है। सबके मर्म को गहराई तक जाकर झंकृत कर देने वाले संगीत के प्रभाव को भी अज्ञेय ने कुछ ऐसे देखा है कि प्रियंवद ही नहीं, राजा रानी, प्रजा समेत सभी उसमें एक साथ डूबते हैं, बिहारी के 'तंत्रीनाद कवित्तरस' वाले दोहे में आये 'सब अंग' से डूबने के अर्थ में ही डूबते हैं। किंतु उनका तिरना और पार लगना अपनी विशिष्ट निजताओं के

अर्थ में ही होता है अर्थात् सभी अपने चरम काम्य या अभीष्ट का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अज्ञेय यहाँ 'आत्मविलयन' के अपने उन्हीं आदर्शों को पुष्ट करते हैं जिनके अनुसार व्यक्तित्व को निःशेष करके समर्पित होना अर्थवान नहीं है बल्कि 'अस्मिता' के सृजनात्मक विशिष्ट अर्थ को अर्जित करने के बाद किया गया समर्पण ही मूल्यवान होता है। इस कविता में भी आप देखिए कि राजा ने जहाँ जयदेवी का मंगलगान सुना और महत्वाकांक्षा द्वेष चाटुकारिता नये-पुराने बैर से मुक्त होकर व्यक्तित्व का वह विरेचन अनुभव किया कि जिसमें धर्म ही प्रधान हो उठा और राज्य का दायित्व फूल सा हलका हो आया। इसी तरह रानी ने वस्त्राभूषणों की निरर्थकता अनुभव की, जीवन का प्रकाश केवल वह समर्पित नेह है जिसमें विश्वास है आश्वस्ति है अनन्यता है रस है। रानी भी निर्भार होती हैं। देखा जाए तो श्रोताओं ने स्वर को अपने-अपने जीवनानुभवों के अनुरूप सुना। यहाँ अज्ञेय ने साधना और रचना की जीवन सापेक्षता को देखा है। जिसका जैसा जीवन था, जिसे जो काम्य था प्रेय था, उसने उसका वैसा साक्षात्कार किया। अज्ञेय ने यहाँ काव्यात्मक ब्यौरे दिए हैं जिनका अर्थ ओझल या अमूर्त नहीं है। इस प्रक्रिया से गुजर कर 'इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी/संघीत हुई/पा गई विलय/'

अतः विलय पाना ही ध्येय है किंतु संघीत होकर विलय पाना ही श्रेयस्कर है। सभी श्रोता उस समाधिभाव से संयुक्त होकर ही संघीत हुए। प्रियंवद के साथ उन्होंने भी किरीटीतरू को उसकी समग्रता के साथ आत्मसात किया, इस तरह एक सेतु बना। अज्ञेय का बल 'महाशून्य' पर है। इस 'महाशून्य' में महामौन अवस्थित है। राजा और प्रजा की अत्यधिक प्रशंसा में भी अविचलित रहते हुए प्रियंवद ने पुनः वीणा को बजा देने का श्रेय स्वीकार नहीं किया बल्कि राजकुमार पीवों की तरह ही अपने एकांत आत्म विस्मरण, समर्पण और महाशून्य के अनिर्वचनीय अनुभव के विषय में बताया। यह भी कहा कि वही सबके भीतर है जब सब अपने भीतर उससे एकात्म होने की लय में स्थित हो जाते हैं तब वह गा उठता है। प्रियंवद ने उस 'महामौन' को अनाप्त अद्रवित और अप्रमेय जैसे विशेषण दिये हैं। इस प्रकार वह संगीत प्रियवंद सहित पूरे उपस्थित समाज को चेतना की उस उच्चतम भूमि पर ले गया जिसके कारण युग पलट गया।

इस प्रकार हम देखते है कि इस कविता में आया आख्यान पूरी तरह से रूपकात्मक है। किरीटीतरू, वज्रकीर्ति वीणा, प्रियंवद आदि सभी जीवनानुभवों की व्याप्ति तक मनुष्य की गति और उसके आत्मिक विरेचन की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। एक प्रकार से यह उत्कृष्ट रचना के लिए जरूरी जीवन सम्बद्धता की भी बात है। अज्ञेय ने रचना में सत्यान्वेषी दृष्टि के साथ धंसना स्वीकार किया है। इस सत्य को जानने और व्यक्त करने के लिए उच्चकोटि की रचनात्मक निस्पृहता को भी जरूरी माना है। इस प्रकार अज्ञेय एक आवेगमय वस्तुनिष्ठता पर भी ध्यान देते हैं।

अज्ञेय की काव्यभाषा का रूझान शब्दान्वेषण की और प्रायः देखा गया है। इस दृष्टि से वे तत्सम के अतिरिक्त तद्भव देशज यहाँ तक कि ग्रामज शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। कई बार वे शब्दों की नई अर्थछवियों को भी खोजते हैं। भाषा को अज्ञेय काव्यात्मक लचीलेपन में ढालते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अज्ञेय की काव्यभाषा उनके भाव वैविध्य को व्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम

है। रुपकों, प्रतीकों के साथ-साथ नये उपमानों के प्रयोग की दृष्टि से भी अज्ञेय की काव्यभाषा समर्थ है। प्रकृति के अछूते बिंबों ने 'असाध्यवीणा' की भाषा को खास तौर पर सजाया है। 'कविता' में काव्योचित तरलता और आवेग को प्रतिफलित करने के लिए अज्ञेय ने 'गद्य' को अर्थ की लय से संवारा है। इस लय की खासियत यह है कि यह शब्दों के निकटवर्ती अंतरालों में अर्थ की व्यापक संभावनाएं भर देती है।

अभ्यास प्रश्न: 2

- अपने उत्तर नीचे दिये गए स्थानों में दीजिए।
- इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए

क) अज्ञेय के लिए 'संवेदना' का क्या अर्थ है?

ख) असाध्यवीणा का केन्द्रीय भाव क्या है?

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक .... है।

ख) असाध्यवीणा का निर्माण .... ने किया था।

ग) 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं

(1)............................(2) ....(3) ....

घ) 'असाध्यवीणा' की साधना में .... पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) 'चक्रमितशिला' से क्या तात्पर्य है?

ख) चीनी लोककथा के विषय में बताएं

ग) किरीटीतरू के विषय में बताएं

घ) वीणा से जुड़ने के लिए प्रियंवद ने क्या किया?

----

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) राजा ने वीणा बजाने के लिए किसे आमंत्रित किया।

i) 'पीवो' नामक राजकुमार को ii) वज्रकीर्ति को iii) प्रियंवद को

ख) सातोरी ध्यान पद्धति में ध्यान की कितनी अवस्थाएं हैं

i) दो ii)चार iii) पाँच

ग) वीणा में सोये संगीत को किस तरह जगाया गया?

i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा ii) याचना करके iii) आह्वान करके

2.6 सारांश

अज्ञेय के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके समय का वह यथार्थ है जिसने मनुष्य की रागात्मक संवेदना को सबसे ज्यादा निर्मूल किया है। मानवीय निकटताओं और हृदय की सहज स्वाभाविकताओं से कटने के लिए अभिशप्त होना उसका सबसे बड़ा संकट है। मनुष्य की चेतना और व्यवहार को खंडित करने वाले इस यथार्थ की विसंगति और प्रहार के जवाब में अज्ञेय ने उसकी रागात्मकता और सामाजिक जवाबदेही से सुसंस्कृत मानवीय रूपों के लिए संघर्ष की नई

जमीन को अपने साहित्य में लगातार खोजा है। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता की अन्तर्वस्तु संवेदना और भाषा के स्तर पर संघटित व्यक्तित्व के लिए जरूरी प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति करती है।

2.7 शब्दावली

1. निर्भार	-	भार रहित
2. अभीष्ट	-	चाहा हुआ
3. स्फुरण	-	अंग का फड़कना, उमगना, उमंग पूरित होना
4. आत्म विस्मरण	-	स्वयं को भूल जाना
5. विरेचन	-	शुद्धि
6. अप्रमेय	-	जो नापा न जा सके
7. खगकुल	-	पक्षियों के समूह
8. दीर्घकाय	-	विशाल शरीर वाला
9. अभिमंत्रित	-	मंत्र द्वारा संस्कारित किया गया
10. अनिमेष	-	निरन्तर, पलक झपकाये बिना

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

1) दो-तीन पंक्तियों के उत्तर

क) 'असाध्यवीणा शीर्षक कविता का मूल मंतव्य: 'असाध्यवीणा' सृजन प्रक्रिया का रूपक है। सृजन के लिए रचनाकार का सम्पूर्ण समर्पण जरूरी है। इसके द्वारा ही वस्तु का समग्र रचनात्मक साक्षात्कार संभव है।

ख) अन्वेषण को अज्ञेय ने रचनाकार के लिए जरूरी रचनात्मक युक्ति माना है। इसके द्वारा नये भावबोध का अनुभव और उसके अनुरूप संवेदना और भाषा का नयापन संभव है।

ग) अज्ञेय ने सृजन के लिए रचनाकार में उच्चतम भावभूमि हेतु साधना को अनिवार्य माना है। इसके द्वारा वह संघटित होता है और रचनात्मक अस्मिता को भी अर्जित करता है।

घ) अज्ञेय का जन्म 07 मार्च 1911 को कुशीनगर के पुरातात्विक खनन शिविर में हुआ, इनके पिता पं. हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति:

क) ‘असाध्यवीणा’ आँगन के पार द्वार’ शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ‘उत्तर प्रियदर्शी’

ग) अज्ञेय को ‘आँगन के पार’ शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

घ) अज्ञेय, चंद्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) ‘आँगन के पार द्वार’ संग्रह की कविताओं का झुकाव उस विशिष्ट आध्यात्मिकता की ओर है जिसके केन्द्र में मनुष्य है। इसे ही अज्ञेय का नवरहस्यवाद भी कहा गया है यहाँ कवि ‘आत्म’ को असीम को धारण कर सकने की क्षमता में परिष्कृत करना चाहता है, यह ‘मम’ की ममेतर से जुड़ने की वह प्रक्रिया है जो आत्म को ‘विराटता’ और ‘विराटता’ को आत्म का वैशिष्ट्य सौंपती है।

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिताविलय का अर्थ ‘मम’ ‘ममेतर’ अर्थात ‘आत्म’ और ‘व्यापक’ का ऐसा सम्बन्ध है जिसके द्वारा ‘अस्मिता’ व्यापक में निःशेष न होकर व्यापक के प्रकाश से आलोकित सृजनात्मक और सार्थक होती है। समुद्र की सतह से हवा का बुलबुला पीने के लिए उछली मछली में केवल जिजीविषा नहीं बल्कि सागर और आकाश के विराट से जुड़ कर मिला स्पंदन भी है, इसी तरह सूर्य की किरणें एक बूंद को अपने आलोक में भर देती हैं।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) iii) तारसप्तक ख) iii) अरे यायावर रहेगा याद!

अभ्यास प्रश्न 2 :-

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर-

क) अज्ञेय के लिए संवेदना वह यंत्र है जिसके द्वारा मनुष्य शेष संसार के अर्थ और यथार्थ से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

ख) ‘असाध्यवीणा’ के केन्द्र में सृजन प्रक्रिया है जो आत्म और वस्तु के बीच सम्पूर्ण समर्पण से सम्पन्न होती है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) 'असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक चीनी लोककथा है।

ख) 'असाध्यवीणा' का निर्माण वज्रकीर्ति ने किया था।

ग) 'आँगन के पार द्वार' काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं-

(1) 'अन्तः सलिला, (2) 'चक्रान्तशिला', और (3) 'असाध्यवीणा'

घ) 'असाध्यवीणा' की साधना में सातोरी ध्यान पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'चक्रमित शिला' एक घूमती हुई शिला है जिसे अज्ञेय ने काल की गति के रूपक के रूप में ग्रहण किया है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ पियेरे-क्वि-वीर, के प्रभाव में अज्ञेय ने इसके अर्थ से संगति अनुभव की। यह चक्रमितशिला ही चक्रांतशिला है।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) iii) प्रियंवद को   ख) ii)चार   ग) i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा

2.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वात्स्यायन, सच्चिदानंद हीरानंद 'अज्ञेय, आँगन के पार द्वार।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या।

3. बाजपेई, नन्द दुलारे, आधुनिक साहित्य: नया साहित्य नये प्रश्न।

4. बांदिवडेकर, चंद्रकांत, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन।

5. माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता: सीमाए और संभावनाएं।

6. शाह, रमेशचन्द्र (सम्पादक), असाध्य वीणा और अज्ञेय।

2.10 निबन्धात्म्क प्रश्न

1. असाध्य वीणा की रचनात्मक उपलब्धि की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 मुक्तिबोध - पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कवि परिचय
    3.3.1 रचनाकार – व्यक्तित्व
    3.3.2 रचनाएँ
        3.3.2.1 पद्य रचनाएँ
        3.3.2.2 गद्य रचनाएँ
3.4 काव्य संवेदना
    3.4.1 काव्य यात्रा का विकास
    3.4.2 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवं आस्था
    3.4.3 मानवीय संवेदना
    3.4.4 जीवन संघर्ष एवं संत्रास का चित्रण तथा यथार्थ बोध
    3.4.5 जिजीविषा एवं आस्था
    3.4.6 आत्मचेतन एवं आत्मविश्लेषण
    3.4.7 मानव मूल्य
    3.4.8 युग बोध
    3.4.9 जीवन दर्शन - काव्य दृष्टि
3.5 शिल्प विधान
    3.5.1 भाषा की सर्जनात्मकता
    3.5.2 बिम्ब विधान
    3.5.3 प्रतीक
    3.5.4 फैंटेसी शिल्प
    3.5.5 छंद एवं लय
3.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मुक्तिबोध नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं उनका सम्पूर्ण रचना संसार समाज व्यवस्था, समकालीन सच्चाइयों, व्यवस्थागत विसंगतियों, अन्तर्विरोधों के बीच जन-जन की पीड़ा एवम् विक्षोभ का आलेख है। जिए एवं भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं मानवीय सम्भावनाओं के यर्थाथ चित्रण के कारण उनका रचना संसार समसामयिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है, मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते हुए आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। उस युगीन परिवेश को कविता में उतारा है जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत- विक्षत है। शोषण के भयानक दुष्चक्रों के बीच पिसते व्यक्ति की त्रासदी की गाथाएँ मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं के कथ्य रहे हैं। उनकी रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम मानवीय सम्भावनाओं का मार्मिक दस्तावेज हैं। वे मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के प्रति अपनी वैचारिक आस्था, शोषित पीड़ित मानवों के प्रति गहन निष्ठा एवं भविष्य के प्रति आशान्वित रहने के कारण सच्चे मानवतावादी कवि हैं।

सपने से आते हैं

किसी दिन पुराने मुहल्ले सब साफ होंगे।

मानव घुकघुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिल खिलाएगा।

(मुक्तिबोध स्वनावली भाग 2-232)

मुक्तिबोध ने संवेदना एवम् शिल्प दोनों ही धरातलों पर काव्य सर्जना की विशिष्टिताओं को मापदण्ड के रूप में साहित्य धरातल पर रखा, जिसके आधार पर समकालीन साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका तथा उसे नयी पहचान प्राप्त हो सकी। आगे के बिन्दुओं में हम मुक्तिबोध काव्य की विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मुक्तिबोध के जीवन, व्यक्तित्व, उनकी सृजन यात्रा एवम् युगीन परिवेश से परिचित हो सकेंगे।

- मुक्तिबोध की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नयी कविता के प्रमुख कवि के रूप में मुक्तिबोध की रचनाधर्मिता एवं काव्य संवेदना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विभिन्न पड़ाव तथा मानवीय मूल्य एवं मानवीय सरोकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता से परिचित हो सकेंगे।
- कवि की मूल संवेदना, युग यथार्थ के प्रति आग्रह, तनाव, अन्तर्द्वन्द जीवन संघर्ष, जनवादी काव्य दृष्टि एवं मानवीय संकल्पनाओं के प्रति आस्था आदि प्रमुख काव्य प्रवृतियों से परिचित हो सकेंगे।
- मुक्तिबोध के काव्य का शिल्प विधान, काव्य भाषा, बिम्ब विधान प्रतीक, छंद, लय तथा मुक्तिबोध के काव्य शिल्प का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप फेंटेसी का शिल्प जिसे अपनाकर मुक्तिबोध ने सम्पूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति की है, आदि शिल्पगत प्रयोगों को गहराई से समझ सकेगें।
- मुक्तिबोध किन अर्थों में अपने समकालीन कवियों से भिन्न हैं? तथा नयी कविता के बीच उनका क्या महत्त्व है? समझ सकेंगे।
- मुक्तिबोध का नये साहित्य के प्रमुख रचनाकार के रूप में मूल्याँकन कर सकेगे।

3.3 कवि परिचय

मुक्तिबोध का पूरा नाम है गजानन माधव मुक्तिबोध, मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 की रात 2 बजे श्यौपुर जिला मुरैना में कुलकर्णी ब्राह्मण माधवराव जी के घर हुआ था। पूर्व में इनके पूर्वज महाराष्ट्र जलगाँव खान्देश में रहते थे, इनके किसी विद्वान पूर्वज ने खिलजीकाल में ‘मुक्तिबोध’ नाम का आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा था। कालान्तर में उसी आधार पर इनके वंशज मुक्तिबोध संज्ञा से अभिहित किए जाने लगे।

पिता श्री माधवराव मुक्तिबोध तत्कालीन ग्वालियर राज्य के पुलिस विभाग में पुलिस सब इन्सपेक्टर के पद पर कार्यरत थे। पिता के बार-बार स्थानान्तरण के कारण मुक्तिबोध की प्रारम्भिक शिक्षा अस्त व्यस्त ढंग से हुई। उन्हें उज्जैन से 1930 में दी गयी ग्वालियर बोर्ड की मिडिल परीक्षा में असफलता का मुँह देखना पड़ा। 1935 में माधव कालेज उज्जैन से इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की। 1938 में इन्दौर के होल्कर कालेज से बी0ए0 उत्तीर्ण करने के साथ कविता के प्रति रुचि बढ़ी। सन् 1939 में उन्होंने पारिवारिक असहमति एवं सामाजिक अवरोधों का तिरस्कार कर प्रेम विवाह किया। 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर मण्डी में 'शारदा शिक्षा सदन' में अध्यापक हो गये। किन्तु यहीं से उनके जीवन में दुःख, अभाव एवम् संघर्ष की कहानी की शुरूआत भी हो गयी।

1943 में हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण काव्य संकलन 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसमें मुक्तिबोध की कविताएं छपी। मुक्तिबोध इसी बीच इन्दौर से उज्जैन चले गए। बेहतर जीवन जीने की लालसा ने अध्यापकी से पत्रकारिता की ओर आकर्षित किया। पर पत्रकारिता के क्षेत्र ने उनके जीवन में अधिक भटकाव दिया। जीवन में स्थिरता की चाह में एम0ए0 की परीक्षा दी। 1959 में एम0ए0 करने के चार साल उपरान्त उनकी नियुक्ति राजनाँदगाव में प्राध्यापक के रूप में हो गयी। वहाँ का वातावरण सुखद था, अतः मुक्तिबोध ने सफलतम कविताओं की रचना यहाँ की। इन्हीं दिनों मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस', 'औराग उटांग', 'अंधेरे में' की रचना की तथा लिखा ''जिन्दगी बहुत तल्ख़ है लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना। जी होता है सारी जिन्दगी एक घूँट में पी ली जाए।'' 1962 में जीवन की एक विद्रूप घटना ने मुक्तिबोध की जीवन शक्ति को तोड़ दिया। उनकी पुस्तक 'भारत इतिहास और संस्कृति' पर मध्यप्रदेश सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी के पश्चात 17 फरवरी 1964 को मुक्तिबोध मैनिनजाइटिस नामक घातक बीमारी से पीड़ित हो गए। उन्हें पक्षाघात का सामना करना पड़ा। अपनी अदम्य जीवन शक्ति के आधार पर वह कुछ दिनों मौत से लड़ते रहे अंततः 11 सितम्बर 1964 में मौत जीत गयी उनकी जिजीविषा मृत्यु के सम्मुख हार गयी।

3.3.1 रचनाकार का व्यक्तित्व

मुक्तिबोध के कवि तथा मुक्तिबोध एक मनुष्य के बीच किसी प्रकार की दूरी नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा था -

''गलत के खिलाफ नित

सही की तलाशमें

इतना उलझ जाता हूँ कि

जिन्दगी का जहर नहीं

लिखने की स्याही मैं

पीता हूँ।''

उनके बाह्य व्यक्तित्व के विषय में गौरीशंकर लहरी ने लिखा है ''लम्बा डील, दुबला पतला शरीर, हड्डी की प्रधानता से मांस का भाग दबा, हाथ का ऊँगलियाँ और हथेली बिल्कुल लुचई सी लचीली और मुलायम। छाती में इतने बाल कि जंगल। चेहरे में सूची भेद्य आँखें, बड़ी-बड़ी जिनमें भावुकता तथा भावावेश का टूर्नामेंट। माथा खूब फैला हुआ कि भाग्यवान के साइनबोर्ड जैसा। साँवली छब में त्वचा का स्वभावतः रंग व्यक्त होने के साथ मानव की छाती पर पड़ने वाली चोटों का व्यापक रंग चढ़ा था। समुंदर का गर्जन साथ में सिमटा- सिमटा था जो तब मालूम होता जब अनाचार, अशोभन और असंस्कृत के प्रति उनके नथुने फड़क उठते थे।''

चाय और काफी के प्यालों में डूबकर मुक्तिबोध खुद को बौद्धिक परिश्रम के लिए तैयार करते। मुक्तिबोध अत्यन्त भावुक एवं सरल प्रकृति के इंसान थे। अपने मित्रों को लिखे पत्र उनके व्यक्तित्व की भावुकता को प्रदर्शित करते हैं। मुक्तिबोध के व्यक्तित्व में विद्रोह की भावना समग्रता में विद्यमान थी। अपनी प्रवृति से वह घुमक्कड़ प्रकृति के इंसान थे। जिस प्राकृतिक वातावरण को उन्होंने घूम कर, भटक कर देखा था उसका उपयोग उन्होंने कविताओं में किया। उन्हें जो जीवन जीने हेतु प्राप्त हुआ उसमें तनाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द, विक्षोभ, आवेग घुलते रहे तथा कविता के कैनवास पर यह सब एक विशाल फैंटेसी के रूप में उभरते गए। अपने रास्ते की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देते हुए, जीवन के कटु आघातों को हृदय पर झेलते हुए वे हमेशा सृजनरत रहे। श्री के पार्थ सारथी के शब्दों में ''वह मात्र एक मनुष्य ही नहीं थे वरन मनुष्य की एक संस्था थे। वह दार्शनिक शिक्षक, एक कवि एवं इतिहासकार थे। वह विद्वानों के बीच विद्वान राजनीतिज्ञों में राजनीतिज्ञ, शिक्षकों में शिक्षक और अपने एकान्त में और कार्य करते हुए पीड़ित मानवता की समग्रता के रूप थे। वह विरोधी प्रवृतियों के संकलन थे, वह एक रोमानी रहस्यवादी थे जो धरती के पुत्र की तरह रहते थे। वह प्रतिभाशाली, नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान धार्मिक विद्रोही थे जो जीवित परम्पराओं में आस्था रखते थे लेकिन जिन्हें रहस्यवादी मूर्च्छाओं से दूर रखना कठिन लगता था। उनके पास जीवन का गहन दर्शन था। वह निरन्तर सोचते रहे कि दुःख दैन्य जैसी जीवन की विषम परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यक्तित्व का

विकास कैसे हो और फिर भी समाज में रहना उन्हें प्रीतिकर लगता था। वह इतने अधिक व्यक्तिवादी कि किसी भी पार्टी अथवा दल में सम्मिलित नहीं हुए दूसरी ओर उनमें ऐसा व्यक्तिवाद था जो स्वयं में सारे विश्व को समाए रखता है।

किसी भी साहित्यकार के रचनाशील व्यक्तित्व के अन्तर्गत उसकी विचारधारा, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसका ज्ञान कोश, उसकी अनुभूतियाँ, उसका चरित्र, उसकी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक स्थिति, उसकी अभिरूचियाँ, उसके जीवन संघर्ष एवम् उसके व्यवहार आदि के समन्वित रूप को लिया जाता है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध की कविताओं की बनावट में उनका समग्र व्यक्तित्व अनुस्यूत है। मुक्तिबोध के शब्दों में ''जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होंगे ही और वे साहित्य में भी उतरेंगे। यह सही है कि साहित्य में आकर उनकी रूपरेखा बदल जाएगी किन्तु उनके तत्व कैसे बदलेंगे। जिन्दगी के जो रूख हैं, जो रवैये हैं, जो एटीट्यूट हैं वे साहित्य में अवश्य प्रकट होंगे।'' मुक्तिबोध से स्पष्ट कहा था कि नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म चेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। मुक्तिबोध का सृजनधर्मी व्यक्तित्व नयी प्रगति, नवीनमूल्य, जन-जन के प्रति अत्यन्त सजग एवं सतर्क है। मानवीय जीवन की विविध संकल्पनाओं से पूर्ण है। मानवीय संवेदना उनकी काव्यचेतना का मूलाधार है।

3.3.2 रचनाएँ

3.3.2.1. काव्य

- चाँद का मुँह टेढ़ा है
- भूरी भूरी खाक धूल

3.3.2.2 आलोचनात्मक

- कामायनी: एक पुनर्विचार
- भारत: इतिहास और संस्कृति
- नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध
- नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र
- एक साहित्यिक की डायरी

कथा साहित्य

- काठ का सपना
- विपात्र

- सतह से ऊपर उठता आदमी

1980 में नेमिचन्द्र जैन के सम्पादकत्व में छः खण्डों में प्रकाशित 'मुक्तिबोध रचनावली' में मुक्तिबोध की समस्त रचनाएँ संग्रहित कर प्रकाशित की गयी हैं -

मुक्तिबोध रचनावली - प्रथम खण्ड - 1935 से 1956 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - द्वितीय खण्ड - 1957 से 1964 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - तृतीय खण्ड- 1936 से 1963 तक रचित कथात्मक लेख

मुक्तिबोध रचनावली - पंचम खण्ड -नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

मुक्तिबोध रचनावली - षष्टम खण्ड - पत्रिकाओं में लिखे आलेख एवं मित्रो को लिखे पत्र

अभ्यास प्रश्न 1

1. मुक्तिबोध का पूरा नाम लिखिए।

....
....
....

2. मुक्तिबोध के दो काव्य सग्रहों के नाम लिखिए।

....
....
....

3. मुक्तिबोध की कविताएँ सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के किस महत्त्वपूर्ण संकलन में प्रकाशित हुई?

....
....
....

4. तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार ने मुक्तिबोध की किस पुस्तक को प्रतिबन्धित किया।

....

....

....

5. मुक्तिबोध के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

3.4. काव्य संवेदना

3.4.1 काव्य यात्रा का विकास

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में विभिन्न चिन्तकों, विचारकों, महापुरुषों, जीवन दर्शनों से प्रभावित होकर अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण करता है। कवि तथा रचनाकार के संदर्भ में यह प्रभाव उसकी कृतियों में पूर्णतः परिलक्षित होता है। जीवन के विविध पड़ावों में विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित कवि व्यक्तित्व का निर्माण होता चला जाता है। उसकी रचनाओं का स्पष्ट विकास क्रम सामने आता है। मुक्तिबोध की सम्पूर्ण रचनाओं में उनकी उत्तरोत्तर विकासमान जीवन दृष्टि का स्पष्ट परिचय मिलता है। समय तथा जीवन दृष्टि के आधार पर मुक्तिबोध की रचनाओं को निम्न क्रम दिया जा सकता है।

1. प्रारम्भिक रचनाएँ - 1935 से 1939 तक की छायावादी जीवन दृष्टि तथा एक तरूणकवि का स्वप्निल लेखन।

2. तार सप्तक एवम् समकालीन रचनाएँ - 1940 से 1948 तक वर्गसॉ के चिन्तन से प्रभावित किन्तु एक निजी मुहावरे की खोज।

3. मुक्तिबोध की मध्यकालीन रचनाएँ- 1948से 1956 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवम् कविता की प्रखर सर्जनात्मकता।

4. मुक्तिबोध की उत्तरकालीन रचनाएँ- 1956 से 1964 तक मानवतावादी जीवन दृष्टि एवम् लम्बी कविताओं की सर्जना।

मुक्तिबोध की काव्य संवेदपना, भावबोध एवं वैचारिकता को आधार बनाकर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन इस प्रकार भी किया जा सकता है।

1. वैयक्तिक सुख-दुख से अनुप्रेरित भावप्रवण रचनाएँ।
2. वर्गसाँ के चिन्तन से प्रभावित रचनाएँ
3. मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित रचनाएँ
4. आत्मान्वेषण तथा आत्मविश्लेषण परक रचनाएँ
5. विशुद्ध मानवतावादी रचनाएँ।

मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार की भावनाओं से अभिप्रेरित हैं। मुक्तिबोध ने तार सप्तक की भूमिका में मालवे की प्राकृतिक सौन्दर्य को सृजन की आद्यप्रेरणा स्वीकार किया। जीवन में क्रियाशील तथा रचना शील होने हेतु उन्हें जिस आस्था विश्वास तथा सृजनात्मक प्रेरणा की आवश्यकता थी वह वर्गसों के जीवन दर्शन से मिला।

जाने कौन, कैसे किन स्तरों से, फूट पड़ती यह अजस्रा अश्रुधारा

जो कि उद्गम स्रोत का आदिम सम्भाले बल, कदाचित

विविध प्रान्तों, विविध देशों में बनाए कूल बहती चली जाए।

तिमिर आप्लावित जगत यह दीर्घ है सुविशाल है आगे धरा है।

अन्तःकरण का आयतन, चकमक की चिन्गारियाँ, जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे की रचना इसी प्रभाव में की गयी।

मुझे कदम कदम पर चौराहे मिलते हैं

बाहें फैलाए

एक पैर रखता हूँ कि

सौ राहें फूटती

व उन पर से गुजरना चाहता हूँ।

मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि आन्तरिक शांति के विनष्ट होने तथा शारीरिक घ्वंस के क्षणों में वर्गसाँ के व्यक्तिवादी दर्शन ने उन्हें सुरक्षा कवच प्रदान किया, पर 1942 के आस पास क्रमशः झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ, अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त, अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

3.4.2 मार्क्सवादीजीवन दृष्टि एवं आस्था

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया मानते हैं। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित उनकी काव्य सर्जना में वर्ग चेतना मुखर हो उठी है। वे उच्चवर्ग की साधन सम्पन्नता, भौतिक लिप्सा, मध्यवर्ग की अवसवादिता तथा खोखली जिन्दगी, निम्न मध्य वर्ग की टूटती-घुटती जिन्दगी के आलोचक थे। मार्क्सवाद के प्रति गहन रचनात्मक आस्था होते हुए भी उनकी कविता मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचारवादी भाष्य नहीं बनी क्योंकि उन्होंने काव्य सर्जना के लिए मार्क्सवाद का उपयोग नहीं किया अपितु अपनी रचना प्रक्रिया में उसे सत्य संवृत, सांसारिक अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक वस्तुपरक वैज्ञानिक संगति की खोज का आधार माना। वे मानते थे -

चाहे जिस देश प्रान्त पुर का हो

जन-जन का चेहरा एक,

एशिया की यूरोप की

कष्ट, दुख, संताप की

चेहरों पर पड़ी हुई, झुर्रियों का रूप एक।

× × × × ×

वह गरीब धुकुधुकी

कि बेनसीब धुकधुकी

अथक चलती रहती है कोरे करुण स्वरों में।

× × × × ×

मुक्तिबोध के समक्ष वास्तविकता के तिक्त, कटु संवेदन को सम्पूर्ण सच्चाई तथा भयानकता के साथ ग्रहण कर उसे अभिव्यक्ति देना एक मात्र जीवन का सत्य था। उनकी कविताएँ व्यवस्था के

बीच पिसते व्यक्ति का दस्तावेज हैं। उनकी कविताएँ अनुभवों के विस्तृत फलक पर मेहनतकश, बेसहारा, शोषित, पीड़ित मानव का जीवंत यथार्थ हैं। 'जिन्दगी की रास्ता', 'भविष्य धारा', 'जमाने का चेहरा', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'सूरज के वंशधर', 'बारह बजे रात के', 'एक प्रदीर्घ कविता' आदि अनेक कविताएँ समाज विकृतियों का दर्पण हैं। इनमें नवीन समाज की स्थापना के स्वप्न भी समाए हैं।

3.4.3 मानवीय संवेदना

मुक्तिबोध का कविता संसार मानवीय स्थितियों के चित्रण का संसार है। वे मानवीय संभावनाओं के कवि भी हैं। उनकी कविता समाज की वास्तविकता, अन्तर्विरोध, तनावों का ही चित्रण नहीं करती अपितु समाज सापेक्ष व्यक्ति की मुक्ति की प्रामाणिक खोज भी है। उन्होंने अपनी कविता को युग जीवन के मटमैले क्षितिज पर धुंधले छितरे काले मेघ बताया है। एक गहरी मानवीय संवेदना की अजस्र धारा मुक्तिबोध की कवितओं में आद्यत्त बहती रहती है। मानवीय जीवन के प्रति गहन सम्पृक्ति मुक्तिबोध की कविता की पहचान है। उनकी सम्पूर्ण आस्था, सम्पूर्ण विश्वास की धूरी मानव है जो दुख दैन्य की तपन से तप रहा है।

आह! त्याग की उत्कट प्रतिमा होरी, महतो, भोली धनिया

जाग रहे हैं

काम कर रहे हैं अब भी अपने खेतों में

× × × × ×

आँखों में तैरता है चित्र एक

उर में सँभाले दर्द

गर्भवती नारी का

जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से

कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़।

3.4.4 जीवन संघर्ष एवम् संत्रास का चित्रण तथा यथार्थबोध

मुक्तिबोध अपनी काव्य यात्रा के विकास क्रम में ज्यों ज्यों मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, उनकी कविता यथार्थोन्मुख होती चली गयी है। उनका सम्पूर्ण काव्य वर्तमान समाज व्यवस्था के वास्तविक एवम् सम्भावित रूपों का चित्रण है, जिसमें यथार्थ के ऐतिहासिक स्वरूप का ज्ञानात्मक बोध है, इतिहास की जटिल प्रक्रिया की वैज्ञानिक समझ है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत मानव की पीड़ा का दंश है। समाज तथा ऐतिहासिक अन्तर्विरोधों की स्पष्ट अनुगूँज है। कविता यथार्थ की स्थिर दशाओं का चित्रण न होकर सामाजिक यथार्थ के विकास और परिवर्तन की प्रक्रियाओं का चित्रण है। सामाजिक यथार्थ अपनी गत्यात्मकता में मूर्तिमान हो उठा है। मुक्तिबोध की कविताएँ मात्र वैचारिक संलाप न रहकर सत्य के अनवरत क्रम से सामने आने वाले विविध दृश्य चित्र सी प्रतीत होती हैं। बीसवीं शताब्दी के पचासवें दशक का सत्य उनकी कविता का कथ्य बना है उसमें गाँव तथा बस्तियों का उजड़कर शहर बनना, मेहनतकश बन्धुआ मजदूर की वेबसी, भूख, प्यास, पीड़ा से सन्त्रासित मानवीय स्थितियाँ हैं। अनाचार, अतिचार, व्यभिचार से स्याह जीवन के विविध रंग हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, विलासिता, अवसर वादिता आदि वर्तमान समाज के किसी भी परिदृश्य को मुक्तिबोध ने अनदेखा नहीं किया है, वह युगधर्मी रचनाकार हैं, युग यथार्थ के प्रति उनकी पक्षधरता उन्हें विशिष्ट बना देती है 'चुप रहो मुझे सब कहने दो', 'अंधेरे में, हे प्रखर सत्य दो', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' इसी सत्य को उद्धाटित करने वाली रचनाएँ हैं। युग सत्य जटिल है अतः उसे उद्धाटित करना सरल नहीं। कवि लम्बी कविताओं के माध्यम से ही इसे उद्धाटित करने में सफल हो सका है। मुक्तिबोध ने सिद्ध कर दिया कि समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार सबसे बड़ा रचनाधर्म है।

मुक्तिबोध को संत्रास का कवि माना गया है क्योंकि उन्होंने जीवन के संत्रास को वाणी दी है। मुक्तिबोध ने जो अन्तर्बाहय वेदना भोगी है वही काव्य में मुखरित हो उठी। अतः काव्य में संत्रास के वीभत्स एवं भयानक चित्र भी उभरे हैं।

वे जहाँ आन्तरिक संत्रास को व्यक्त करते हैं

पिस गया वह भीतरी

औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच

ऐसी ट्रेजडी है नीच।

3.4.5 जिजीविषा एवम् आस्था

मुक्तिबोध की कविताएँ संक्रान्ति युग की स्थितियों का अंकन करती हैं। वह समकालीन परिवेश का दस्तावेज हैं। समाज का वास्तविक दर्पण हैं उनमें तीक्ष्ण युग बोध हैं यंत्रणा, भूख, प्यास, दैन्य, हताशा, पीड़ा, संत्रास के भयावह चित्र हैं। किन्तु इन सबके बावजूद एक आशा है। परिवर्तन की आकांक्षा है। समाज की स्थितियों के बदलने का विश्वास है जो उन्हें चीख चिल्लाहट का नहीं अपितु आस्था का कवि बनाती है। उन्हें सच्चा जन-जन का कवि बना देती हैं -

दीखते हैं सभी ओर

बस्ती में झिलमिलाते दीये लग गये हैं

कि जिनके प्रकाश में

शायद कुछ विद्यार्थी कहीं पढ़ रहे हैं

कि कहीं कोई बहन अपनी भाभी के लिए

नीली साड़ी में रूपहली गोट किनार लगा रही है

कि कहीं कोई पित श्री

नाती को क-ख-ग परॉच पढ़ा रहे हैं

कि कहीं कोई बालक अपनी छोटी सी गोदी में

शिशु छोटा भाई लिए तुलसी बोली में

कविताएँ गाते हुए उसे सुला रहा है

3.4.6 आत्मान्वेषण एवम् आत्मविश्लेषण

मुक्तिबोध की कविताएँ आन्तरिक संघर्ष एवम् अन्तर्द्वन्द को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उभारती हैं। कवि व्यष्टि चेतना तथा सामाजिक जीवन के द्वन्द टकराहट तथा उससे उत्पन्न तनाव एवम् मानवीय पीड़ा को आत्म विश्लेषण आत्मशोधन के माध्यम से काव्य में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। मुक्तिबोध काव्य का लक्ष्य आत्मपरिशोधन द्वारा वर्गीय चेतना पैदा करना मानते

हैं। 'चकमक की चिन्गारियाँ', 'जब प्रश्नचिन्ह बौखला उठे', 'मेरे सहचर मित्र', 'ब्रह्मराक्षस औरागं उटांग-, 'अंधेरे में' इत्यादि कविताएँ आत्मान्वेषी कविताएँ हैं।

आत्म प्रताड़ना और आत्म ग्लानि की पंक्तियों से मुक्तिबोध का काव्य भरा पड़ा है -

ओ मेरे आदर्शवादी मन,

ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन

अब तक क्या किया

जीवन क्या जिया

उदरम्भि हो अनात्म बन गए

भूतों की शादी में कनात सा तन गए।

मुक्तिबोध में आत्मशोध और आत्मालोचन की प्रवृति अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है।

मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में

उमग कर जन्म लेना चाहता फिर से

कि व्यक्तित्वान्तरित होकर

नये सिरे से समझना और जीना

चाहता हूँ सच।

3.4.7 मानव मूल्य

मुक्तिबोध ने वृहद मानवीय परिप्रेक्ष्य को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। मुक्तिबोध जिस समय/काल में रचना कर रहे थे उस काल का सम्पूर्ण यथार्थ अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उनके काव्य का विषय बना। बर्गसों, मार्क्स, यथार्थबोध मानवता की विभिन्न सरणियों से गुजरती उनकी कविता मानवीय अन्तःकरण एवम् मानवीय संकल्पनाओं का काव्य बन जाती है। यद्यपि

उनका काव्य संघर्ष यातना और पीड़ा का काव्य है पर उन्हें इसके भीतर जिस सौन्दर्य, समता और माधुर्य की तलाश है वह उन्हें सच्चा मानवतावादी कवि प्रमाणित कर देती है।

सपने से आते हैं कि किसी दिन

पुराने मोहल्ले सब साफ होंगे

मानव धुकधुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिलखिलाएगा।

× × × × ×

कोशिश करो

कोशिश करो

जीने की

जमीन में गड़कर भी।

मुक्तिबोध मानते हैं कि कवि रचना धर्मिता को सीधे मानवतावाद से जोड़े, वह विश्व जनता के अभ्युत्थान को देखे। आज उत्पीड़न करने वाली शक्तियों से सचेत हो और उसके प्रति विद्रोह करने वाली ताकतों से सहानुभूति रखे। (नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ 37) ''साधारण जन सल्तनत नहीं चाहता, मनुष्य की स्वाभाविक गरिमा के अनुरोधों के अनुसार वह जीवन चाहता है'' (एक साहित्यिक की डायरी पृ0 132) रचनाकार का नैतिक दायित्व बनजाता है कि वह शोषित उत्पीड़ित बहुसंख्यक जनता की आशा, आकांक्षा, उसकी भूख प्यास को संवेदनात्मक रूप से अपनी आशा आकांक्षा का अभिन्न अंग बनाए। यही मुक्तिबोध की मानवीय पक्षधरता का स्वरूप है।

3.4.8 युग बोध

मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में अपने समय का तीक्ष्ण युग बोध अभिव्यक्त हुआ है, उन्होंने अपनी रचनाओं में ह्रासोन्मुखी पूँजीवादी व्यवस्था का विशद चित्रण कर मानवीय अवमूल्यन की वीभत्सता तथा इस व्यवस्था के ध्वंस की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है।

शोषण की अति मात्रा

स्वार्थों की सुख यात्रा

जब-जब सम्पन्न हुई

आत्मा से अर्थ गया

मर गयी सभ्यता।

मुक्तिबोध का काव्य स्वतंत्रता के अगले दो दशकों का जीवंत इतिहास है। जिसमें गहन मानवीय स्पन्दन है, कडुवे सत्य हैं गहरी संवेदनात्मकता है।

पूँजीवादी ह्रास के इस भैरव काल में

बादामी कागज सा प्राणहीन

दिन फीका रहता है

पुते नीले रंग से सूने आसमान में

सूरज एलुमैन का

करता है चमकने का असफल स्वांग नित।

मुक्तिबोध हिन्दी के कवियों की समकालीन पीढ़ी में सर्वाधिक युग धर्मी रचनाकार हैं। यद्यपि जब वे रचना कर रहे थे उनके काव्य को जटिल काव्य ठहरा कर लोगों ने उन्हें अन्तविरोधों का कवि सिद्ध किया। किन्तु बाद में यह निर्विवाद रूप से साबित हो गया कि मुक्तिबोध एक प्रतिबद्ध और अपने समय से जूझते जागरूक कवि हैं।

मुक्तिबोध ने व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, गुटपरस्ती, विलासिता, अवसरवादिता, दम्भ, आडम्बर, बनावटीपन इत्यादि जैसे-जैसे व्यवस्था के भीतरी तहों में पैठती जाती है वैसे-वैसे व्यक्ति मानव से पशु बनते जाते हैं।

इस नगरी में अच्छे-अच्छे

लोग हुए जाते हैं देखो

शैतानों के झबरे बच्चे

एक जमाने में जनता के आंगन में नंगे खेले थे,

जन-जन की पगडण्डी पर वे जन मन के थे,

किन्तु आज उनके चेहरे पर

विद्युत वज्र गिराने वाले

बादल की कठोर छाया है।

संवेदना तथा मूल्यों की खरीद फरोख्त में हिस्सा लेने वाले जन-जन के उत्पीड़न में व्यवस्था के सक्रिय हिस्सेदार स्वनामधन्य लोग किस प्रकार प्रभुत्वकामी तथा अवसरवादी हो उठते हैं। मुक्तिबोध ने इसका चित्रण किया है। इस प्रकार का तीक्ष्ण युगबोध ही मुक्तिबोध को समकालीन पीढ़ी से किंचित भिन्न भूमि पर स्थापित कर नयी कविता का प्रतिनिधि कवि बना देता है।

3.4.9 जीवन दर्शन तथा काव्य दृष्टि

जीवन जगत के बारे में, समाज के बारे में साहित्य और कला के विषय में एक कवि की जो दृष्टि और विचार होते हैं मोटे तौर पर उन्हें ही हम कवि की जीवन दृष्टि और काव्य दृष्टि कहते हैं और यह दृष्टि जीवनानुभवों, जीवनानुभूतियों के घात प्रतिघात से विकसित होती रूपाकार धारण करती है, मुक्तिबोध ने अत्यन्त विस्तार से साहित्य, कला और जीवन के उन प्रश्नों पर विचार किया है जिनसे जूझते हुए, जिनसे साक्षात्कार करते हुए उनकी जीवन दृष्टि का विकास हुआ। 'एक साहित्यिक की डायरी', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' तथा अन्य निबन्ध 'नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' आदि आलोचनात्मक लेखन में मुक्तिबोध ने कला का क्षण, कला की स्वायत्तता, कलात्मक अनुभूति, जीवनानुभूति, आभ्यान्तरीकरण, बाह्यीकरण, काव्य की रचना प्रक्रिया पर इतने विस्तार से विचार किया है कि मुक्तिबोध की जीवन दृष्टि एवम् काव्य दृष्टि को लेकर किसी प्रकार का संदेह नही रह जाता है।

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया मानते हैं। कविता जीवन की पुनर्रचना है। वे कला के तीन क्षण मानते हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूल्यों से पृथक हो जाना और ऐसी फैंण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैण्टसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। मुक्तिबोध कला को पूर्णतः जीवन सापेक्ष मानते हैं, कला जीवन की समस्याओं से अलग-थलग रहकर न अस्तित्व में आ सकती है और न ही जीवंत हो सकती है। अपनी वास्तविक प्राण शक्ति के लिए उसे समाज पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। कलाकार का रचनात्मक व्यक्तित्व कितना ही अद्भुत क्यों न हो उसे सामाजिक जीवन पर

अवलम्बित होना ही पड़ेगा। अतः रचना की स्वायत्तता निरपेक्ष नहीं रह सकती। कला व्यक्ति सापेक्ष है तो व्यक्ति समाज सापेक्ष। अतः कला स्वतः समाज सापेक्ष हो जाती है। इस तथ्य को मुक्तिबोध उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हैं। प्रकृति में भी हमें यही दृश्य दिखाई देता है। फूल के विकास और हास के अपने नियम और कार्य होते हैं किन्तु वह फूल अपने अस्तित्व के लिए सारे वृक्ष पर निर्भर है। मूल पर, स्कन्ध पर, शाखा पर, यहाँ तक कि पत्तियों पर भी रश्मि रासायनिक समन्वय कार्य के लिए। पुष्प की अपनी 'सापेक्ष' स्वतन्त्रता है किन्तु उसका वह पृथक अस्तित्व अन्य निर्भर, अन्य सम्बद्ध है। इस प्रकार पुष्प एवं कला की स्थिति समान है। फूल वृक्ष की मूलधारा से विलग निष्प्राण हो जाता है उसी प्रकार कला, कलाकार के व्यक्तित्व जोकि अपनी स्थिति में पूर्णतः सामाजिक है उससे विच्छित्र होकर निष्प्राण हो जाती है। (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध)

कवि मात्र दुखी के प्रति सहानुभूति कर नहीं रह जाता। वह प्रश्न करता है

जब इस गली के नुक्कड़ पर

मैंन देखी

वह फक्कड़ भूख, उदार प्यास

निःस्वार्थ तृष्णा

जीने मरने की तैयारी

वशर्ते तय करो, किस ओर हो तुम, अब

सुनहरे उर्ध्व आसन के

दबाते पक्ष में अथवा

कहीं उससे लुटी टूटी

अंधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन,

कहाँ हो तुम? (चकमक की चिंगारिया)

मुक्तिबोध साधारण जन के प्रति अपार सहानुभूति के कवि हैं। उन्होंने आत्ममुक्ति के लिए जनमुक्ति की आवश्यक मानने के साथ ही आत्मविकास के लिए जनजीवन के विकास को महती शर्त माना है।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विकास की विभिन्न स्थितियों का निरूपण दस पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....

(ख) मुक्तिबोध के काव्य की वैचारिकता एवं भाव संवेदना पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

....
....
....

(ग) मुक्तिबोध की काव्य की वैचारिकता का आधार मार्क्सवाद रहा। इस कथन पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....
....
....

(घ) मुक्तिबोध जीवन संघर्ष, संत्रास एवं तनाव के कवि हैं। सात आठ पंक्तियों में विचार कीजिए

....
....
....

(ङ) मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

....
....
....

(च) मुक्तिबोध मानवीय संवेदना के कवि हैं। उनकी मानवतावादी दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

(छ) मुक्तिबोध के जीवन दर्शन एवं काव्य दृष्टि की मीमांसा कीजिए।

....

....

....

3.5 शिल्प विधान

काव्य का सौन्दर्य उसके शिल्प पर भी निर्भर करता है, भावों के साथ अभिव्यक्ति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। कविता में भाव के अनुरूप शैल्पिक विन्यास की आवश्यकता पड़ती है। शिल्प वह माध्यम है जिसके द्वारा कोई संवेदना, अनुभूति, विचार अथवा भाव एक ही बार अपनी समग्रता में सम्प्रेषित हो जाता है इसके लिए कवि को कुछ जोखिम उठाने ही पड़ते हैं। मुक्तिबोध ने इन्हीं को अभिव्यक्ति के खतरे कहा है -

अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे ही मठ ओर गढ़ सब

पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार

तब कहीं देखने को मिलेंगी बाहें

जिनमें कि प्रतिपल काँपता रहता

अरुण कमल एक।

शिल्प सिफ 'फार्म' नहीं है। वह कथ्य को सम्प्रेषित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का प्रकाश होता है। शिल्प विधान के अन्तर्गत भाषा की सृजनात्मकता,

प्रतीक विधान, बिम्बधर्मिता, मुक्तिबाध के संदर्भ में फैन्टेशी महत्त्वपूर्ण है। अतः इन प्रभावशाली उपकरणों पर क्रमशः विचार करना अपेक्षित है।

3.5.1 भाषा की सृजनात्मकता:

नयी कविता जहाँ भावों की नवीन भंगिमा का आन्दोलन है वहीं भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग का भी आन्दोलन है। पुराने संदर्भ वाले शब्दों में नया अर्थ भरना, अर्थ के आधार पर शब्द गढ़ना, कवि कर्म को शब्द की तलाश मानना नए कवियों का प्रयास रहा।

मुक्तिबोध ने अपने काव्य चेतना के अनुरूप नवीन भाषा का निर्माण किया। भाषा की परम्परा को तोड़ा। उनकी भाषा के विषय में डा0 राज नारायण मौर्य का कथन महत्त्वपूर्ण लगता है। ‘‘उनकी भाषा नयी चेतना नयी धारा की तरह अपने आप मार्ग बना लेती है, वह कभी पाषाणों के नीचे दबकर, कभी पाषाणों की छाती पर चोट करती हुई, कभी ऊँचे, कभी नीचे, कभी झाड़ झंखाड़ों, खंडहरों से कमी शस्य श्यामला पुष्पित समतल भूमि से बहती हुई चलती है। वह कभी संस्कृत निष्ठ सामासिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती है, कभी अरबी फारसी तथा उर्दू के नाजुक लचीले हाथों को थामकर चलती है। कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठ कर जल्दी से खटाक खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जनसमूह के शोर गुल और धक्के मुक्के के बीच एक-एक पर दृष्टि डालती हुई रूक-रूक कर चलती है मुक्तिबोध ने अपनी इस नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें स्पष्ट रूप से मुक्तिबोधपन है। (राष्ट्रवाणी जनवरी, फरवरी 1965)

मुक्तिबोध की कविताओं में मुफलिस, रफ्तार, फजूल, रौनक, ख्याव मेहराब, नामंजूर खुदगर्ज जैसे असंख्य शब्द उर्दू फारसी से लिए गए हैं। ‘‘भूल गलती’’ जैसी कविता तो जैसे उर्दू में लिखी प्रतीत होती हो पर वह अपनी प्रभावान्विति में अप्रतिम है।

मुक्तिबोध ने अंग्रेजी, मराठी भाषा के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया। इसी प्रकार संस्कृत शब्दावली का भी प्रयोग किया।

मुक्तिबोध ने नक्षे, नक्षीदार, कन्दील, पूर, हकाल दिया, मन्ध, तिपहर, भोंगली का सहज प्रयोग कर वातावरण तैयारकिया है।

मुक्तिबोध आवश्यकतानुसार विशेषणों का निर्माण कर प्रभाव पैदा करते हैं। भुसभुसा उजाला, ऐय्यारी रोशनी, सॅवलाई किरन, सर्द अंधेरा, अजगरी मेहराव, संवलाई चाँदनी आदि के प्रयोग कविता में सहज रूप से किए गए हैं।

सामने है अंधियाला ताल और

स्याह उसी ताल पर

सँवलाई चाँदनी।

इसी प्रकार मुक्तिबोध द्वारा गणितीय शब्दावली, वैज्ञानिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। उन्होंने शब्द की परम्परा को तोड़ा। कुशल शिल्पी की तरह शब्दों को तराशा है। मुहावरों का सहज प्रयोग भी उनकी भाषा को समृद्ध बनाता है। खेत रहे, सातवाँ आसमान, साँप काट जाना, साँप सूँघ जाना आदि का प्रयोग प्रभावान्विति के लिए किया गया है।

मुक्तिबोध की भाषा में सजीवता है, और चित्रोपमता भी है। साथ ही भाषा पर उनका असाधारण अधिकार भी है। एक कुशल शिल्पी की तरह से उन्होंने शब्दों को तराश कर नयी चमक भरकर असाधारण प्रयोग किया है उनकी भाषा में आधुनिक युग की नयी चेतना की सर्वांग अभिव्यक्ति है।

मुक्तिबोध के लिए भाषा एक औजार है उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं के लिए भाषा का नाटकीय उपयोग किया है। सघन बिम्बों की माला के बाद सपाटबयानी द्वारा जीवन के यथार्थ पर, जीवन की विसंगतियों पर तीक्ष्ण आघात करते उनके शब्द चित हिन्दी साहित्य की समृद्ध धरोहर हैं। वहाँ जीवन सत्यों को उबड़ खाबड़ भाषा से भी निचोड़ा गया है एवम् माधुर्य मधुर स्पन्दनों की असंख्य करूण छवियों को भी उभारा गया है। इतना सत्य है कि मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य भाश के आभिजात्य को तोड़कर लोक जीवन की भाषा को विचार कविता के अनुकूल बनाया। शब्दों में नवीन संस्कार भर नयी अर्थ दीप्ति का मार्ग खोल दिया।

3.5.2 बिम्ब विधान

मुक्तिबोध की कविता बिम्ब धर्मी कविता है। बिम्ब अर्थात शब्द चित्र जिसमें दृश्य, ध्वनि, रंग आदि के द्वारा चित्रात्मकता खड़ी की गयी हो। बिम्ब का प्रयोग कथ्य को प्रभावशाली, सघन और आकर्षक बना देता है अमूर्त को मूर्त करने की सहज शक्ति प्रदान करता है। शमशेर सिंह की मान्यता है ''मुक्तिबोध की हर इमेज के पीछे शक्ति होती है वे हर वर्णन को दमदार अर्थपूर्ण और चित्रमय बनाते हैं।'' एक दृश्य के उपरान्त दूसरा दृश्य, दृश्यों में विविध रंग, ध्वनियाँ वातावरण का निर्माण करती जाती है जब एक सम्पूर्ण कैनवास सा तैयार हो जाता है तब मुक्तिबोध के काव्य लक्ष्य को पूर्ण करती जाती हैं। अतः वे असंख्य शब्दचित्र जो मुक्तिबोध ने युग यथार्थ को अभिव्यक्त करने हेतु खड़े किए हैं वह उनकी कविता का सबसे प्रबल हथियार हैं। 'ब्रह्मराक्षस',

'अंधेरे में चकमक की चिन्गारियाँ, जीवनधारा, भूल गलती जैसी कविताएँ बिम्बधर्मिता के कारण ही इतनी प्रसिद्ध हुई हैं।

3.5.3 प्रतीक

मुक्तिबोध यथार्थवादी कवि हैं। समकालीन जीवन की सच्चाईयों को सामने लाने हेतु उन्होंने प्रतीकों का भरपूर उपयोग किया। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक पौराणिक प्रतीकों के अतिरिक्त वैज्ञानिक, प्राकृतिक एवं मिथक से भी प्रतीक लेकर सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। यथा चाँद (पूँजीवादी शक्ति), भैरव (शौषक वर्ग की मानसिकता), कंस (शोषक एवम् क्रूर सत्ता), डूबता चाँद (मृतप्राय पूँजीवादी व्यवस्था), अंधेरा (मध्यमवर्गीय संस्कारों की विवशता), स्याह पहाड़ (संघर्ष), बबूल (निम्न मध्यवर्ग), कमल (लक्ष्य), टीला (आत्म विवेक) के प्रतीक बन प्रयोग हुए हैं। प्रायः मुक्तिबोध की सभी कविताएँ प्रतीकात्मकता को लेकर चलती हैं।

3.5.4 फैन्टेसी शिल्प

मुक्तिबोध की कविताओं का आधार फैन्टेसी का रचना शिलप है। फैन्टेसी का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रजालिक संसार। अर्थात शब्द चित्रों के माध्यम से एक जादुई संसार खड़ा करना तत्पश्चात जीवन सत्यों का उद्धाटन करना। मुक्तिबोध के लिए फैन्टेसी एक कलात्मक सार्थकता है। कविता में यथार्थ की संश्लिष्टता, विसंगति, जटिलता सबको समेटने के लिए आवश्यक है कि कवि फैन्टेसी का आसरा ले, मुक्तिबोध के समक्षतो कठिनाई ही यह है कि उन्हें स्वप्न के भीतर एक स्वप्न, विचारधारा के भीतर एक अन्य सघन विचारधारा प्रछन्न दिखायी देती है। उन्हें पग-पग पर चौराहे, सौ सौ राहें और नव नवीन दृश्य वाले सौ-सौ विषय रोज मिलते हैं। वे एक पैर रखते हैं कि सौ राहें फूट पड़ती हैं और उन सब पर से गुजर जाना चाहते हैं। फैन्टेसी एक झीना परदा है जिसमें से जीवन तथ्य झाँक-झाँक उठते हैं। फैन्टेसी का ताना बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होने वाली विविध क्रिया प्रक्रियाओं से ही बना हुआ होता है।

शैल्पिक दृष्टि से फैन्टेसी में कवि एक विस्तृत कैनवास पर कथ्य को विविध आकारों तथा रंगों से परिवृत करता है। फैन्टेसी के शिल् के भीतर परस्पर विरोधी बातों के समाहार की सुविधा के कारण मुक्तिबोध की फैन्टीसी नुमा कविताआं में एक ओर आदिम अभिव्यंजना का खुरदुरापन है तो दूसरी ओर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की बिम्ब मालाएँ यथार्थ को तीक्ष्ण आवेग के साथ स्पष्ट करती जाती हैं

जिन्दगी के ....

कमरों में अंधेरे

लगाता है चक्कर

कोई एक लगातार

आवाज पैरों की देती है सुनायी

बार-बार .... बार-बार

पर नहीं दीखता...................... नहीं ही दीखता

किनतु वह रहा घूम

तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक

भति पार आती हुई पास से

गहन रहस्यमय अंधकार ध्वनिता

अस्तित्व जनाता

3.5.5 छंद और लय

नयी कविता छंद के प्रति किसी प्रकार का आग्रह लेकर नहीं चली। मुक्त छंद ही उसका प्रिय छंद रहा। नवीन गति, नवीन लय को नवीन ताल पर बाँध कर की गयी विचार वान अभिव्यक्ति ही नयी कविता है। मुक्तिबोध मस्तिष्क में बुनते जाते अंसख्य विचारों को फैन्टेसी के कैनवास पर रंग भरते अभिव्यक्ति देते जाते हैं और एक प्रवाहपूर्ण काव्य बनता चला जाता है। उसमें छायावाद की सी गीतात्मकता नहीं होती पर प्रश्नों की बौखलाहट होती है।

बावड़ी में वह स्वयं

पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा

वह कोठरी में किस तरह

अपना गणित करता रहा

और मर गया

वह सघन झाड़ी के कंटीले

तम विवर में

मरे पक्षी सा विदा ही हो गया।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध के शिल्प विधान की विशेषताएँ चार पाँच पक्तियों में निरुपित कीजिए।

....

....

....

(ख)मुक्तिबोध की काव्य भाषा की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

(ग) मुक्तिबोध के बिम्व विधान की चर्चा कीजिए।

....

....

(घ) मुक्तिबोध के काव्य की प्रतीक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

(ङ) फैन्टेसी से आप क्या समझते हैं? मुक्तिबोध ने काव्य के लिए फैंटेसी के शिल्प को क्यों चुना।

....

....

....

(च) मुक्तिबोध का काव्य क्या छंद बद्ध है? यदि नहीं तो वह कैसा है?

....
....
....

3.6 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

काव्यवाचन –

कविता परिचय

नयी कविता के प्रतिनिधि कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता उनकी भाव संवेदना तथा शिल्प विधान को समझने हेतु एक महत्त्वपूर्ण कविता है। इस कविता का सम्पूर्ण रचना विधान मुक्तिबोध के काव्य धर्म को सामने लाता है।

'ब्रह्मराक्षस' एक बिम्ब धर्मी, फैन्टसी के शिल्प में रचित प्रतीकात्मक कविता है। मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं जीवन में पूरी नहीं हो पाती। उसे समाज तथा व्यवस्था द्वारा ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता तो वह एक अभिशप्त, अतृप्त आत्मा बन जाती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मृत्यु के पश्चात अतृप्त आत्माएँ असंतुष्ट 'प्रेत' बन जाती है।

इस प्रकार की आत्मा अहंकेन्द्रित भी है। स्वयं के प्रति उसके कुछ भ्रम हैं जिन्हें मुक्तिबोध ने विशिष्ट वातावरण में प्रस्तुत किया है।

ब्रह्मराक्षस आज के असंतुष्ट बुद्धिजीवी का प्रतीक है।

संदर्भ सहित व्याख्या: यहाँ 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता के महत्त्वपूर्ण काव्यांशों की संदर्भ प्रसंग सहित व्याख्या की जा रही है।

उद्धरण 1

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ

परित्यक्त सूनी बावड़ी

के भीतरी

ठंडे अंधेरे में

बसी गहराइयाँ जल की

सीढ़ियाँ डूबी अनेकों

उस पुराने घिरे पानी में

समझ में आ न सकता हो

जैसे बात का आधार

लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर

डालें खूब उलझी हैं

खडे हैं मौन औंदुबर

व शाखों पर

लटकते घुग्घुओं के घोंसले

परित्यक्त भूरे गोल।

संदर्भ: यह काव्य पंक्तियाँ 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता में से ली गयी हैं। इसके रचनाकार नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर शलाका पुरुष गजानन माधव मुक्तिबोध हैं।

प्रसंग: मुक्तिबोध जी की 'ब्रह्मराक्षस' एक प्रतिनिधि कविता है जो उनके काव्य संग्रह 'चाँद का मुँह टेड़ा है' में संकलित है। कवि ने अतृप्त असंतुष्ट आत्मा को 'ब्रह्मराक्षस' के रूप में वर्णित किया है। यह कविता की प्रारम्भिक काव्य पंक्तियाँ हैं जिनमें कवि 'ब्रह्मराक्षस' के निवास स्थल का वर्णन करता है। कवि प्रभावशाली फैन्टेसी का निर्माण करते हुए कहते हैं।

व्याख्या: शहर के एक छोर पर आबादी से कुछ दूरी पर एक खंडहर है। उसी खंडहर के पास निर्जन और सुनसान स्थान में पूरी तरह से त्यागी गयी अर्थात उपयोग में नहीं लायी जा रही एक बावड़ी (पानी का पोखर) है। उसमें अथाह जल है बावड़ी का भीतरी भाग घने अंधकार से पूर्ण है। उसका पानी गहरा, पुराना चारों ओर से ठंडे अंधेरे से घिरा है। बावड़ी की कई सीढ़ियाँ पानी में डूबी हैं जिस प्रकार कुछ रहस्यमय बातें आसानी से खुल नहीं पाती हैं पर स्पष्ट हो जाता है कि कुछ न कुछ बात अवश्य है उसी प्रकार इस बावड़ी का वातावरण इस प्रकार की प्राकृतिक

परिवेश, बावड़ी का परितक्त होना रहस्य की ओर संकेत करता है उस बावड़ी को घेर कर मौन औदुम्बर अर्थात गूलर के वृक्ष खड़े हैं, जिनकी डालें एक दूसरे से उलझी हैं। वहाँ चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य है। गहन सन्नाटा है। गूलर वृक्षों की डालों पर घुग्घुओं के घोंसले लटक रहे हैं जो वातावरण को और भी गम्भीर बना रहे हैं ये घोंसले उल्लुओं ने त्याग दिए हैं ये भूरे रंग के हैं तथा गोल-गोल हैं।

विशेष:

1. कवि ने वर्णनात्मक शैली में शहर के छोर पर स्थित बावड़ी का प्रभावशाली चित्रण किया है।
2. चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।
3. दृश्य बिम्ब है, जो अत्यन्त सघन है।
4. फैन्टेसी द्वारा एक ऐन्द्रजालिक संसार खड़ करने का प्रयास किया गया है।
5. बावड़ी का जा काल्पनिक चित्र खड़ा किया है वह अत्यन्त सजीव है।
6. भयानक रस की सृष्टि की गयी है।
7. कविता में प्रवाह बना रहता है तथा जिज्ञासा पैदा की गयी है।
8. भाव सादृश्य के दृष्टिकोण से भवानी प्रसाद मिश्र की 'सन्नाटा' कविता का स्मरण हो आता है।

उद्धरण 2

पिस गया वह भीतरी

औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,

ऐसी ट्रैजडी है नीच!!

बावड़ी में वह स्वयं

पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा

वह कोठरी में किस तरह

अपना गणित करता रहा

औ मर गया ....

वह सघन झाड़ी के कंटीले

तम विवर में

मरे पसी सा

विदा ही हो गया

वह जयोति अनजानी सदा को सो गयी

यह क्यों हुआ!

क्यों यह हुआ!!

मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य

होना चाहता

जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य

उसकी वेदना का स्रोत

संगत पूर्ण निष्कर्षों तलक

पहुँच सकूँ।

संदर्भ: प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रसिद्ध काव्य रचना 'ब्रह्मराक्षस' से उद्धृत हैं।

प्रसंग: 'ब्रह्मराक्षस' कविता में तीव्र आत्मविश्लेषण, आत्मपरिशोधन चलता रहता है। मानव अपने तुच्छ स्व से ऊपर उठने को सदैव संघर्षरत रहता है। नैतिक मानों की प्राप्ति के लिए बावड़ी में प्रेत आत्मा बना ब्रह्मराक्षस भी प्रयत्नशील रहता है। पर वह सफल नहीं हो पाता अन्त में वह इस संसार से चला जाता है। मुक्तिबोध ब्रह्मराक्षस के दुखपूर्ण अन्त पर गहरी करूणा और शोक व्यक्त करते हैं। भाव, तर्क और कार्य के सामंजस्य की स्थापना का कार्य जो ब्रह्मराक्षस अधूरा छोड़ गया है, कवि उसे पूरा करने की अभिलाषा प्रकट करता है -

व्याख्या: बेचारा ब्रह्मराक्षस जीवन भर बाह्य जगत और आन्तरिक जगत के दो पाटों के बीच पिसता हुआ अपनी जीवन लीला समाप्त कर गया। कितना नृशंस और निष्ठुर है दैव विधान? जन्म भर अंधकारपूर्ण बावड़ी रूपी कोठरी में वह चिंतन के स्तर पर अपनी समस्या सुलझाने में लगा रहा। अपना गणित बैठाता रहा पर समस्या सुलझी नहीं। वह प्राक्तन बावड़ी की गहराइयों में हमेंशा के लिए मर गया। बावड़ी के चारों ओर फैली झाड़ियों के सघन अंधकार में, अंधेरी खोह में मरे हुए पक्षी सा सदा के लिए विदा हो गया। वह अपार सम्भावनाओं भरा व्यक्तित्व था। पर उसके साथ यह दुःखान्त हुआ कि वह अनजाने सदा के लिए विलीन हो गया। कवि प्राश्निक हो उठता है कि यह क्यों हुआ? पुनः समाधान के रूप में कहता है कि इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। कवि ब्रह्मराक्षस के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की अभिलाषा प्रगट करता है। वह ब्रह्मराक्षस के चलाए हुए सामंजस्य के समीकरण को, नैतिक मानों को, अन्वेषण को, और पूर्णता की खोज को आगे बढ़ाना चाहता है। इस प्रकार कवि उसके अधूरे कार्य को, जो उसकी वेदना का एक मात्र कारण था, पूर्ण करे उसकी आत्मा को संतुष्टि प्रदान करना चाहता है। उसकी वेदना का कारण जीवित रहते हुए उसके विचारों, सिद्धान्तों को सहमति प्राप्त न होना है। अतः कवि उसका शिष्य बनकर उसकी अधूरी आकांक्षाओं को पूर्ण कर उसकी आत्मा को तृप्त करना चाहता है।

विशेष:

कविता का चरम बिन्दु 'ब्रह्मराक्षस' की मृत्यु के रूप सामने आता है

मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता फैन्टेसी शिल्प का सुन्दर उदाहरण है

कविता की इन पंक्तियों में एक सन्देश दिया है। स्वस्थ, सुन्दर परम्पराएं यदि अपूर्ण रह जाती हैं तो आने वाली पीढ़ियों ने उन्हें पूर्ण कर अतृप्त आत्माओं को सन्तुष्टि प्रदान करनी चाहिए। यह उनके लिए चरम मुक्ति होगी।

3.7 सारांश

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध 'नयी कविता' के सशक्त हस्ताक्षर हैं। जिए एवम् भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं तद् सदृश सम्भावनाओं के निरपेक्ष चित्रण द्वारा कविता में पुनर्जीवित उनका रचना संसार काव्य के महत मूल्यों का निर्माण करता है, उनकी रचनाएँ नयी कविता के प्रस्तावित वस्तुगत, शिल्पगत सन्दर्भों में अधिक प्रभावशाली तथा मौलिक प्रतीत होती हैं। उन्होंने कथ्य और शिल्प के युगीन प्रतिमानों को स्वीकार करते हुए उनकी परिधि को चुनौती दी तथा काव्य सर्जना की उन विशिष्टताओं को भी मानदण्डों के रूप में

स्वीकारा जिसके आधार पर साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका। नयी कविता में आधुनिक भावबोध के नाम पर जिस लघुमानवतावाद, क्षणवाद, कुंठावाद, दुःखवाद, व्यक्ति स्वातन्त्रय की प्रवृतियाँ प्रचलित की गयी, उनका भी मुक्तिबोध ने विरोध किया।

मुक्तिबोध साहित्य के सामाजिक उद्देश्य एवं समकालीन यथार्थ से जुड़ाव पर विश्वास रखते थे, उनके अनुसार आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत मानवता के भविष्य निर्माण के प्रश्न, अन्याय के खिलाफ प्रतिकार के स्वर नैतिक उत्थान के प्रयास, मुक्ति के उपाय की तलाश आदि को समाहित होना चाहिए। व्यक्ति की पीड़ा, युग की संत्रस्त एवं उत्पीड़ित मनुष्यता को नवीन दिशाएँ प्रदान करना ही वास्तविक आधुनिक बोध है।

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, उस युग को कविता में उभारा जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत विक्षत है। शोषण के भयानक कुचक्रों के बीच व्यक्ति जीवन का प्रलाप है तथा तीक्ष्ण सामाजिक अनुभवों का अंकन है किन्तु समकालीन यथार्थ का यह साक्षात्कार मानवीय भविष्य की अनंत सम्भावनाओं को लिए है।

मुक्तिबोध ने क्षणवादी जीवन दृष्टि का भी विरोध किया, वह मानते हैं कि जीवन समग्र है। वह भविष्य के प्रति आशान्वित हैं। मानव मुक्ति के प्रयत्नों को शाश्वत मानते हैं अतः उनकी जीवन दृष्टि भी शाश्वत के प्रति आस्थालु है। इसी प्रकार समकालीन रचनाकारों की कुंठा, यौन कुंठा जैसे आग्रहों से मुक्तिबोध का कोई सरोकार नहीं। वे तो जनमुक्ति के गायक हैं। मुक्तिबोध असंग दुख की बात भी नहीं करते। वे वास्तविक दुख के भोक्ता हैं अतः उनकी वेदना में सर्वजन की पीड़ा समायी है। मुक्तिबोध के काव्य में यथार्थ की तीखा बोध है चीख चिल्लाहट भी है पर वह कुंठित नहीं हैं उनका समूचा काव्य मानवीयता की गहन अनुभूतियों से परिव्याप्त है। उनकी रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम् मानवीय सम्भावनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है। मुक्तिबोध का काव्य प्रथम दृटया थोड़ा जटिल प्रतीत होता है गूढ़ फैन्टेसी के शिल्प में कविता एक जटिल तिलस्मी वातावरण खड़ा करती है किन्तु शिल्प का विन्यास जब समझ में आ जाता है तो मुक्तिबोध समकालीन कवियों विशिष्ठ हो जाते है। वे मानवीय धारा के कवि हैं। मार्क्सवाद में उन्हें गहन आस्था थी पर वैचारिक स्तर पर वे हमेशा स्वयं को परिमार्जित, विकसित करते रहे। आत्मान्वेषण एवं आत्म परिशोधन उनके काव्य की प्रमुख भाव दशाएँ हैं वैचारिक आस्था, सामाजिक प्रतिबद्धता, पीड़ित मानवता के प्रति गहन निष्ठा, मनुष्यता के उज्जवल भविष्य के प्रति उनका आशान्वित दृष्टिकोण उन्हें नयी कविता के बीच केन्द्रीय कवि के रूप स्थापित करता है। नयी पीढ़ी के लिए मुक्तिबोध एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति हैं।

3.8 शब्दावली

मार्क्सवाद - विचारक मार्क्स के जीवन दर्शन पर आधारित विचारधारा। शोषित समाज के प्रति सहानुभूति, शोषक समाज के प्रति आक्रोश। समानमूल्यों वाले समाज की संकल्पना।

फैन्टेसी - मुक्तिबोध की कविताओं के संदर्भ में फैन्टेसी एक प्रकार का शैल्पिक विधान है। शाब्दिक रूप में एन्द्रेजालिक संसार है। पर काव्य में विशेष तरह का 'फार्म' है।

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

अशोक बाजपेयी -फिलहाल - राजकमल प्रकाशन

कविता के नए प्रतिमान - नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन

गजानन माधव मुक्तिबोध - सम्पादक लक्ष्मण दत्त गौतम -विद्यार्थी प्रकाशन

मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ9 जनक शर्मा - पंचशील प्रकाशन जयपुर

मुक्तिबोध का रचना संसार - पं0 गंगाप्रसाद विमल - सुषमा प्रकाशन

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न

   (क)गजानन माधव मुक्तिबोध

   (ख)तारसप्तक

   (ग) चाँद का मुँह टेड़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल

   (घ) भारत इतिहास और संस्कृति

   (ङ) देंखे – 3.3.1

3.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुक्ति बोध रचनावली- जैन, नेमीचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुक्ति बोध की कविता अपने युग समाज को बदलने की छटपटाहट से पैदा हुई है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 4 - शमशेर बहादुर सिंह : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर बहादुर सिंह
4.3.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता
4.3.2 शमशेर की काव्य-भाषा और बिम्ब
4.3.3 शमशेर बहादुर सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
4.4 शमशेर: पाठ और आलोचना
4.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ
4.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह इकाई प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह से सम्बन्धित है। शमशेर को 'नयी कविता का प्रथम नागरिक' कहा जाता है। शमशेर की कविताएँ एक तरफ मजदूर किसानों के संघर्ष में सहभागी बनती हैं तो दूसरी तरफ नाविक विद्रोह जैसी कविताएँ भौगोलिक सीमाओं को भी तोड़ती हैं। शमशेर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध और एक समय में कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे। शमशेर की कोशिश रही है कि वे हर चीज या भावना की अपनी भाषा को, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को सामाजिक संघर्ष से जोड़ सकें। विजयदेव नारायण साही के शब्दों में ''तात्विक दृष्टि से शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। शमशेर की प्रवृत्ति सदा ही 'वस्तुपरकता' को उसके शुद्ध या मार्मिक रूप में ग्रहण करने की रही है। वे 'वस्तुपरकता' का 'आत्मपरकता' में और 'आत्मपरकता' का 'वस्तुपरकता' में आविष्कार करने वाले कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति बिम्ब की नहीं,

बिम्बलोक की है।" 'कवियों का कवि' कहे जाने वाले शमशेर ने 1934 से काव्य रचना आरंभ की। 1945 में 'नया साहित्य' के संपादन के सिलसिले में बम्बई गये। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के संगठित जीवन में सामाजिक अन्तर्विरोधों को नजदीक से देखा। उनकी दृष्टि में कला का संघर्ष सामाजिक संघर्ष और जनान्दोलनों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह के काव्यात्मक महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रगतिशील साहित्य के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर के वैशिष्ट्य को भी समझ सकेंगे। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आप प्रगतिशील साहित्य के उदय की जानकारी प्राप्त करेंगे। वैसे तो प्रगतिशील आन्दोलन में अनेक कवि सक्रिय थे लेकिन इस इकाई में हम मुख्यतः प्रगतिशील कविता और शमशेर के महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस तरह यह इकाई प्रगतिशील साहित्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देगी और शमशेर को समझने और जाँचने की दृष्टि से भी परिचित कराएगी।

4.3 प्रगतिशील काव्य और शमशेर बहादुर सिंह

प्रगतिशील कविता का सम्बन्ध समाज के अन्तर्विरोध से है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता हमेशा एक-सी नहीं रहती। वह समय के अनुसार बदलती रहती है। प्रगतिशील कवियों ने कविता में विषयवस्तु के महत्त्व को समझते हुए यह जान लिया था कि कविता सिर्फ जनता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और प्रगतिशील विषयों पर लिखी जाकर ही महान नहीं बनती, यदि कवि की प्रतिबद्धता सच्ची और गहरी है तो वह अपनी बात को साहित्य के माध्यम से कहने के लिए अब तक आजमाए गये उपकरणों का अनुकरण नहीं करेगा बल्कि नए उपकरणों की तलाश भी करेगा। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्तंभ नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन इत्यादि में से किसी की भी कविता दूसरे की कविता का अनुकरण नहीं है। प्रगतिशील कविता की परम्परा का अध्ययन करते हुए आप पायेंगे कि विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से यहाँ विविधता भी है और बहुस्तरीयता भी। लेकिन प्रगतिशील कविता के सामने हमेशा एक केन्द्रीय मुद्दा रहा है, वह है देश की बहुसंख्यक शोषित-उत्पीड़ित जनता की वास्तविक मुक्ति। प्रगतिशील कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना छायावादी राष्ट्रीय भावना, से कई मायनों में अलग थी। इन कवियों ने जहाँ एक ओर देशभक्ति की भावना को क्रांतिकारी धार दी तो दूसरी ओर सामाजिक मुक्ति के सवाल को

भी जोड़ दिया। प्रगतिशील कवियों ने साहित्य और कला को राजनीति से निरपेक्ष रखने की धारणा को भी अस्वीकार कर दिया।

प्रगतिशील कविता पर मार्क्सवाद के प्रभाव का कारण सन् 1930 के बाद की परिस्थितियाँ हैं। 193 की सोवियत क्रांति जहाँ दुनिया भर के कलाकारों व बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया वहीं आजादी के साथ भारत विभाजन और बाद की निराशाजनक तस्वीर ने प्रगतिशील रचनाकारों को राष्ट्रीय सरकार की आलोचना करने को भी प्रेरित किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोवियत संघ ने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष को अपना समर्थन दिया और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान फासीवादी ताकतों के खिलाफ सोवियत संघ की निर्णायक जीत से प्रगतिशील ताकतों के हौसले बुलन्द हुए। प्रगतिशील लेखक संघ के गठन से पहले 1935 में 'वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ राइटर्स फार दि डिफेंस ऑफ कल्चर' के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की नींव पड़ चुकी थी जिसके कर्त्ता-धर्त्ता गोर्की, रोमाँ रोला, आन्द्रे जींद, टॉमस मान जैसे विश्वविख्यात लेखक थे। इस संस्था का निर्माण फासिज्म और साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध के लिए किया गया था। फासीवाद का उदय विश्व मानवता के लिए खतरा था। हिटलर द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के कारण दुनिया में युद्ध का भंयकर खतरा मंडराने लगा था। हिटलर ने अपने ही देश के अल्पसंख्यक यहूदियों पर बेतहाशा जुल्म ढाये और उनके सारे मानवाधिकार छिन लिये। यूरोप में फासीवाद के बढ़ते खतरे के कारण फासीवाद विरोधी जन आन्दोलनों में बढ़ोतरी हुई। दुनिया भर के लेखकों ने फासीवाद के खिलाफ संगठित होने और उसका विरोध करने का आह्वान किया। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ (1936) के गठन को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इसका प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर बुद्धिजीवियों पर देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त से सुमित्रानन्दन पंत तक के यहाँ मार्क्स का उल्लेख श्रद्धा के साथ है। जब हिटलर की सेना सोवियत संघ में मास्को तक पहुँच गई और बाद में उसे बर्लिन तक खदेड़ दिया गया, उस ऐतिहासिक क्रांतिकारी संघर्ष को लेकर मुक्तिबोध ने 'लाल सलाम' कविता लिखी, शमशेर ने 'वाम वाम वाम दिशा' कविता द्वारा वामपंथ के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया-

'भारत का

भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये

काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ

वाम वाम वाम दिशा,

समय साम्यवादी।'

आज का समय साम्यवादी है- यह विश्वास सोवियत संघ ने दिया था तथा इसकी पहचान प्रगतिशील आन्दोलन में हुई। यदि एक ओर इसमें किसान और मजदूर सहित मेहनतकश जनता

के यथार्थ का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण था, तो दूसरी ओर इसमें उच्च और मध्यवर्ग के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया गया था। यहाँ छायावाद के रोमानीपन से मुक्ति और यथार्थवाद के उत्तरोत्तर विकास को सहज ही देखा जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलनों के शोर-शराबे से दूर शमशेर निरंतर एकांत भाव से अपनी काव्य साधना में लीन रहे। काव्य भाषा, कथ्य तथा शिल्प के स्तर पर उन्होंने हमेशा प्रयोग किये। हिन्दी कविता में जिस प्रयोगशीलता का दावा, 'तारसप्तक' के प्रकाशन से किया गया, उसके प्रकाशन के पूर्व ही शमशेर की कविता में इतने प्रयोग मिलते हैं, जितना पूरे 'तारसप्तक' में दिखाई नहीं पड़ता। शमशेर की कविताओं में रोमानीपन और एकाकीपन का भाव है। इससे वे निरंतर संघर्ष करते हैं। वर्तमान अलगाव और आत्मनिर्वासन के युग में उनकी कविताएँ आत्म विस्तार में सहायक बनती हैं। यह आत्मविस्तार स्वयं कवि के यहाँ भी है, जिसकी मूल प्रेरक शक्ति मार्क्सवाद में उनकी आस्था है। उन्होंने स्वीकार किया है- ''मार्क्सवाद मेरी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्मिक और रूग्ण मनः स्थिति से उबारा।'' शमशेर ने कुछ सपाट राजनीतिक कविताएँ भी लिखी हैं लेकिन वे मूलतः सौन्दर्य के कवि हैं। उनका यह सौन्दर्य आध्यात्मिक न होकर शुद्ध ऐन्द्रिय है, जिसे उन्होंने विशिष्ट कलात्मक शैली में उपस्थित किया है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उनका सौन्दर्य जितना मानवीय है, उनका दृष्टिकोण उतना ही वस्तुवादी। शमशेर की कविताएँ मानव और प्रकृति के विराट सौन्दर्य तथा आदमी होने की मूल शर्त से प्रतिबद्ध है। दुःख के ताप, पीड़ा और कष्टों से घिरी जिन्दगी में कवि सौन्दर्य को ही अपने सबसे निकट पाता है। जीवन, समाज और संसार की सारी कुरूपताओं के विरूद्ध वह एक सौन्दर्यमयी सृष्टि रचता है। सौन्दर्य की चेतना से उसे जीने लायक बनाता है। कवि का सौन्दर्यबोध बहुत व्यापक है। वह मात्र स्त्री-सौन्दर्य तक सीमित न होकर संपूर्ण मानवीय भावों और प्राकृतिक वस्तुओं को अपने भीतर समेटे हुए हैं। शमशेर के यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का बड़ा ही ऐंद्रिय और मांसल वर्णन हुआ है। यहाँ स्त्री-पुरूष की चिर संगिनी है, उसका ही प्रतिरूप जो नाना भाव से उसे आकर्षित करती और लुभाती है। यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का अत्यन्त ही अकुंठ चित्रण हुआ है। यह सौन्दर्य न तो रीतिकालीन कवियों की तरह सिर्फ शारीरिक है, न ही छायावादी कवियों की तरह वायवीय। वह तो अपनी सम्पूर्ण गरिमा से आकर्षित करने वाला ठोस, गतिशील और पूर्ण-सौन्दर्य है। शमशेर स्त्री-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के भी अप्रतिम चित्रकार हैं। उनकी कविताओं का वातावरण वाकई बहुत मोहक है। शमशेर की एक मुद्रा है: ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/क्यारी/भरी गेंदा की/स्वर्णारक्त/क्यारी भरी गेंदा की।/तन पर/खिली सारी/अति सुन्दर! उठाओ।'' उनकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति और प्रवृति में भी खासकर संध्या और उषा रूप से सम्बन्धित हैं। उनकी भावनाएँ प्राकृतिक बिम्बों के सहारे अभिव्यक्ति पाती हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में ''शमशेर की मूल मनोवृति एक इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार की है। इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार अपने चित्र में केवल उन अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेत शक्ति रखते हैं।'' इस प्रकार शमशेर अपनी मनोवृति को जीवन का अथाह समुंदर मापने के लिए छोड़ देते हैं। कवि की स्मृतियाँ संध्या के साथ उभरती हैं। इन्द्रिय-बोध के धरातल पर शाम कभी-कभी इतना मूर्त्त हो उठती है कि उसे छूकर

देखा जा सकता है। उनकी 'उषा' शीर्षक कविता प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ शब्दों से रंगों का काम लेने की उनकी क्षमता को उजागर करती है। इस कविता में शब्द और चित्र दोनों एक दूसरे से अतिक्रमित होते हैं:

''प्रात नभ- भा बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल ज़रा-से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो।'' शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। उनकी कविता शब्दों तक सीमित नहीं होती, बल्कि ऐसे तमाम शब्द जिन्हें वे बहुत ही चुनकर, सोच-समझकर अपनी बात के लिए इस्तेमाल करते हैं- काव्यानुभावों की एक व्यापक और जटिल दुनिया भी रचते हैं। शमशेर की प्रायः सभी कविताएँ एकालाप हैं- आन्तरिक एकलाप। शमशेर के लिए मृत्यु स्वयं काल है जिससे कतराकर निकल जाना गवारा नहीं है। इसलिये 'काल, तुझसे होड़ है मेरी: अपराजित तू-तुझमें अपराजित मैं वास करूँ।' यह होड़ है कला की काल से। नामवर सिंह ने लिखा है कि- ''अपनी कार्यशाला में शमशेर अकेले चाहे जितने हों, लोग-बाग से वह काफी भरी पूरी है। कितनी कविताएँ सिर्फ व्यक्तियों पर हैं। इतने व्यक्तियों पर शायद ही किसी कवि ने कविताएँ लिखीं हों.......शमशेर के लिए तो जैसे हाड़-मांस के जीते-जागते इंसान ही समाज है जिनका अपना चेहरा है, अपनी पहचान है, अपना सुख-दुःख है, छोटा ही सही पर सच्चा। शमशेर ऐसे ही व्यक्तियों को 'अपने पास' 'इतने पास अपने' खींच लाते हैं।"

4.3.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता: सामन्तवाद-साम्राज्यवाद-

पूँजीवाद के विरोध ने प्रगतिशील कविता को विश्वमानवता से प्रतिबद्ध किया। प्रगतिशील कविता में अगर त्रिलोचन और नागार्जुन में देशज, स्थानीय, ग्रामीण संदर्भ अधिक मुखर हैं, तो शमशेर में वैश्विक और अन्तर्राष्ट्रीय। शमशेर की कविता जिस सार्वभौम मनुष्यता को बिंबवत् धारण करती हैं, उसमें अमूर्तन उनकी मदद करता है। शमशेर चाहते हैं नागार्जुन की तरह सामाजिक और राजनीतिक कविताएँ लिखना; वे चाहते हैं त्रिलोचन की तरह किसान मन को अपनी कविताओं में टटोलना लेकिन उनका काव्य व्यक्तित्व विश्वमानवतावाद की सुदीर्घ परम्परा से जिन तत्वों को ग्रहण करता है, वे मिट्टी की देशजता से अधिक सागर और आसमान की विराट सार्वभौमता से संघटित होते हैं। शमशेर के बगैर प्रगतिशील कविता का आकाश नहीं बनता। उनकी कविता एक तरफ जन संघर्षों को आकाश से जोड़ती है तो दूसरी तरफ मुक्ति की चेतना को विराटता प्रदान करती है। उनके हृदय में जीवन संघर्ष से जूझ रहे व्यक्ति के प्रति गहरी संवेदना है। वे जन-जन को मुक्ति और एकता में विश्वास व्यक्त करते हैं- एक जनता का अमर

कर/एकता का स्वर/अन्यथा स्वातंत्र्य इति। शमशेर अपने व्यक्तित्व में जितने सहज और सरल रहे, अपनी कविताओं में उतने ही जटिल। वे प्रगतिवादियों के बीच लोकप्रिय रहे तो दूसरी तरफ प्रगतिवाद विरोधियों के बीच भी उतने ही लोकप्रिय रहे। शमशेर के साथ मुश्किल यह है कि वे पिछली पीढ़ी के कवि हैं, लेकिन संकलित किये गये हैं दूसरे सप्तक में। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में लिखा है कि पहले सप्तक से जिस यथार्थवादी कविता की शुरूआत हुई थी उसे दूसरे सप्तक में रूमानी प्रगीतात्मकता की तरफ मोड़ दिया गया। पहले सप्तक की कविता में जहाँ वस्तुपरकता थी वहीं दूसरे सप्तक की कविता में आत्मपरकता। शमशेर के बारे में यह निर्णय भी दिया गया कि- 'वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिये, कविताएँ उन्होंने बराबर वे लिखीं जो प्रगतिवाद को कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।' अज्ञेय ने शमशेर के बारे में लिखा है- ''वह प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ रहे लेकिन उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले कभी नहीं रहे। उन्होंने मान लिया कि हम इस आन्दोलन के साथ हैं और स्वयं उनकी कविता है, वह लगातार उसके बाहर और उसके विरूद्ध भी जाता रहा.......हम चाहें तो उन्हें बिम्बवादी और रूमानी कवि भी कह सकते हैं।'' शमशेर के बारे में एक रूढ़ि है कि वे बड़े मुश्किल कवि हैं या वे रूपवादी हैं या वे मार्क्सवादी हैं या वे प्रयोगवादी और सुर्रियलिस्ट हैं या मुख्यतः प्रणयजीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि हैं। शायद इसीलिए वे आधुनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप बेपर्दगी नहीं कर सकते। शमशेर किसी वाद की सैद्धांतिक विचारधारा की बनी-बनाई लीक पर नहीं चलते। उन्होंने स्पष्ट कहा कि- ''मेरे कवि को किसी फार्म या शैली का सीमाबंधन स्वीकार नहीं। कौन-सी शैली चल रही है, किस वाद का युग आ गया है या चला गया है- मैंने कभी इसकी परवाह नहीं की। जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे जचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपनाया। अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही। उसके रास्ते में किसी बाहरी आग्रह का आरोप या अवरोध मैंने सहन नहीं किया।''

शमशेर की प्रगतिवादी कविताएँ सामाजिक, आर्थिक विषमता और साम्प्रदायिकता के विरूद्ध हैं। उनकी प्रगतिवादी चेतना, उत्तेजना, विद्रोह या संघर्ष की न होकर एक गहरी पिपासा लिए मानवीय प्रेम की चेतना है। इसलिये संघर्ष उनकी भाषा में नहीं बल्कि भावना में मूर्त्त हुआ है। प्रगतिवादी चेतना के कवि होते हुए भी शमशेर की पहचान मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि के रूप में होती है। उनकी सौन्दर्य चेतना कहीं-कहीं तो छायावादी सौन्दर्य चेतना का भी अतिक्रमण करती दिखाई देती है- ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि। शिथिल करूणा।'' शमशेर मूलतः रोमान के कवि हैं। छिप और बचकर कविताएँ लिखने वाले। शमशेर की आत्मा एक रोमांटिक, क्लासिकल प्रकार की है। उनका जोर संवेदनविशिष्टता और संवेदनाघात पर होता है। प्रणयजीवन के भावप्रसंगों या सूक्ष्म संवेदनाओं के बारे में जो बातें वे नहीं कहते, वे संदर्भ की दृष्टि से बहुत प्रधान हैं।

वह जब किसी दूसरे कवि की कविताओं को राजदाँ की तरह पढ़ने की सलाह देते हैं तो दरअसल अपनी कविताओं को पढ़ने का गुर सिखा रहे होते हैं:

यह कविता नहीं मात्र

मेरी डायरी है

(अपनी मौलिक स्थित में

छपाने की चीज नहीं)।

उनकी असल ताकत उन सरल उक्तियों में देखने में आती है जिनमें किसी उपमा तक का सहारा नहीं लिया जाता और जो अपनी सादगी के कारण ही मन में गहरे उतरती चली जाती है: यही अपना मकान है, जो कि था!/हाँ, यही सायबान है, जो कि था! उनकी अधिकांश कविताएँ सचमुच उनकी डायरी का ही हिस्सा हैं। उतनी ही निजी और गोपनीय या आत्मीयों के लिये पठनीय। इसी आधार पर उन्हें रूमानी और रूपवादी कवि भी कहा जाता है। मुक्तिबोध ने उन्हें 'मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि' कहा है। 'कविता को समाज की नब्ज टटोलने का माध्यम'- मानने वाले शमशेर कविता को आत्मा की अभिव्यक्ति भी मानते हैं और आत्मा की दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य से भला कैसे विमुख रह सकती है। प्रेम शमशेर की कविताओं में सदैव- 'अंतिम विस्मय' रहा है। उनकी कविताओं में एक अद्भुत किस्म की पाकीज़गी है। यह पाकीज़गी किसी सती-सावित्री किस्म की पाकीज़गी नहीं है बल्कि एक आशिक़ की पाकीज़गी है। वे हमारे समय के सरमद हैं। उन्होंने प्रेम की पाकीज़गी को मध्ययुगीन आध्यात्मिकता के झुरमुट से निकालकर यथार्थवाद की रोशनी में ला खड़ा किया है। प्रेम का अंकुर भाव ही उनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है-

तुमको पाना है अविराम

सब मिथ्याओं में

ओ मेरी सुख

मेरी समस्त कल्पना के पीछे एक सत्य मुझ उपेक्षित को स्नेह स्वीकृत करो। शमशेर की कविताओं में व्यक्त प्रेम की निजी अनुभूतियाँ सामाजिक सम्बन्धों के गहरे लगाव को भी नये सिरे से जानने का साधन बनती हैं। उनकी कविताओं में व्यक्त रूमानियत भी पाठक को करूण वेदना से सिक्त कर देती हैं। इस संदर्भ में 'एक पीली शाम' कविता महत्त्वपूर्ण है। उनका काव्यात्मक आवेग उनकी अपनी पहल या शारीरिक लगाव से इतना आगे चला जाता है, इतना गहरा हो जाता है कि व्यक्ति सम्मुख होते हुए भी स्वयं का समूचा संदर्भ कल्पनाओं की ओट में, ओझल हो जाता है।

4.3.2 शमशेर की काव्य भाषा और बिम्ब-विधान:

शमशेर हिन्दी के उन बिरले रचनाकारों में हैं जो हिन्दी के सही मिज़ाज को पहचानते हैं। शमशेर बोलियों की शक्ति को भी पहचानते हैं। उनकी कविता में इनका असर किन्हीं आंचलिक शब्दों के प्रति मोह के रूप में नहीं आता जैसा कि त्रिलोचन में आता है। समकालीन हिन्दी उर्दू कवियों पर लिखी उनकी समीक्षाएँ उनके गहरे काव्य चिंतन और सुसंगत भाषा चिंतन का प्रमाण

हैं। उन्होंने हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी दोआबी संस्कृति को विरासत में हासिल किया और उसका विकास किया। आज जब हिन्दी और उर्दू के बीच लगातार दूरी बढ़ रही है तब शमशेर ही हैं जो अधिकारपूर्वक 'हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू' की आवाज बुलन्द कर सकते हैं-

''वो अपनों की बातें वो अपनों की खू-बू

हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू

वो कोयल वो बुलबुल के मीठे तराने

हमारे सिवा इसका रस कौन जाने।''

शमशेर की काव्य भाषा अपनी प्रयोगधर्मिता में अद्वतीय है। रूप, रस, गंध और स्पर्श की एन्द्रिक अनुभूतियों को शब्द चित्रों में लाने में उनकी काव्यभाषा को अद्भुत कौशल प्राप्त है। वे शब्दों के माध्यम से बहुरंगी चित्रों को साकार कर देते हैं- 'अक्टूबर के बादल, हल्के रंगीन अटे हैं/पत्ते संध्याओं में ठहरे हैं।' शमशेर के यहाँ कविता का नूर ही उसका पर्दा बन जाता है। शब्द संकेत और रंग संकेत का उनके यहाँ ऐसा घोलमेल है कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा के सम्मुख कवि कर्म क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है। सरलता ही गूढ़ता का रूप ले लेती है। अपने आशय को पारदर्शी बनाने की चिंता ही उन्हें उन अथाह गहराइयों में पहुँचा देती है जहाँ तक उतरने का अक्सर लोग साहस नहीं जुटा पाते और इसलिये सरल भी गूढ़ बन जाता हैः

सरल से भी गूढ़, गूढ़तर

तत्व निकलेंगे

अमित विषमय

जब मथेगा प्रेम सागर हृदय।

शमशेर, त्रिलोचन की तरह सब कुछ कह देने और पूरा वाक्य लिखने के पक्ष में नहीं हैं। वे बिम्बों को, शब्दों को अनायास बिखेर देते हैं। इस बिखराव को वे विराम, अर्द्धविराम, डैश, डाट से नियंत्रित करने की चेष्टा करते हैं। शमशेर की कविताओं में गाढ़े, चटख और कई बार मद्धिम और उदास रंग वाले बिम्बों की अधिकता है। बिम्ब निर्माण में वे अनेक रंगों का प्रयोग करते हैं- पर एक भी चटकीला नहीं है- सब किंचित, मटमैले, धुँधले, साँवले, उदास। कहीं गुलाबी हैं तो उसका रंग कत्थई है। कहीं केसरिया है तो साँवलेपन की छाया लिये हुए; बिजली है तो कुहटिल, बादलों के पंख गेरूआ रंगें हैं। शमशेर संवेदन चित्रण मुख्यतः दो प्रकार से करते हैं। संवेदन की तीव्रता बताने के लिए वे बहुत बार नाटकीय विधान प्रस्तुत करते हैं। संवेदन के विभिन्न गुणचित्र प्रस्तुत करने के लिए वे मनः प्रतिमाओं का, इमेजेज़ का सहारा लेते हैं। ये इमेजेज़ उनके अवचेतन-अर्धचेतन से उत्पन्न होती हैं। उन इमेजेज़ में उनके अवचेतन का गहरा रंग होता है। इसके अलावा शमशेर का शब्द-संकलन अत्यंत सचेत और संवेदनानुगमी होता है। पर अक्सर

बिम्ब खंडित और कभी-कभी अबूझ हो जाते हैं। उनकी कविताओं में ऐसी अमूर्तता है कि वह आसानी से पकड़ में नहीं आ पाती, फिर भी लोक भाषा की मिठास अद्भुत है: गाय-सानी। सन्ध्या। मुन्नी-मासी। दूध! दूध! चूल्हा आग भूख

माँ।

प्रेम।

रोटी।

मृत्यु।

केदारनाथ सिंह के शब्दों में ‘‘जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह यह है कि उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध।’’ शमशेर सूर्योदय को ‘रंगीन बिम्बो से बुना हुआ जागरण का पर्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्हें बारीक़ से बारीक़ संवेदनाओं के सूक्ष्म प्रभावां की पहचान है। शमशेर संवेदनाओं के प्रसंग विशिष्ट गुणों का बहुत सफलतापूर्वक चित्रण करते हैं। वे एक ही भावप्रसंग के विभिन्न संवेदनाओं को प्रभावकारी गुणों के चित्र या चित्रों का कोलाज प्रस्तुत करते हैं। प्रातःकाल के बिम्ब की तरह शाम का भी निजी बिम्ब हैः-

नीबू का नमकीन-सा शरबत

शाम (गहरा नमकीन)

प्राचीन ईसाई चीजों-सी कुछ

राजपूताने की-सी बहुत कुछ

गहरी सोन चम्पई

सोन गोटिया शाम

शान्त

तुम्हारी साड़ी की सी शाम

बहुत परिचित।

शमशेर से अधिक मांसल बिम्ब कम कवियों ने दिये होंगे पर अभिव्यक्ति पर उनका असाधारण अधिकार, मासंलता को भी उदात्र बना देता है- वह मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए के बल खड़ी है, उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर देता है, यह सब शमशेर के अपने मन की बनावट की उपज है। विशेषत: निराला से शमशेर सूक्ष्म रूप से प्रभावित हुए हैं- सीढ़ियों की बादलों की झूलती। टहनियों-सी। शमशेर ध्यान देने वाली बात यह है कि टी.एस.

इलियट की तरह शमशेर भी धार्मिक और यौन बिम्बों को एक साथ रखकर नया प्रभाव पैदा करते हैं। उनकी प्रेम कविताओं पर हल्का गौरिक रंग है। शमशेर का सरल वक्तव्य भी वक्रोक्तिपूर्ण या जटिल हो जाता है। 'एक पीली शाम' में पीलापन शाम का ही नहीं है, वह प्रेम पर भी छाया हुआ है। इस संदर्भ में प्रिय का मुख-कमल म्लान होना कविता की संरचना के भी अनुरूप है और कवि की भावना के भी। शमशेर की भाषा जहाँ-जहाँ अधिक अपारदर्शी होती है, वहाँ-वहाँ अन्यों की तुलना में सम्प्रेषण की समस्याएँ अधिक खड़ी होती है, लेकिन अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए उन्होंने कहा है कि- ''बच्चे अपनी सब बातें समझा लेते हैं- बावजूद इसके कि वो शब्द बहुत से नहीं इस्तेमाल करते.........इसी तरह मेरी भी बहुत सी कविताएँ बच्चों जैसी अटपटी है, बहुत अटपटी है, लेकिन उसमें वो फोर्स बच्चों जैसा है।'' शमशेर के बिम्ब विधान की मौलिकता को देखना हो तो 'चाँद से थोड़ी सी गप्पे, कविता को देखना चाहिये, जिसमें चाँद के घटने बढ़ने का वस्तु बिम्ब अत्यंत प्रभावशाली है: आप घटते हैं तो घटते ही चले जाते हैं/और बढ़ते हैं तो बस यानी कि/बढ़ते ही चले जाते हैं/दम नहीं लेते हैं, जब तक बिल्कुल ही/गोल न हो जायें/बिल्कुल गोल। उनके बिम्ब विधान विलक्षण चित्रों की योजना से हैं। बिम्ब उन्हें इतने प्रिय हैं कि उनकी कविताओं के शीर्षक ही बिम्बधर्मी हो जाते हैं- 'एक पीली शाम', 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'एक नीला आइना बेठोस', पथरीली घास भरी इस पहाड़ी के ढाल पर'। उनकी कविताओं में 'नीला शंख', 'काली सिल', 'लाल केसर', 'पीली शाम', 'पीले गुलाब', 'नीला जल' जैसे विशेषणयुक्त वर्ण बिम्ब हैं। शमशेर शब्दों की आवृत्ति का जिस कुशलता से और जितने अचूक ढंगसे करते हैं, उसका तुलसीदास को छोड़कर दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है- तू किस/गहरे सागर के नीचे/के गहरे सागर/के नीचे का/गहरा सागर होकर/मिंच गया है। अथाह शिला से। शमशेर अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति की तलाश में उस चरम तक पहुँच जाते हैं जहाँ शब्द अभिप्रेत भाव का प्रतिरूप बनकर स्वयं तिरोहित हो जाते हैं। यहाँ शब्दों के सिरे से कविता को पकड़ना भी मुश्किल है और समझना भी। शमशेर की कविताओं में शब्द नहीं है, शमशेर स्वयं हैं। उनकी कविताओं को समझना शमशेर को पाना है।

4.3.3 शमशेर बहादुर सिंह: संक्षिप्त परिचय:

जन्म: 13 जनवरी, 1911 देहरादून में। प्रारंभिक शिक्षा देहरादून, गोण्डा व इलाहाबाद। 1935-36 में उकील बन्धुओं से कला महाविद्यालय में चित्रकला सीखी। 1938 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. प्रीवियस, फाइनल नहीं किया। सन् 1938 में रूपाभ पत्रिका से सम्बद्ध। 1939-1954 तक 'कहानी', 'नया साहित्य', 'माया', 'नया पथ' और 'मनोहर कहानियाँ'- कई पत्रिकाओं में सम्पादकीय कार्य से सम्बद्ध। 1965-77 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजना के अन्तर्गत 'उर्दू-हिन्दी कोश' का सम्पादन। 1981-85 तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ के अध्यक्ष रहे। 1978 में सोवियत संघ की यात्रा। रचनाएँ: 'कुछ कविताएँ'-कमच्छा-वाराणसी 1959, 'कुछ और कविताएँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1961, 'चुका भी हूँ नहीं मैं', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1975 (1977 का साहित्य अकादमी पुरस्कार), 'इतने पास अपने', राजकमल

प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'उदिता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'बात बोलेगी', संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1981, 'काल तुझसे होड़ है मेरी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, 'कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, 'सुकून की तलाश', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1998।

निधन: 12 मई, 1993।

4.4 शमशेर: पाठ और आलोचना

4.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ

1. लौट आ, ओ धार

लौट आ, ओ धार

टूट मत ओ सांझ के पत्थर

हृदय पर

(मैं समय की एक लम्बी आह

मौन लम्बी आह)

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी

फिर

फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल

कोई, हाय

2. बात बोलेगी:

बात बोलेगी,

हम नहीं।

भेद खोलेगी

बात ही।

सत्य का मुख

झूठ की आँखें

क्या- देखें !

सत्य का रूख

समय का रूख है:

अभय जनता को

सत्य की सुख है

सत्य ही सुख।

दैन्य दानव, काल

भीषण; क्रूर

स्थिति; कंगाल

बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का

क्या रंग ?

पूछो

एक संग।

एक- जनता का

दुःख: एक।

हवा में उड़ती पताकाएँ

अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।

कंगाल बुद्धि: मजूर घर भर।

एक जनता का- अमर वर:

एकता का स्वर

अन्यथा स्वातन्त्रय इति।

3. एक पीली शाम

एक पीली शाम

पत झर का जरा अटका हुआ पत्ता

शांत

मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल

कृश म्लान हारा-सा

(कि मैं हूँ वह

मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)

वासना डूबी

शिथिल पल में

स्नेह काजल में

लिए अद्भुत रूप- कोमलता

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू

सांध्य तारक-सा

अतल में।

4. उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो

स्लेट पर या लाल खड़िया चाक

मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की

गौर झिलमिल देह

जैसे हिल रही हो।

और ....

जादू टूटता है इस उषा का अब

सूर्योदय हो रहा है।

5. मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत

मुझको मिलते हैं अदीब और

कलाकार बहुत

लेकिन इंसान के दर्शन हैं मुहाल

दर्द की एक तड़प-

हल्के-से दर्द की एक तड़प,

सच्ची तड़प,

मैंने अगलों के यहाँ देखी है-

या तो वह आज है खामोश

तबस्सुम में जलील

या वो है क-आलूद

या तो दहशत का पता देती हैं,

या हिस्सा है,

या फिर इस दौर के खाको-खूं में

गुमगश्ता है।

6. बादलों के बीच

फ़र्श पर है सूर्य, जग है जल में

बदलों के बीच

मेरा मीत

आंखों में नहाता

और यह रूह भी गयी है बीत

यूं ही।

4.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना

शमशेर की कविताएँ आधुनिक काव्यबोध के अधिक निकट है, जहाँ पाठक तथा श्रोता के सहयोग की स्थिति को स्वीकार किया जाता है। शमशेर मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इस दृष्टि से वे अज्ञेय की परम्परा में पड़ते हैं। आप जानते हैं कि अज्ञेय की कविता में वस्तु और रूपकार दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रवृति दिखलाई पड़ती है लेकिन शमशेर और अज्ञेय में अन्तर यह है कि शमशेर के प्रयोगवाद का रथ संवेदना का धरातल नहीं छोड़ता है। बावजूद इसके शमशेर में शिल्प कौशल के प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। लोगों को शमशेर का काव्य शिल्पग्रस्त प्रतीत होता है तो इसका कारण शमशेर के कथ्य की नवीनता है। वे वास्तविक और प्रसंगबद्ध संवेदनाओं को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं। इस दृष्टि से वे आधुनिक अंग्रेज कवि एजरा पाउण्ड के नजदीक बैठते हैं। हम जानते हैं कि- आधुनिक अंग्रेजी काव्य में काव्यशैली के नये प्रयोग एजरा पाउण्ड से प्रारंभ होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह अपने वक्तव्य में एजरा पाउण्ड के प्रभाव को मुक्त भाव से स्वीकारते भी हैं- ‘‘टेक्नीक से एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बड़ा आदर्श बन गया।’’

शमशेर आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रतिम संभावनाशील कवि हैं। वे मार्क्सवाद के प्रति आकृष्ट हैं, प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखते हैं लेकिन रचनाप्रवृति में प्रगतिवादी नहीं हैं। वे प्रयोगवादी हैं, पर मानवीय सरोकारों से विरहित प्रयोगवादी नहीं हैं। उनकी कविताओं में आत्मसंघर्ष है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का ढंग रेहटारिक किस्म का नहीं है, उनका आत्मसंघर्ष निजी है, प्राइवेट है इसलिये उसमें अद्भुत कशिश है। 'मेरी कविताओं को/अगर वो उठा सके और एक घूंट/पी सकें/अगर।' इस 'अगर' की विवेचना ही उनकी सम्पूर्ण आत्मसंघर्षी चेतना की विवेचना है। उनकी कविताएँ मानसिक जटिलता की कविताएँ हैं। वे भीतर, और भीतर घुसते जाते हैं, यहाँ तक की अचेतन मन की सीमाओं में भी प्रवेश कर जाते हैं। शमशेर ने समाज को निकट से देखा है, उसकी पीड़ा, उसकी पीड़ाएं देखी हैं, उनका यथार्थ चित्रण भी किया है लेकिन इस विश्वास के साथ कि मनुष्य एक न एक दिन नवयुग का निर्माण करने में समर्थ होगा- नया एक संघर्ष नई दुनिया का/नये मूल्यों का, नये मानव का/एशिया का नया मानव आ रहा है/ एक नया युग ला रहा है। शमशेर परिस्थितियों के भीतर प्रसंग उपस्थित करते हैं। परिस्थिति एक विशिष्ट चीज़ है, सामान्यीकृत नहीं। उनके यहाँ जीवन प्रसंग अनेक सूत्रों से, अनेक तत्वों से उलझे हुए होते हैं। यहाँ उलझे हुए सूत्र और परस्पर प्रतिक्रियाशील तत्व ज्वलन्त अग्निखण्ड से हैं। शमशेर सामान्यीकृत भावनाओं और सामान्यीकृत रूखों के कवि नहीं हैं। विशिष्टता उनकी कविता के ताने बाने के भीतर से अकुलाती रहती है।

शमशेर के पूरे काव्य शिल्प को- जिसमें यथातथ्यता, सूक्ष्मता, मितव्ययिता आदि का आदर्श उपस्थित है- वह उनकी समग्र सौन्दर्य चेतना को प्रभावित करता है। शमशेर उन दुर्लभ कवियों में हैं जो केवल जीवन के सच को लिखते हैं; मगर उनके जीवन का सच, समय और समाज के सच से न केवल सहज रूप से जुड़ जाता है बल्कि उसी में अपना विस्तार भी पाता है। शमशेर की कविता का आदर्श 'बात बोलेगी' कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है- 'बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही।' 'दैन्य-दानव, काल-भीषण, क्रूर-स्थिति, कंगाल-बुद्ध, घर-मजूर' अकेले शब्दों से पूरे संदर्भ को ध्वनित करने की कोशिश में 'सख्त कविता' का आदर्श उपस्थित हो जाता है। यहाँ कविता की संरचना उस 'मानसिक अन्तर्ग्रथन' को सामने लाती है जिससे समूची कविता एक अविभाज्य ठोस बिम्ब के रूप में प्रकाशित हो उठती है। उनकी वेदना यह है कि उच्च वर्ग और ऊँचा उठता जा रहा है, उसके पास साधनों का अम्बार लगता जा रहा है लेकिन मध्यमवर्गीय समाज बेवसी, कुण्ठा, निराशा, वेदना को झेलने के लिए अभिशप्त है। आर्थिक विषमता ने उसे और भी तोड़ दिया है। उसकी आकांक्षाएँ चूर-चूर हो रही हैं। कवि को ऐसा लगने लगता है कि मानो सारे मार्ग अवरूद्ध हो गये हों, सारे रास्ते रूक से गये हैं- जर्द आहें हैं, जर्द है यह शाम, सभी राहें हैं नाकाम।

उनके यहाँ अभिव्यक्ति और संकोच का तनाव प्रत्यक्ष है। कवि एक संकेत के द्वारा, एक काव्य बिम्ब के द्वारा, दो स्थितियों या वस्तुओं के तनाव के द्वारा शाम का जो चित्र देना चाहता है- 'एक पीली शाम/पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- वह चित्र पूरा होता है 'अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू/सान्ध्य तारक-सा/अतल में- लेकिन यहाँ अतल में गिरने के पहले

संकोच का अटकाव का एक झिलमिलाता अन्तराल है जिसमें आँसू अपनी जीवितता ग्रहण करता है। यहाँ जन्म लेना, अलग होना है। अतल की ओर जाना, नितांत पराया हो जाना है। यह शमशेर की कविता की अन्यतम महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह बिल्कुल निजी और बिल्कुल पराये के बीच एक-एक क्षण को रचते हैं- जहाँ आँसू निजी भी हैं और नहीं भी हैं, पराया भी है और नहीं भी हैं। शमशेर एक ही साथ प्रवृति को भी प्रभावित करते हैं और भाव को भी। शमशेर की कविताएँ शाम और रात पर अधिक हैं। शाम उनकी मनःस्थिति को ज्यादा गहराई से व्यंजित करती है। उनके अकेलेपन व उदासी को शाम व रात पर लिखी कविताओं में देखा जा सकता है। 'आज मई की शाम अकेली', 'इन्दु विहान', 'शाम की मटमैली खपरैल', 'एक पीली शाम', 'शाम होने को हुई', तथा 'शाम-सुबह' जैसी कविताओं में उदासी का लगातार बना हुआ भाव ही व्यक्त हुआ है। 'एक पीली शाम' कविता में उदासी से परिपूर्ण उद्वेग की ही व्यंजना है। शाम का जो भाग गो-धूलि कहलाता है, वह मटमैला और पीला होता है। उसे पीली शाम कहना स्वाभाविक ही है। उसे मूर्त्त रूप देने के लिए पतझर के अटके हुए पीले पत्ते का समीकरण है। पीली शाम विस्तृत होती है। उसे पतझर के पीले पत्ते में समेटना वैसा ही है जैसे छोटे दर्पण में किसी बहुत बड़ी चीज का प्रतिबिम्ब। फिर जब कवि यह कहता है कि तुम्हारे मौन दर्पण में कहीं वह स्वयं ही तो नहीं है, तो अभिप्राय यह होता है कि वह स्वयं कृश, म्लान, हारा-सा है। इस कविता में पीला अटका हुआ पत्ता और गिरने-गिरने को अटका हुआ आंसू- ये दोनों बिम्ब कवि की निजी पीड़ा का मर्मस्पर्शी सम्प्रेषण कराते हैं। इस कविता का गहरा सम्बन्ध उनकी निजी पीड़ा से भी है। आखिरी सांसें गिनती हुई मरणासन्न पत्नी को देखते हुए संवेदनशील हृदय में भावनाओं और विछोह की पीड़ा का ज्वर कैसे उमड़ता-घुमड़ता है- इसका प्रभावशाली दृश्यांकन यहाँ सहज उपस्थित है। 'पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- शरीर में अटके हुए प्राण का प्रतीक है, लेकिन शाम का पीला होना कवि की घनीभूत वेदना का प्रतीक है। उनकी कविताओं की यह विशेषता है कि वे 'वस्तु' का सम्पूर्ण खाका या चित्र उपस्थित नहीं करते, बस उसके प्रमुख अंगों पर 'फोकस' डालकर संवेदनात्मक धरातल पर छोड़ देते हैं। उनकी कविताओं में ज्ञानेन्द्रिय विषयों- रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श के शब्द चित्र बिखरे हुए हैं।

शमशेर की काव्यानुभूति वस्तुओं के मर्म में एक ही स्थिति को पकड़ती है, 'रह गया-सा'एक सीधा बिम्ब चल रहा है/जो शान्त इंगित-सा/न जाने किधर।' ये कविताएँ गहरी सामाजिक संभावना के परिवर्तनशील बोध को कलात्मक रूप में उजागर करती हैं। शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। अपनी काव्यवस्तु के चयन और उसके शिल्प संगठन में वे बेहद सजग हैं। वास्तव में उनकी कविता सीधे सरल तरीके से सामाजिक संघर्ष की कविता नहीं है, बल्कि उसे उनकी काव्य भाषा की बहुस्तरीयता को बेधकर ही समझा जा सकता है। बिम्ब व प्रतीक के मौलिक और कलात्मक प्रयोग से वे अपने अभिव्यक्ति कौशल को पैना बनाते हैं। उनकी कविताओं पर केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ''जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध है। इसलिए शमशेर के बिम्बों को उनके ध्वनिगत संदर्भ के स्तर पर देखने-परखने की आवश्कता है।'' शमशेर की काव्यशैली पर उर्दू काव्यशैली

का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उर्दू ग़ज़ल के विविध शेड्स उनकी कविताओं में अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं-

कितने बादल आये, बरसे और गये

जिसके नीचे मैं पड़ा, सुलगा किया।

उनकी ग़ज़लनुमा कविताएँ प्रेम और सैंदर्य के साथ ही राजनीतिक विदूपताओं को भी प्रखर व्यंग्य के साथ व्यक्त करती हैं। वे न स्वयं के बारे में कुछ कहते हैं, न कविताओं के बारे में। कवि में भी वे कविता को ही बोलने देने वाले कवि हैं- बात बोलेगी, हम नहीं/भेद खोलेगी, बात ही।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. शमशेर का जन्म .... ई0 में हुआ था।
2. शमशेर को .... कहा गया है।
3. शमशेर बिम्ब ग्रहण में .... से प्रभावित है।
4. शमशेर .... सप्तक के कवि है।
5. दूसरा सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है ।

ख) संक्षेप में उत्तर दीजिए :-

1. शमशेर की दो रचनाओं के नाम बताइए।
2. शमशेर पर किस विचारधारा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

ग) टिप्पणी कीजिए :-

1. शमशेर बहादुर सिंह की कविता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. शमशेर की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. शमशेर को ‘कवियों का कवि’ क्यों कहा जाता है ?
4. शमशेर की कविताएँ प्रगतिवादी चेतना से भिन्न हैं- कैसे ?

4.5 सारांश

इस ईकाई में आपने प्रगतिशील काव्यान्दोलन के संदर्भ में शमशेर की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने प्रगतिशील आन्दोलन, प्रगतिवाद के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर बहादुर सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। प्रगतिशील आन्दोलन और मार्क्सवाद से उनका क्या सम्बन्ध है तथा किस प्रकार वैचारिक प्रतिबद्धता के बाद भी शमशेर काव्यात्मक बिम्बों के कवि बनते हैं साथ ही प्रयोगवाद और नयी कविता के पुरस्कर्त्ताओं में अग्रणी स्थान बनाते हैं- यहाँ इसे विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। शमशेर आत्मगत बिम्ब और आत्मा का वस्तुगत बिम्ब दोनों को एक ही साथ रचते हैं- 'एक नीला आइना/बेठोस-सी यह चाँदनी/और अन्दर चल रहा मैं/उसी के महातल के मौन में।' इस काव्यात्मक बिम्ब के सृजन में कवि का दृष्टिकोण नितांत भिन्न है। वह 'बेठोस नीले आइने' में अपने को वैसा नहीं पाता, जैसा वस्तुतः वह है। शमशेर न प्रतिछवि रचते हैं, न छायाभास ही, वे दोनों के बीच की स्थिति का बिम्ब रचते हैं। देखने की क्रिया ही बिम्ब है। शमशेर की काव्य संवेदना मूलतः रोमांटिक तथा काव्य संस्कार प्रधानता रूपवादी है। इस रोमांटिक तथा रूपवादी रूझानों के बावजूद विवेक के धरातल पर शमशेर प्रगतिशील सामाजिक चेतना के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं तथा धरती व मनुष्यता की मुक्ति के लिये संघर्ष करते हैं। शमशेर की कविताएँ प्रयोगवाद के काव्यशास्त्र को विस्तार देती हैं। वे विचारों में जितने स्पष्ट जान पड़ते हैं, काव्य प्रक्रिया में उतने ही उलझे व दुर्बोध प्रतीत होते हैं। वे अपनी कविताओं में जिस शिल्प का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः साधारण पाठक को चिंतित करता है- शिक्षित संवेदना के अभ्यास से ही उनकी अर्थवत्ता ग्रहण की जा सकती है।

शमशेर की कविता पढ़ते हुए आप देखेंगे कि कवि प्रेम और सौन्दर्य चेतना के साथ-साथ बिम्बों, कल्पनाओं, प्रतीकों के माध्यम से विश्वदृष्टि और वर्गचेतना को बदलने का संघर्ष करता है। शमशेर के शब्दों में- 'कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज नहीं हो सकती।' विषमतापूर्ण वर्तमान जीवन, दुःख और दैन्य के चक्र में पिसता जन सामान्य, जीवन के प्रत्येक उतार-चढ़ाव में जन सामान्य की स्वतंत्रता ही शमशेर की कविताओं का लक्ष्य है।

4.6 शब्दावली

1. दूसरा सप्तक : प्रकाशन 1951 (सं. अज्ञेय), संकलित कवि-भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

2. प्रगतिशील काव्यान्दोलन : 1930 के बाद नवीन सामाजिक चेतना के कारण 1936 में प्रगतिश ल लेखक संघ का गठन हुआ। प्रगतिशील काव्यान्दोलन ने अपनी विचारधारात्मक प्रेरणा मार्क्सवाद से ग्रहण की। प्रगतिशील काव्यान्दोलन किसान-मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति के साथ शोषण उत्पीड़न से मुक्ति के सामूहिक प्रयास की जरूरत पर बल देता है। इस

काव्यन्दोलन को नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन व शमशेर बहादुर सिंह ने आगे बढ़ाया।

3. प्रयोगवाद: प्रयोगवाद का आरंभ अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'तार सप्तक' (1943) से माना जाता है। 'प्रयोगवाद' नाम प्रगतिशील विचारधारा के विरोध में दिया गया, क्योंकि जहाँ प्रगतिवाद में सामाजिक मुक्ति का सवाल महत्त्वपूर्ण था वहीं 'व्यक्ति स्वातंत्रय' की वकालत कर प्रयोगवाद के माध्यम से सामाजिक मुक्ति का विरोध हुआ। प्रयोगवाद ने हिन्दी कविता में रूपवाद (व्यक्तिवाद) को मजबूत आधार दे दिया। प्रयोगवाद मानव जीवन के आंतरिक यथार्थ पर बल देने के कारण अनास्था, संदेह, व्यक्तिवाद व बौद्धिकता का झूठा मुखौठा लगाकर प्रयोग का आग्रह सहित साहित्यिक मूल्यों तक सीमित रहा तथा मूलतः शिल्प की चमक-दमक का आन्दोलन बन गया।

4. बिम्बवाद : बिम्ब अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है चित्रण करना या मानसी प्रतिकृति उतारना। बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है। बिम्ब शब्दों में निर्मित आकृति है। केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ''बिम्ब शब्द के अर्थ में क्रमशः विकास हुआ है। आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में जो अर्थ उसे दिया गया है वह अपेक्षाकृत नया है। सामान्यतः उसका प्रयोग मूर्तिमता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है।'' काव्य बिम्ब का मुख्य कार्य सम्प्रेषणीयता है। वह विषय को स्पष्ट करता है, दृश्य, भाव या व्यापार को स्पष्ट करता है। बिम्बवादी विचारधारा का प्रवर्तक टी.ई. इल्मे हैं लेकिन बिम्बवाद का विकास एजरा पाउण्ड के माध्यम से हुआ। बिम्बवादियों का उद्देश्य कविता को एक नयी दिशा देना है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 1. 1911 2. कवियों का कवि 3. एजरा पाउंड

4. द्वितीय तारसप्तक 5. 1951

ख) 1. चूका भी नही हूँ मैं, इतने पास अपने 2. मार्क्सवाद

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शमशेर: प्रतिनिधि कविताएँ 2008, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. श्रीवास्तव, सं0 परमानन्द, दिशान्तर (1999) , अनुराग प्रकाशन, काशी।

3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. नवल, डॉ. नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता (1993), अनुपम प्रकाशन, पटना।

5. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग, वाणी प्रकाशन (1996), नई दिल्ली।

4.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नई कविता और अस्तित्ववाद।

3. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. वाजपेयी, अशोक, फिलहाल।

5. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शमशेर बहादुर सिंह की काव्य चेतना और शिल्प गठन पर प्रकाश डालिये।

2. प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर का महत्त्व पर विचार प्रस्तुत कीजिये

3. शमशेर की काव्यभाषा और बिम्ब विधान का महत्त्व बताइये।

4. शमशेर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की चेतना से भिन्न किस्म के कवि हैं- कैसे?

5. शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं की अन्तर्वस्तु का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 5 श्रीकांत वर्मा : पाठ और आलोचना

इकाई की रुपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा
5.3.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता
5.3.2 श्रीकांत वर्मा: नई काव्य भाषा की तलाश
5.3.3 श्रीकांत वर्मा: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
5.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना
5.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ
5.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने समकालीन कविता और शमशेर बहादुर सिंह का अध्ययन किया समकालीन कविता गहरे अर्थ में राजनीतिक कविता है। उस पीढ़ी के अधिकांश कवियों ने समय-समाज-राजनीति की चिंताओं-तनावों का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया, इन कवियों ने अपने समय-समाज की स्थिति से क्षुब्ध होकर नितांत तात्कालिकता को रचना में उतारने का यत्न किया, परिणाम यह हुआ कि इनका ऐतिहासिक विवेक कुंद होता गया और भाषा जातीय स्मृति के गहरे बोध से कटती गई। वह दौर मोहभंग का भी है और स्मृतिभ्रंश का भी। धीरे-धीरे काव्यभाषा में सपाटता सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आती गई। अकविता के चीखते काव्य मुहावरे यौन क्रांति की आवाज बनते गये, नवगीतकारों का दौर अबौद्धिक स्थितियों का शिकार होता गया, नववामपंथी-जनवादी कविताओं की नारेबाजी अकाव्यात्मक लगने लगी- जैसे कविता राजनीतिक दलदल में फँसकर गहरी सांस्कृतिक जड़ों और वैचारिक स्थितियों की धूरी से उतरने लगी। इस निराशा, घुटन, अराजकता और मूल्यहीनता के माहौल में अमरीकी कवि एलिन गिन्सबर्ग 1962-63 में भारत आया, उसका स्थायी निवास बनारस था लेकिन उसके यौनवाद का प्रभाव युवा कवियों पर पड़ा। गिन्सबर्ग का 'हाउल' युवा कवियों का 'धर्मग्रंथ' बन गया ऊब, उपभोक्तावाद और यौन-विकृतियों की बजबजाहट के वीभत्स चित्र

'मुक्तिप्रसंग' और 'कांकावती' में देखे जा सकते हैं। डॉ0 नन्दकिशोर नवल ने इस दौर को 'नयी विद्रोही पीढ़ी की कविता' नाम दिया है- जिसके प्रसिद्ध कवि हैं श्रीकांत वर्मा (1931-1986) और धूमिल (1931-86)। सातवें दशक की हिन्दी कविता में सीमाओं का अतिक्रमण कर विद्रोह की एक नयी भूमि निर्मित करने वालों में श्रीकांत वर्मा महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप सातवें दशक के महत्त्वपूर्ण कवि श्रीकांत वर्मा की कविता में अभिव्यक्त समकालीन वास्तविकता की तीखी चेतना का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप देखेंगे कि सन् 60 के बाद की हिन्दी कविता में श्रीकांत वर्मा किस प्रकार नयी चेतना का विकास करते हैं। यह इकाई सातवें दशक की कविता के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ श्रीकांत वर्मा और आधुनिकतावादी काव्य मुहावरों से भी परिचित करायेगी।

5.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा

सातवें दशक की कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनीतिक जीवन के पाखण्ड, स्वार्थपरता, अंतर्विरोध, हताशा और विद्रूपता को बहुत ही नंगी और बेलौस भाषा में उजागर किया; इस कविता को 'मोहभंग की कविता' मात्र कहना उचित नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता-प्राप्ति से मोह तो नई कविता के कवियों को हुआ था इसलिए बदली हुई परिस्थितियों में यथार्थ के साक्षात्कार से मोहभंग उन्हीं का हुआ है। नये कवि न स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा लिये थे, न उसके आदर्शों से प्रभावित थे और न उससे उम्मीद ही लगाए थे। उन्होंने तो स्वाधीन भारत के भ्रष्ट और हताशाग्रस्त वातावरण में ही आंखे खोली थीं, इसलिये वे केवल विद्रोही थे, अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ के प्रति आक्रोश और अस्वीकार का भाव रखने वाले थे । डॉ0 नामवर सिंह ने आलोचना के मार्च 1968 के अंक में युवालेखन पर बहस का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए इसकी ताईद की और इस तरह मोहभंग की कविता की जगह 'युवा कविता' शब्द प्रचलन में आया। इन युवा कवियों ने राजनीति, राजनीतिक दल, विचार-भाव और जनता से नए ढंग का सम्बंध स्थापित किया और राजनीतिक कविता लिखते हुए भी अपनी सृजनात्मक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की कोशिश की, बल्कि उसी के बल पर उन्होंने प्रगतिशील राजनीतिक कवियों से अलग एक नई किस्म के राजनीतिक कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई।

मोहभंग की प्रक्रिया सबसे अधिक तीखे रूप में सबसे पहले श्रीकांत वर्मा में दिखलाई पड़ी- 'मायादर्पण' संग्रह (1957) में। यह संग्रह उनके पहले काव्य संग्रह 'भटका मेघ' (1957' के ठीक दस साल बाद प्रकाशित हुआ, जिसमें वे बिल्कुल बदले हुए रूप में सामने आए।

'मायादर्पण' में श्रीकांत वर्मा ने घोषणा की कि.... ''सारे संसार में सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं/क्या मैं भी दिन गिनूँ ?/अपने निरानन्द में/रेंक और भाग और लीद रहे गधे से/मैं पूछकर/आगे बढ़ जाता हूँ/मगर ख़बरदार! मुझे कवि मत कहो।/मैं बकता नही हूँ कविताएँ/इज़ाद करता हूँ /गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/ मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ/मैं थकता नहीं हूँ /कोसते।'' श्रीकांत वर्मा ने कविता का विषय बनाया, चारों ओर से मूल्यहीन और क्रूरतापूर्ण संसार को, जिसमें जीने के लिए वे विवश थे। उन्होंने इस परिस्थिति को 'मृत्यु' नाम दिया और 'अवसाद' को अपनी कविता का स्थायी भाव बनाया। यही वह समय था, जबकि राजनीति में लोहिया की लोकप्रियता बढ़ी थी और वे अपने गैर-कांग्रेसवाद के नारे को युवा लेखकों में 'व्यवस्था का विरोध' के नारे में तब्दील कराने में सफल हुए थे। यह मोहभंग की प्रक्रिया को चरम तक पहुँचना ही था, जिसमें सारा जोर इस बात पर था कि यथास्थितिवाद टूटे और स्थिति बेहतर हो। मलयज ने लिखा है कि ''नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र-असंतोष, घेराव और दल-बदल में आम आदमी की ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झण्डा पार्टी-सिद्धांतों के चिथड़े को मिलाकर बनाया गया हो, वहाँ मोहभंग की गुंजाइश रह ही नहीं जाती। आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से शुरू होती है।'' श्रीकांत वर्मा की कविताएँ बुनियादी तौर पर इसी कटुस्थितियों-परिस्थितियों की सच्चाई की साक्षात्कार की कविताएँ हैं। उनके प्रारंभिक काव्य संग्रहों-भटका मेघ, मायादर्पण, दिनारंभ, जलसाघर में आत्मरति और आत्मश्लाधा भाव की प्रधानता है, भीड़ से नफरत और घृणा का भाव है। इन संग्रहों में यौन विकृतियों की बजबजाहट भी कम नहीं- जैसे 'स्त्रियाँ जो प्रेमिका नहीं थीं न वेश्याएँ/बिस्तर पर/छाप की तरह/दूसरे सबेरे धूल जाती हैं।' या 'जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझा कर'- यह सब इस बात का लक्षण है कि इन रचनाओं में ऊब, अनिर्णयात्मकता, आक्रामकता, विडम्बना, यौन-विकृति- यह सब आधुनिकतावाद का प्रतिफलन है, लेकिन 'मगध' संग्रह की कविताओं में शांति है, ठहराव है, सोच है, रास्ते की खोज है और ऐतिहासिक अतीत को वर्तमान की असंगति से जोड़ने का प्रयास भी है। यह प्रयास 'जलसाघर' कविता में भी है:

''बार-बार पैदा होती है आशंका, बार-बार मरता है

वंश।

क्या मैं इसी प्रकार, बिल्कुल बेलाग, यहाँ से

गुज़र जाऊँ ?

हे ईश्वर! मुझको क्षमा करना, निर्णय

कल लूँगा, जब

निर्णय हो चुका होगा"

श्रीकान्त वर्मा जिस भटकाव और अस्तित्ववादी अवसाद के दौर में कविता करते हैं, उसमें 'इसके बाद कुछ भी कहना बेकार है।' कोई भी जगह नहीं रही/रहने के लायक/न मैं आत्महत्या कर कर सकता हूँ/न औरों का/खून! न मैं तुमको जख्मी/कर सकता हूँ /न तुम मुझे/निरस्त्र।/तुम जाओ अपने बहिश्त में/मैं जाता हूँ/अपने जहन्नुम में। यहाँ समय-समाज की चुनौतियों से उपजी बौद्धिक चिन्ताओं का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम हुआ है। ये कविताएँ अपनी काव्य संवेदना में इतनी धारदार, निर्भय और व्यापक हैं कि उसमें न केवल राजनीतिक-आर्थिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्यवक्रोक्तियाँ, खीझ-आक्रोश-गुस्सा-विद्रोह की मुद्राएँ हैं- वरन् मानवीय सार्थकता के सारे सरोकार सक्रिय हो उठे हैं। ऐसे में लोकतंत्र में विश्वास कायम रखना मुश्किल है। श्रीकांत वर्मा ने इसे सहज ढग से अभिव्यक्त किया:-

''कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर

फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)

कुछ लोग सारा समय

कसमें खायेंगे लोकतंत्र की

मुझसे नहीं होगा

जो मुझसे नहीं हुआ

वह मेरा संसार नहीं है।"

19.3.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता

श्रीकांत वर्मा स्वातंत्रयोत्तर भारत में व्याप्त भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करने वाले अत्यंत सजग कवि हैं। वे मूल्य दृष्टि के विरोध से कविता शुरू करते हैं और विरोध में ही समाप्त भी। उनकी कविताओं पर युद्ध की खौफनाक छाया मँडराती हुई सी है और अमानवीय बर्बरता का तीव्र विरोध सहज देखा जा सकता है। यह अचानक नहीं है कि उनकी कविताओं में इतिहास के प्रसिद्ध युद्ध-नायक किसी न किसी रूप में आते हैं। युद्ध और शांति, अन्याय और न्याय, बर्बरता और जिजीविषा का द्वन्द्व उनकी पूरी कविताओं में व्याप्त है। अनास्था, घुटन, संत्रास, उदासी और टूटते हुए जीवन के बीच प्रतिरोधी शक्तियों से जूझने की, यथास्थिति को तोड़ने की शक्ति वाली कविताओं के लिए भाषा का सजग उपयोग जरूरी है। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में बगल से गोली का दनाक से गुजरना, कहीं बेंत का पड़ना, घोड़ों का हिनहिनाना, हत्यारों का मूछों पर ताव देना, सहसा बम फटना- यह सब अनायास नहीं है। यह सब उनके समय का सच है। कृत्रिमता और परम्परागत जड़ता का प्रतिरोध के लिए श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में बेलौस वक्तव्य देते हैं:-

हे ईश्वर! सहा नहीं जाता मुझसे अब
औरों की सुविधा से
जीने का ढंग।

× × ×

हे ईश्वर! मुझसे बरदाश्त नहीं होगा
यह मनीप्लाण्ट।
सहन नहीं होगा
यह गमले का कैक्टस
पिकनिक के। चुटकुले
आफ़िस का ब्यौरा
और
देशभक्त कवियों की
कविताएँ।
(क्षमा करें महिलाएँ)

मैं अपने कमरे में खड़ा हूँ नग्न- 'जलसाघर' की कविताओं में क्रमशः गोली का दनाक से चलना और घोड़े का बार-बार आना और विजेता, चेकोस्लोवाकिया, ढाका बेतार केन्द्र, युद्ध नायक, बाबर और समरकंद- जैसी कविता में बर्बरता, छीना-झपटी, लूट-खसोट, अन्याय -अत्याचार, दमन-शोषण व हत्या-फरेब से भरी होना उनकी सजग राजनीतिक चेतना का परिणाम और प्रमाण है। यहाँ 'साध्वियाँ चली आ रही हैं, हया और बेशर्मी/फली और फूली/ किसको दूँ अपना बयान ? हलफ़नामा/उठाऊँ/किसके सामने ? कोई है ? या केवल/बियाबान है ? मेरे पास कहने के लिये/केवल दो शब्द हैं/'लौट जाओ।' यूरोप/बड़बड़ा रहा है बुखार में/अमेरिका/पूरी तरह भटक चुका है, अंधकार में/एशिया पर/बोझ है गोरे इन्सान का/संभव नहीं है/कविता में यह सब कर पाना'- ये ऐसी कविताएँ हैं जो इजलास के सामने हलफ़नामा उठाने को तैयार हैं, पर उनके लिए न्यायालय बंद हो चुके हैं। उनकी कविताओं में 'विलाप', 'संताप', 'चीख' जैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग करूणा सृजित करता है। गरज यह है कि श्रीकांत वर्मा की कविताओं में करूणा के चित्र भयानक और नाटकीय लगने वाले काव्य संसार को मानवीय संदर्भ देकर पाठक की संवेदना का विस्तार करते हैं। उनकी कविताएँ केवल भाषा की शक्ति को

ही नहीं बढ़ाती बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी करती हैं। उनके यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं :-

‘‘हमारा क्या दोष?

न हम सभा बुलाते हैं

न फैसला सुनाते हैं

वर्ष में एक बार

काशी आते हैं-

सिर्फ यह कहने के लिए

कि सभा बुलाने की भी आवश्यकता नहीं

हर व्यक्ति का फैसला

जन्म से पहले हो चुका है।’’

भाषिक-प्रक्रिया और काव्य-प्रक्रिया दोनों की सृजनात्मकता स्वयं श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक खास काव्य-टोन पैदा करती है।

‘मगध’ में मगध, काशी, कोसांबी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल, अशोक, शकटार, अजातशत्रु, वसंतसेना, आम्रपाली इत्यादि का जादुई स्मरण है, साथ ही मायालोक भी है। यहाँ प्रधानता आत्ममंथन का है। व्यंग्य, वक्रोक्ति व विडम्बना को श्रीकांत वर्मा आक्रामकता प्रदान नहीं करते हैं। क्रांति का हुहुआता माहौल नहीं बनाते हैं। यहाँ अतीतकालीन इतिहास के बड़े-बड़े नाम हैं लेकिन वे केवल बहाना मात्र हैं। सच है केवल त्रासदियों और मनोवृत्तियों को समूचे संदर्भ के साथ खोल देने की रचनात्मक छटपटाहट-

‘‘बन्धुओं

यह वह मगध नहीं

तुमने जिसे पढ़ा है

किताबों में

यह वह मगध है

जिसे तुम

मेरी तरह गवाँ

चुके हो।"

यहाँ महत्त्वपूर्ण है बातचीत और सम्बोधन का लहजा। ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों का श्रीकांत वर्मा ने सार्थक उपयोग किया है। यहाँ इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आये हैं। इस रचनात्मक उपलब्धि को 'मगध' में इस प्रकार व्यक्त किया है:-

'केवल अशोक लौट रहा है

और सब

कलिंग का पता पूछ रहे हैं

केवल अशोक सिर झुकाए है

और सब विजेता की तरह चल रहे हैं।'

5.3.2 श्रीकांत वर्मा: नयी काव्यभाषा की तलाश

श्रीकांत वर्मा की परवर्ती कविताओं में पश्चिमी आधुनिकतावादी चिंतन और संवेदना का प्रभाव अधिक है। वे 'सिनिसिज्म' के विचार को मुक्ति के तलाश के विचार में बदलने का प्रयास करते हैं तथा सामाजिक संगठन और कौशल से प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता की भी तलाश करना चाहते हैं। इसलिये अपने दौर की भावधारा के अनुरूप ही श्रीकांत वर्मा नई कविता की भाषा को नष्ट कर अपने लिए एक 'निर्वसन' भाषा गढ़ते हैं और ऐसे शिल्प की खोज करते हैं, जिसमें कविता भीतर से जुड़ी होने पर भी ऊपर से खंडित दिखलाई पड़ती थी और जिसमें तुकों के साथ क्रीड़ा करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है- ''कोई मेरे बिस्तरे पर/आकर/सो गया है/कोई मेरा बोझ/अपने/कन्धे पर/ढो रहा है/मैं जंगलों के साथ/सुगबुगाना चाहता हूँ /और/शहरों के साथ/चिलचिलाना/चाहता हूँ।" श्रीकांत वर्मा ने अन्त्यानुप्रयास के खिलवाड़ के संयोजन से अर्थचमत्कार एवं कविता की संरचना में विशेष कसावट का निर्माण किया है। यह विशेषता यहाँ केवल शिल्प या संरचना का अंग नहीं है, वह उनके दृष्टिकोण को भी सूचित करती है। कथ्य की अर्थगंभीरता के अभाव में तुकों का खिलवाड़ निरा खिलवाड़ रह जाता जबकि यहाँ वह अर्थक्षमता में वृद्धि करता है-

मैं हरेक नदी के साथ

सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड़

ढो रहा हूँ

मैं सुखी

हो रहा हूँ

मैं दुःखी

हो रहा हूँ

मैं सुखी-दुःखी होकर

दुःखी-सुखी

हो रहा हूँ

मैं न जाने किस कन्दरा में

जाकर चिल्लाता हूँ: मैं

हो रहा हूँ: मैं

हो रहा हूँ-

आरंभ का शब्द-कौतुक यहाँ अन्त तक आते-आते सर्वथा गंभीर अर्थव्यंजना ग्रहण कर लेता है। यही श्रीकांत वर्मा की कविताओं का अर्थगौरव है। 'मगर खबरदार/मुझे कवि मत कहो। मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ/ईजाद करता हूँ गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ'- ऐसी काव्य पंक्तियों की अतिनाटकीयता किसी अर्थ में उनकी कविता की सीमा भी कही जा सकती है।

श्रीकांत वर्मा शब्दों से कम संकेतों से अधिक कविता बनाते हैं। उनकी कविताओं में सहायक क्रियाओं का प्रयोग नहीं के बराबर है। उनकी काव्य पंक्तियाँ भागती हुई-सी लगती हैं- अ-प-ने/आप/से-मैंने/उसे/मा-रा/स-ड़-क/के/कि-ना-रे/बैठी/बूढ़ी/औ-र-त/क-ह-ती/है। 'हत्यारा' या 'विजेता' जैसी कविताओं में एक शब्द से दूसरा शब्द निकलता है, एक वाक्य से दूसरा वाक्य निकलता है, एक चित्र से दूसरा चित्र निकलता है। शब्द चित्रों की यह क्रमागतता ऐसी है मानो कवि आज की वास्तविकता का जल्दी से जल्दी बयान कर डालना चाहता है क्योंकि दुनिया भर की वास्तविकताएँ एक दूसरे से गड्डमड्ड होने को हैं।

श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में स्वप्न संसार जैसा रचते हैं खासकर 'मायादर्पण' और 'जलसाघर' की कविताओं में, जहाँ बहुत सारे असम्बद्ध चित्र अचानक जुड़ने लगते हैं। शायद कवि अपने चारों ओर की अव्यवस्था को सम्पूर्णता में व्यक्त करना चाहता है-

''मैं और तुम। अपनी दिनचर्या के

पृष्ठ पर

अंकित थे

एक संयुक्ताक्षर।”

या ‘धो-धो जाता है/कौन/बार-बार आसूँ से कीचड़ में लथपथ/इस/पृथ्वी के पाँव ?/नदियों पर झुका हुआ काँपता है कौनः कवि अथवा सन्निपात ? ’- यह चित्रात्मकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। वे देखे हुए चित्रों को कभी व्यंग्यपूर्ण, कभी विडम्बनापूर्ण और कभी नाटकीय बनाकर रखते चलते हैं। कहीं-कहीं तुकबाजी भी खूब करते हैं- सुन पड़ती है टाप/-झेल रहा हूँ थाप/कहुए पर बैठा है नीला आकाश-। इतने बड़े बोझ के नीचे भी/दबी नहीं, छोटी-सी घास। मैं एक भागता हुआ दिन हूँ और रूकती हुई रात-/मैं नहीं जानता हूँ /मैं ढूँढ़ रहा हूँ अपनी शाम या ढूँढ रहा हूँ अपना प्रात।- ऐसी कविताएँ ‘दिनारम्भ‘ संग्रह में खूब हैं। यहाँ प्रायः छोटी कविताएँ हैं। इनमें तीव्र वैचारिक सघनता है लेकिन इनके छोटे-छोटे बिम्ब एक व्यापक अनुभव जगत को समेटने और खोलने वाले हैं। श्रीकांत वर्मा की छोटी कविताओं में जो ऐन्द्रिकता और चित्रात्मकता मिलती है, वह उनके पाठकों को राहत देती है। ऐसे पाठकों को, जो उनकी लम्बी कविताओं के आतंक और नरक से गुज़र रहे होते हैं।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं के क्रमिक विकासक्रम में यह देखना दिलचस्प है कि उनकी प्रारंभिक कविताओं में ग्राम्य परिवेश के प्रति गहरा लगाव है। नदी, घाट, टीला, खँडहर, चिड़िया, आकाश, बादल, खेत, गुलाब, टेसू, बट, पीपल, सावन, पुरवाई, आषाढ़ी सन्ध्या, फागुनी, हवा, उदास लहर, झाड़ी-झुरमुट, बेल-काँटा, उजली-गोरी-चाँदनी इत्यादि ग्राम्य प्रकृति के अनेक ताजा चित्र इन कविताओं में मौजूद हैं। बाँसों का झुरमुट, तुलसी का चौरा, सरसों का खेत, महुए के फूल, पोखर का जल, मेड़ों पर बैठे पंथी, गायों की खड़पड़, सूखी-दरकी धरती, उजड़ी खपरैलें जैसी ग्रामीण शब्दावली का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है, लेकिन परवर्ती संग्रह की कविताओं में जो आत्मीयता, कोमलता, लोक-सम्पृक्ति और एक खास हद तक जो रोमानी अन्दाज दिखायी पड़ता है, वह एकदम नया है। पहले संग्रह में जो ग्राम्य और कस्बाई परिवेश था, वह बाद के संग्रहों में महानगरीय हो गया है- अत्यंत जटिल, व्यापक, क्रूर और निर्मम। यहाँ वर्तमान अमानवीय भयावहता का पूरा ग्लोब घूमने लगता है- वियतनाम, चेकोस्लोबाकिया, क्रेमलिन, अमेरिका, हिरोशिमा, पेरिस, यूनान, ढाका तथा समरकंद के साथ-साथ लेनिन, स्टालिन, बेरिया, लिंकन, क्लाडइथरली, गोडसे, अशोक इत्यादि न जाने कितने नामी-बदनामी इतिहास पुरूष अभिनय करते से दिखते हैं। इन कविताओं का मुख्य स्वर गुस्सा, विद्रोह, घृणा, क्षोभ, छटपटाहट के साथ-साथ निर्मम प्रहार का है।

5.3.3 श्रीकांत वर्मा: जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म 18 सितम्बर 1931 विलासपुर (छत्तीसगढ़), प्रारंभिक शिक्षा विलासपुर से। 1956 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम0ए0। शिक्षक और पत्रकार रूप में जीवन का

प्रारंभ। भारतीय श्रमिक (1956-58), कृति (1958-61), दिनमान (1964-77) तथा वर्णिका (1985) जैसे पत्रों से सम्बद्ध। यूरोप के विश्वविद्यालयों की यात्रा। अयोबा विश्वविद्यालय के इन्टरनेशनल राइटिंग प्रोग्राम में 1970-71 तथा 78 में अतिथि कवि के रूप में सम्बद्ध। 1957 में भटका मेघ, 1967 में मायादर्पण, 1967 में दिनारंभ, 1973 में जलसाघर, 1964 में 'मगध' कविता संग्रहों का प्रकाशन। झाड़ी (1964) संवाद (1969) कहानी संग्रह का प्रकाशन। दूसरी बार (1968) उपन्यास का प्रकाशन। 'जिरह' नाम से 1973 में आलोचनाकृति। अपोलो का रथ (1975) यात्रावृतांत। आन्द्रेई वोज्नेसेंस्की की कविताओं का अनुवाद 'फैसले का दिन' (1970) नाम से तथा 'बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में' (1982) में साक्षात्कार व वार्तालाप का प्रकाशन। 1973 में उन्हें मध्यप्रदेश सरकार ने 'उत्सव 73' के अन्तर्गत सम्मानित किया। 1977 में ही तुलसी पुरस्कार (मध्यप्रदेश)। 1987 में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सम्मान। 1980 में मध्यप्रदेश सरकार का शिखर सम्मान। 1984 में कविता केरल का 'कुमारआशान' राष्ट्रीय पुरस्कार। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ युवा परिषद् का राष्ट्रीय पुरस्कार तथा दिल्ली सरकार का साहित्य-कला परिषद् पुरस्कार और इंदिरा-प्रियदर्शिनी पुरस्कार। 21 मई 1986 को गले के कैंसर से अमेरिका में मृत्यु।

5.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना

5.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ

1. माया-दर्पण

देर से उठकर

छत पर सर धोती

खड़ी हुई है

देखते-ही-देखते

बड़ी हुई है

मेरी प्रतिभा

लड़ते-झगड़ते

मैं आ पहुँचा हूँ

उखड़ते-उखड़ते

भी
मैंने
रोप ही दिये पैर
बैर
मुझे लेना था
पता नहीं
कब क्या लिखा था
क्या देना था।
अपना एकमात्र इस्तेमाल यही किया था-
एक सुई की तरह
अपने को
अपने परिवार से निकालकर
तुम्हारे जीर्ण जीवन को सिया था।
(दोनों हाथों में सँभाल
अपने होठों से
छुलाकर)
बहते हुए पानी में झुलाकर
अपने पाँव
मैं अनुभव कर रहा हूँ सबकुछ
बस छूकर
चला जाता है
छला जाता है
आकाश भी

सूर्य से

जो दूसरे दिन

आता नहीं है

कोई और सूर्य भेज देता है।

विजेता है

कौन

और

किसकी पराजय है-

सारा संसार अपने कामों में

फँसाये अपनी उँगलियाँ

उधेड़बुन करता है।

डरता है

मुझसे

मेरा पड़ोस।

मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ।

नहीं, एक रोज़नामचा हूँ

मुझमें मेरे अपराध

हू-ब-हू कविताओं-से

दर्ज हैं।

मर्ज़ हैं

जितने

उनसे ज्यादा इलाज हैं।

मेरे पास हैं कुछ कुत्ता-दिनों की

छायाएँ

और बिल्ली-रातों के

अन्दाज हैं।

मैं इन दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मैं अपने दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मेरे लिए तुमसे भी बड़ा

यह सवाल है।

यह एक चाल है,

मैं हरेक के साथ

शतरंज खेल रहा हूँ

मैं अपने ऊलजलूल

एकान्त में

सारी पृथ्वी को बेल रहा हूँ।

मैं हरेक नदी के साथ

सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड़

ढो रहा हूँ।

मैं सुखी

हो रहा हूँ

मैं दुखी

हो रहा हूँ

मैं सुखी-दुखी होकर

दुखी-सुखी

हो रहा हूँ

मैं न जाने किस कन्दरा में

जाकर चिल्लाता हूँ: मैं

हो रहा हूँ। मैं

हो रहा हूँ

अनुगूंज नहीं जाती!

लपलपाती

मेरे पीछे

चली आ रही है

चली आये।

मुझे अभी कई लड़कियों से

करना है प्रेम

मुझे अभी कई कुण्डों में

करना है स्नान

अभी कई तहख़ानों की

करनी है सैर

मेरा सारा शरीर सूख चुका

मगर साबित है

पैर!

मैं अपना अन्धकार, अपना सारा अन्धकार

गन्दे कपड़ों की

एक गठरी की तरह

फेंक सकता हूँ।

मैं अपनी मार खायी हुई

पीठ

सेंक सकता हूँ

धूप में

बेटियाँ और बहुएँ

सूप में

अपनी-अपनी

आयु के

दाने

बिन

रही

हैं।

सारे संसार की सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं।

क्या मैं भी दिन गिनूँ ?

अपने निरानन्द में

रेंक और भाग और लीद रहे गधे से

मैं पूछकर

आगे बढ़ जाता हूँ

मगर ख़बरदार ! मुझे कवि मत कहो

मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ

ईज़ाद करता हूँ

गाली

फिर उसे बुदबुदाता हूँ।

मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ।

मैं थकता नहीं हूँ

कोसने।

सरदी में अपनी सन्तान को

केवल अपनी

हिम्मत की रजाई में लपेटकर

पोसते

ग़रीबों के मुहल्ले से निकलकर

मैं

एक बन्द नगर के दरबाजे पर

खड़ा हूँ।

मैं कई साल से

पता नहीं अपनी या किसकी

शर्म में

गड़ा हूँ !

तुमने मेरी शर्म नहीं देखी !

मैं मात कर

सकता हूँ

महिलाओं को।

मैं जानता हूँ

सारी दुनिया के

बनबिलावों को

हमेशा से जो बैठे हैं

ताक में

काफ़ी दिनों से मैं

अनुभव करता हूँ तकलीफ़

अपनी

नाक में।

मुझे पैदा होना था अमीर घराने में।

अमीर घराने में

पैदा होने की यह आकांक्षा

सास-साथ

बड़ी होती है।

हरेक मोड़ पर

प्रेमिका की तरह

मृत्यु

खड़ी होती है।

शरीरान्त के पहले मैं सबकुछ निचोड़कर उसको दे जाऊँगा जो भी मुझे मिलेगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता; मेरे न होने से कुछ भी नहीं हिलेगा। मेरे पास कुरसी भी नहीं जो खाली हो। मनुष्य वकील हो, नेता हो, सन्त हो, मवाली हो-किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता।

नाटक की समाप्ति पर

आँसू मत बहाओ।

रेल की खिड़की से

हाथ मत हिलाओ। ('माया दर्पण' संग्रह से)

2. हस्तिनापुर का रिवाज़

मैं फिर कहता हूँ

धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--

मगर मेरी

कोई नहीं सुनता!

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं--

जो सुनते हैं

बहरे हैं या

अनसुनी करने के लिए

नियुक्त किये गये हैं

मैं फिर कहता हूँ

धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--

मगर मेरी

कोई नहीं सुनता

तब सुनो या मत सुनो

हस्तिनापुर के निवासियों! होशियार !

हस्तिनापुर में

तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार--

और याद रखो

आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,

विचार। ('मगध' संग्रह से)

3. मणिकर्णिका का डोम

डोम मणिकर्णिका से अक्सर कहता है,

दुःखी मत होओ

मणिकर्णिका,

दुःख तुम्हें शोभा नहीं देता

ऐसे भी श्मशान हैं

जहाँ एक भी शव नहीं आता

आता भी है,

तो गंगा में

नहलाया नहीं जाता

डोम इसके सिवा कह भी

क्या सकता है,

एक अकेला

डोम ही तो है

मणिकर्णिका में अकेले

रह सकता है

दुःखी मत होओ, मणिकर्णिका,

दुःख मणिकर्णिका के

विधान में नही

दुःख उनके माथे है

जो पहुँचाने आते हैं,

दुःख उनके माथे था

जिसे वे छोड़ चले जाते हैं

भाग्यशाली हैं, वे

जो लदकर या लादकर

काशी आते हैं

दुःख

मणिकर्णिका को सौंप जाते हैं

दुःखी मत होओ

मणिकर्णिका,

दुःख हमें शोभा नहीं देता

ऐसे भी डोम हैं,

शव की बाट जोहते

पथरा जाती हैं जिनकी आँखें,

शव नहीं आता--

ठसके सिवा डोम कह भी क्या सकता है! ('मगध' संग्रह से)

4. हस्तक्षेप

कोई छींकता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की शान्ति

भंग न हो जाय,

मगध को बनाये रखना है, तो,

मगध में शान्ति

रहनी ही चाहिए

मगध है, तो शान्ति है

कोई चीखता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की व्यवस्था से

दखल न पड़ जाय

मगध से व्यवस्था रहनी ही चाहिए

मगध में न रही

तो कहाँ रहेगी ?

क्या कहेंगे लोग ?

लोगों का क्या ?

लोग तो यह भी कहते हैं,

मगध अब कहने को मगध है,

रहने को नहीं

कोई टोंकता तक नहीं

इस डर से

कि मगध में

टोकने का रिवाज़ न बन जाय

एक बार शुरू होने पर

कहीं नहीं रूकना हस्तक्षेप--

वैसे तो मगधनिवासियो

कितना भी कतराओ

तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से--

जब कोई नहीं करता

तब नगर के बीच से गुज़रता हुआ

मुर्दा

यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है--

मनुष्य क्यों मरता है ? ('मगध' संग्रह से)

5. तीसरा रास्ता

मगध में शोर है कि मगध में शासक नहीं रहे

जो थे

वे मदिरा, प्रमाद और आलस्य के कारण

इस लायक

नहीं रहे

कि उन्हें हम

मगध का शासक कह सकें

लगभग यही शोर है

अवन्ती में

यही कोसल में

यही

विदर्भ में

कि शासक नहीं

रहे

जो थे

उन्हें मदिरा, प्रमाद और आलस्य ने

इस

लायक नहीं

रखा

कि उन्हें हम अपना शासक कह सकें

तब हम क्या करें ?

शासक नहीं होंगे

तो कानून नहीं होगा

कानून नहीं होगा

तो व्यवस्था नहीं होगी

व्यवस्था नहीं होगी

तो धर्म नहीं होगा

धर्म नहीं होगा

तो समाज नहीं होगा

समाज नहीं होगा

तो व्यक्ति नहीं होगा

व्यक्ति नहीं होगा

तो हम नहीं होंगे

हम क्या करें ?

कानून को तोड़ दें ?

धर्म को छोड़ दें ?

व्यवस्था को भंग करें ?

मित्रो-

दो ही

रास्ते हैं:

दुर्नीति पर चलें
नीति पर बहस
बनाये रखें
दुराचरण करें
सदाचार की
चर्चा चलाये रखें
असत्य कहें,
असत्य करें
असत्य जिएं--
सत्य के लिए
मर-मिटने की आन नहीं छोड़ें
अन्त में,
प्राण तो
सभी छोड़ते हैं
व्यर्थ के लिए
हम
प्राण नहीं छोड़ें
मित्रों-
तीसरा रास्ता भी
है--
मगर वह
मगध
अवन्ती

कोसल

या

विदर्भ

होकर नहीं

जाता। ('मगध' संग्रह से)

5.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना

श्रीकांत वर्मा की कविता में समकालीन भारतीय समाज की तीखी चेतना अभिव्यक्त हुई है। उनकी काव्यात्मक यात्रा के अवलोकन से यह सहज स्पष्ट हो जाता है कि कवि में आद्यन्त अपने परिवेश और उस परिवेश में फँसे अभिशप्त मनुष्य के प्रति गहरा लगाव है। उसके आत्मगौरव और सुरक्षित भविष्य के लिये कवि अपनी कविताओं में लगातार चिंतित है। ये कविताएँ सहज ग्राम्य परिवेश से शुरू होकर महानगरीय बोध का प्रक्षेपण करने लगती हैं या यह कहना अधिक सही है कि शहरीकृत अमानवीयता के खिलाफ एक संवेदनात्मक बयान में बदल जाती हैं। इस संवेदनात्मक बयान की परिधि इतनी विस्तृत है कि उसके दायरे में शोषित-उत्पीड़ित और बर्बरता के आतंक में जीती पूरी-की-पूरी दुनिया सिमट आती है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में आत्मरति और आत्मश्लाघा भाव की प्रधानता है। अनिर्णयात्मकता है, व्यर्थताबोध है। यहाँ अनिर्दिष्ट भविष्य धुँधला-धुँधला सा है; खासकर 'मायादर्पण' और 'जलसाघर' में। इन प्रारंभिक कविताओं से अभिव्यक्त होता हुआ यथार्थ हमें अनेक स्तरों पर प्रभावित करता है लेकिन अंतिम संग्रह 'मगध' तक पहुँचकर वर्तमान शासकवर्ग के त्रास और उसके तमाच्छन्न भविष्य को भी रेखांकित कर जाता है।

उनकी कविताओं का मुख्य मुद्दा है- 'सवाल यह है कि तुम कहाँ जा रहे हो ?', 'अश्वारोही, यह रास्ता किधर जाता है ?' कपिलवस्तु और नालन्दा कोई नहीं जाता। यहाँ कपिलवस्तु और नालन्दा अहिंसा और लोकतंत्र का प्रतीक हैं। रास्ते के अभाव में लोग भटकते रहते हैं, इतना अवश्य है कि उसे मालूम है- 'कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/केसल में विचारों की कमी हैं।' वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का एक ही शत्रु हैं- वह है विचार।

''हस्तिनापुर के निवासियों ! होशियार !

हस्तिनापुर में

तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार-

और याद रखो

आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,

विचार।"

यहाँ विचार की बात है किंतु विचार की काई रूपरेखा नहीं है। वह एक तीसरे रास्ते की ओर संकेत करता है कि वह यहाँ नहीं जाता, वहाँ नहीं जाता, फिर प्रश्न होता है कि वह कहाँ जाता है ? ये कविताएँ सावधान करती हैं कि-

''मित्रो

यह कहने का कोई मतलब नहीं

कि मैं समय के साथ चल रहा हूँ।

यहाँ असल सवाल यह है/इसके बाद कहाँ जाओगे ?"

यह प्रश्नवाचकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। यह प्रश्नवाचकता विसंगत स्थितियों को, अतार्किक स्थितियों को सम्पूर्ण तनाव के साथ गंभीर परिणति तक लाता है। इन कविताओं में नकारात्मक संयोजन, विसंगतियों, अतीत और भविष्य का निषेध उस समय की राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विडम्बनाओं की त्वरित प्रतिक्रियाएँ हैं :- मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ/ नहीं एक रोजनामचा हूँ/मुझ में मेरे अपराध/हू-ब-हू कविताओं से/दर्ज हैं/मर्ज हैं/जितने/उनसे/ज्यादा इलाज हैं। इस अर्थगंभीरता के अभाव का कारण विसंगत यथार्थ और मूल्य विघटित समय है, लेकिन ऐसी कविताएँ निश्चय ही तत्कालीन युद्ध की चापलूसी भरी अतिरंजनाओं और खोखली चुनौतियों वाली कविताओं से ज्यादा समझदार और गहरी हैं। श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं के लिए तंत्र और सेक्स के बजाय राजनीति से भाषा और संवेदन-प्रमेय उठाने की कोशिश की।

न्यायालय बन्द हो चुके हैं, अर्जिया हवाँ में

उड़ रही हैं

कोई अपील नहीं

कोई कानून नहीं,

कुहरे में डूब गयी हैं प्रत्याशाएँ

धूल में पड़े हैं

कुछ शब्द।

जनता थककर सो गयी है।

ये कविताएँ न्याय-अन्याय तथा व्यवस्था-अव्यवस्था के द्वन्द्व में अपना स्वरूप ग्रहण करती है-

फैसला हमने नहीं लिया-

सिर हिलाने का मतलब फैसला लेना नहीं होता

हमने तो सोच विचार तक नहीं किया।

बहसियों ने बहस की

हमने क्या किया ? जिस समय-समाज में हम जी रहे हैं वह समय सुनने और न सुनने के साथ-साथ सुनकर भी अनसुना करने का समय है, व्यवस्था अनसुना करने और असल सवालों से हटाने के लिए सारे प्रयत्न करती है, तरह-तरह के हथकण्डे अपनाती है और चालाकी को रिवाज में तब्दील करने की पूरी कोशिश करती है-

''कोई नहीं सुनता

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं-

जो सुनते हैं

बहरे हैं या

अनसुनी करने के लिए

नियुक्त किये गये हैं।''

यह व्यवस्था, लोकतंत्र, विकास और लोक कल्याण के नाम पर जनता को गुमराह करती है जबकि असलियत यह है कि नागरिक/कोसल के अतीत पर/पुलकित होते हैं/जो पुलकित नहीं होते/उँघते हैं। इसलिये- ''कोसल मेरी कल्पना में गणराज्य है, क्योंकि 'कोसल सिर्फ कल्पना में गणराज्य है।' 'कल्पना का यह गणराज्य' क्या गणराज्य है ? चारों तरफ 'जड़ता' और 'चुप्पी' क्यों व्याप्त है ? 'मगध' की कविताओं में 'चुप क्यों हो ?' की आवृति बार-बार होती है- चुप क्यों हो, मित्रों ?/क्या हुआ ?/चुप क्यों हो?/कभी कभी/मगध में न जाने क्या हो जाता है/सब कुछ सामान्य होने के बावजूद/न कोई बोलता है/न मुँह खोलता है/सिर्फ शकटार/जड़ को छू/पेड़ की कल्पना करता है/सोचकर सिहरता है/मित्रों/जो सोचेगा/सिहरेगा। सिहरना, 'डर', 'संशय' और असमंजय का प्रतीक है। व्यवस्था डर, संशय और असमंजस को कायम रखना और मजबूत बनाना चाहती है। श्रीकांत वर्मा इस यथास्थितिवाद और सिहरन के खिलाफ 'हस्तक्षेप' की बात करते हैं, 'तीसरे रास्ते' की तलाश करते हैं- तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से-। जब कोई नहीं करता/तब नगर के बीच से गुजरता हुआ/मुर्दा/यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है-/मनुष्य क्यों मरता है ? यह कविता बहुत खलल पैदा करने वाली, डिस्टर्ब करने वाली कविता है। भले ही कोई टोकता तक नहीं/इस डर से/कि मगध में/टोंकने का रिवाज़ न बन जाये। हस्तक्षेप का यह

'प्रश्न'- मगध की शांति को भंग कर ही देता है। मगध के शासक मदिरा, प्रमाद और आलस्य में आकण्ठ डूबे हैं, यहाँ न कोई विकल्प है, न विकल्प की संभावना है। क्या कानून को तोड़ दिया जाय ? धर्म को छोड़ दिया जाय ? व्यवस्था को भंग कर दिया जाय ? दुर्नीति पर चलने और नीति पर बहस बनाये रखने, दुराचरण करने और सदाचरण की चर्चा चलाये रखने वाले समय में तीसरा रास्ता भी है- मगर वह/मगध/अवन्ती/कोसल/या/विदर्भ/होकर नहीं/जाता। श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में व्यवस्था के इसी सड़ांध को खोलकर रख देते हैं, पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं तथा सत्ता प्रतिष्ठान को तिलमिलाने वाले सवाल करते हैं। उनकी कविताएँ परम्परागत सौन्दर्यबोध को तोड़ने वाली, सक्रिय प्रतिरोध का मुहिम खड़ा करने वाली कविताएँ हैं। कविताओं की प्रश्नवाचकता को इस नाटकीयता के साथ कविता में प्रस्तुत किया गया है कि चिंतन और संवेदना का विस्तार सहज ढंग से अभिव्यक्त हो गया है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. श्रीकान्त वर्मा का जन्म .... वर्ष में हुआ है।
2. श्रीकान्त वर्मा .... दशक के कवि है।
3. श्रीकान्त वर्मा .... रचना से चर्चित हुए।
4. श्रीकान्त वर्मा का पहला संग्रह .... है।

ख) संक्षिप्त उत्तर दीजिए :-

1. श्रीकान्त वर्मा की रचनाओं का परिचय दीजिए।
2. श्रीकांत वर्मा का संक्षिप्त दीजिये।

3. श्रीकांत वर्मा राजनीतिक प्रश्नों के कवि हैं - सिद्ध कीजिए।

4. श्रीकांत वर्मा के काव्यात्मक महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

5.5 सारांश

नयी कविता के बाद की कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढियों के कवि सक्रिय हैं। यहाँ एक विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। सातवें-आठवें दशक में तीस से ज्यादा काव्य-आन्दोलन प्रस्तावित किए गये किंतु उनमे से किसी को भी एक केन्द्रीय आन्दोलन के रूप में महत्त्व नहीं मिला। इस दौर की कविता

किसी भी तरह के केन्द्रवाद का निषेध करती है। जिस नई चुनौती को इस दौर के कवि स्वीकार करते हैं, वह है- सपाट अनुभव की रचना। सपाटबयानी ही यहाँ असली कवि-कर्म है। श्रीकांत वर्मा इस दक्षता की खुली संभावनाओं का विस्तार करने वाले कवि हैं। मोहभंगपरक यथार्थ से समकालीन कविता का यथार्थ भिन्न हैं। समकालीन यथार्थ राजनीतिक सांस्कृतिक विकृतियों का यथार्थ है, जिन्हें जीने के लिए और जिनमें जीने के लिए आदमी लाचार है जिसके दुःखते-कसकते अनुभवों की यातना को श्रीकांत वर्मा की कविताएँ 'चीख' और 'आग' में बदलकर व्यक्त करती हैं।

श्रीकांत वर्मा अपने समय के एक अत्यंत सजग कवि हैं। आज का परिवेश, उसकी भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीति और उसकी त्रासदी अपने नंगे रूप में उनकी कविताओं में मौजूद है। 'मायादर्पण' तथा 'जलसाघर' की कविताएँ खासतौर से बीसवीं सदी की अमानवीय बर्बरता का बयान करती हैं- ''कई साल/हुए/मैंने लिखी थीं। कुछ कविताएँ/तृष्णाएँ/साल ख़त्म होने पर/उठकर..../स्त्रियाँ/पता नहीं जीवन में आती/या जीवन से/जाती हैं।'' वह अन्तिम वक्तव्य के रूप में कहता है कि 'आत्माएँ/राजनीतिज्ञों को/बिल्लियों की तरह/मरी पड़ी हैं/सारी पृथ्वी से/उठती हैं/सड़ांध!' इन कविताओं में युद्ध की छाया मँडराती रहती है। यह दौर ऐसा है कि कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर/फिर/बेचेंगे क्रांति की (अथवा-षड्यंत्र की)/कुछ और लोग/सारा समय/कसमें खायेंगे/लोकतंत्र की।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक केन्द्र विहीन उत्तर आधुनिक सृजन परिदृश्य उमड़-घुमड़ रहा है। यहाँ मूल आदमी गायब है, केवल एक उपभोक्तावादी समाज है जिसमें उपभोक्ता ही सब कुछ है। कवि यह सूचना देने वाला भर रह गया है कि विश्वपूँजीवादी व्यवस्था में टेक्नालाजी का लाभ उन्हीं को मिलता है जो बाजार के मालिक हैं। श्रीकांत वर्मा की कविताएँ इस परिदृश्य का प्रमाणित दस्तावेज हैं-

दफ़्तर में, होटल में, समाचार पत्र में,

सिनेमा में

स्त्री के साथ एक खाट में ?

नावें कई यात्रियों को

उतारकर

वेश्याओं की तरह

थकी पड़ी हैं घाट में।

श्रीकांत वर्मा के यहाँ आधुनिकतावाद के सारे तत्व हैं, देश व काल से जीवन्त सम्बन्ध के संदर्भ हैं, तात्कालिकता का बढ़ता आग्रह है, इतिहास से मुक्ति पाने का संघर्ष है लेकिन यौन-विकृतियों

की बजवजाहट भी कम नहीं है- ‘जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझाकर।’ श्रीकांत वर्मा चिंतन और सघन अनुभूति को एकमेक करते हुए गद्य कविता में बड़ी दक्षता हासिल करते हैं। सपाटबयानी के साथ-साथ सघन बिम्ब-विधान को कला को साधने वाले वे बेजोड़ कवि हैं। मगध, काशी, कौशाम्बी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल ये सिर्फ काव्यात्मक प्रतीक भर नहीं है बल्कि सत्ता प्रतिष्ठान की बर्बरता, अमानवीयता, अनिर्णयात्मकता को साधने-खोलने के विराट जागृत प्रतीक भी है। उसे मालूम है कि- ‘कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/कोसल में विचारों की कमी है।’ वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का शत्रु पल रहा है- विचार। श्रीकांत वर्मा भटकाव और विचार की बात साथ-साथ करते हैं। उन्हें अस्तित्ववादी अवसाद से मुक्ति की संभावना विचार में ही दिखती है।

5.6 शब्दावली

1. आधुनिकतावाद- आधुनिकता का सम्बन्ध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परमपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीति-रिवाजों के खिलाफ नवीन और वैज्ञानिक विचारों तथा मूल्यों से है। आधुनिकतावाद साहित्य, कला तथा अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रचलित रहा जिसका विकास टी.एस. इलियट की कृति- ‘द वेस्ट लैण्ड’ के प्रकाशन से माना जाता है। हिन्दी कविता में यह शब्द पचास के दशक में चर्चा का विषय बना जब यूरोप में विक्षुब्ध युवा ।बंगाल और अमेरिका में बीट्स की कृतियों का महत्त्व स्थापित हुआ। आधुनिकतावाद, धर्म, प्रकृति, परम्परा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तु-स्थिति व व्यवस्था को चुनौती देता है। विद्रोह उसका मूल स्वर है। आधुनिकतावाद हर प्रकार के सामाजिक, नैतिक, वैचारिक तथा यौन दमन के विरूद्ध है। आधुनिकतावाद चौकाने- सनसनी फैलाने, उत्तेजना, आघात का प्रभाव विकसित करने के लिए भाषा और शैली में भी नये परिवर्तन का हिमायती है। साथ ही प्रकृतिवाद के विपरीत व्यक्ति की जटिल मानसिकता और अछूती संवेदनाओं को भी प्रस्तुत करता है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. 1931 2. सातवें दशक 3. मायादर्पण 4. भटका मेघ

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीकांत वर्मा: प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन।

2. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

3. राय, डॉ0 लल्लन, प्रगतिशील हिन्दी कविता

4. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास।

5.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. पाण्डेय, मैनेजर, शब्द और कर्म।

3. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सातवें दशक की कविता के बीच श्रीकांत वर्मा की कविताओं का महत्त्व बताइये।

2. सिद्ध कीजिए कि- ‘श्रीकांत वर्मा नये काव्य मुहावरे के कवि हैं।’

3. श्रीकांत वर्मा की काव्य संवेदना और शिल्प सौंदर्य पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

4. ‘श्रीकांत वर्मा की कविताओं का लक्ष्य मूल्य विघटित राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करना है ’ - इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 6 - केदारनाथ सिंह : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 केदारनाथ सिंह: काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता
6.3.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नई दुनिया
6.3.2 केदारनाथ सिंह: काव्यभाषा और बिम्ब विधान
6.3.3 केदारनाथ सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
6.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना
6.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ
6..4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नयी उम्मीदों ने जन्म लिया। प्रयोगवाद और नयी कविता के वस्तु और रूप का नया काव्य-मुहावरा सन् 1960 तक पहुँचते-पहुँचते अपना आकर्षण खोने लगा था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पनपे मूल्य विघटन के दौर ने नयी उम्मीदों को अवसाद और खिन्नता से ग्रस लिया। स्वयं नयी कविता के सभी जागरूक कवि अपने काव्य-मुहावरे की अपर्याप्तता का अनुभव करते हुए नये यथार्थ की बेचैनी के एहसास से तिलमिलाने लगे थे। हिन्दी कविता के इतिहास में यह समय मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति व विद्रूपताबोध से ग्रस्त रहा। फलतः नयी पीढ़ी में आक्रोश, विद्रोह, विक्षोभ, असंतोष के स्वर उभर पड़े। 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन को इस नये दौर का सूचक माना जा सकता है। उस समूचे काव्य सृजन संदर्भ को समकालीन कविता नाम दिया गया लेकिन इस काव्य सृजन के भीतर अनेक धारायें हैं, अनेक काव्य शैलियाँ हैं- अनेक तरह के छोटे बड़े काव्य आन्दोलन हैं- उनकी अलग-अलग तरह की काव्य ध्वनियाँ और प्रवृतियाँ हैं। इसमें अकविता, अस्वीकृत कविता, युयुत्सावादी कविता, प्रतिबद्ध कविता, भूखी

पीढ़ी की कविता, नंगी पीढ़ी की कविता, श्मशानी कविता आदि तथाकथित आन्दोलनों को अलग-अलग करके समझना-समझाना बेहद कठिन है। इसलिए काल चेतना की दृष्टि से इसे साठोत्तरी कविता कहना अधिक संगत प्रतीत होता है।

सन् साठ के लगभग बुद्धिजीवियों की जो नई-पुरानी पीढ़ी सामने आयी, उसने अपने आगे एक भयंकर अंधकार पाया। यह अंधकार इतना गहरा है कि सन् 1960 के बाद नयी कविता का व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा शीत युद्ध की वेदना वाला भाव गायब होकर राजनीतिक-सांस्कृतिक चिन्ताओं की चीख-पुकार तथा गुर्राहट विद्रोह की अर्थ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाता है। चीनी आक्रमण के साथ नेहरू युग से मोहभंग शुरू हुआ और देश की भीतरी तथा बाहरी स्थिति की असलियत उजागर हो गयी। इसने हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया, जिससे वह नई कविता की रूमानियत को छोड़कर पुनः कटु यथार्थ की भूमि पर पॉव टेकने को विवश हुई। इस दौर में राजनीति से लेकर साहित्य तक में 'मोहभंग' शब्द का बार-बार आना अनायास नहीं है। यह शब्द वस्तुतः नई कविता के बाद की कविता का बीज शब्द है। धूमिल ने अपने दौर की कविता का पूर्ववर्तियों से अन्तर बताते हुए लिखा कि-

''छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे

प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे

नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे

सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।''

'शब्दों को खोलकर' रखने से मतलब समय-समाज की मांग और दुःख-दर्द को महसूस करने से है और यह कार्य साठोत्तरी कविता के कवियों ने ही किया। सठोत्तरी कवियों में केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, धूमिल, राजकमल चौधरी, मणि मधुकर आदि का नाम उल्लेखनीय है। साठोत्तरी कवियों ने किसी वाद विशेष को अपनाने की आतुरता नहीं दिखाई बल्कि यह कविता राजनीति, समाज की विषम स्थितियों और असंगतियों से सीधा साक्षात्कार कराती है। साठोत्तरी कविता का व्यापक विस्तार केदारनाथ सिंह की कविताओं में देखा जा सकता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप नयी कविता के बाद के दौर में आये बदलाव का अध्ययन करेंगे तथा समकालीन कविता के काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता से परिचित होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के महत्त्व का आकलन कर सकेंगे साथ ही साठोत्तरी कविता की मूल प्रवृतियों के बीच केदारनाथ सिंह की कविताओं के सम्बन्ध को भी समझ सकेंगे। आजादी के बाद पनपे मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति-

विद्रूपता आदि के भाव-बोध को लेकर नये शिल्प में केदारनाथ सिंह ने अपने रचना कर्म में किस प्रकार विकसित किया- यह विश्लेषित करना इस इकाई का लक्ष्य है।

6.3 केदारनाथ सिंह : काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता

नयी कविता के बाद की कविता या साठोत्तरी कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढ़ियाँ सक्रिय थीं। यह एक ऐसा विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। यह कविता किसी भी तरह के केन्द्रवाद का विरोध करती है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ खुली संभावनाओं का विस्तार हैं। उन कविताओं में जितना विस्तार है, उतनी ही गहराई भी। उनकी काव्य संवेदना की परिधि में टमाटर बेचने वाली बुढ़िया, गड़रिया, जगरनाथ, सन् 1947 के नूर मियाँ, शीत लहरी में काँपता हुआ बूढ़ा आदमी, मैदान में खेलते बच्चे आते हैं तो साथ ही निहायत गैर जरूरी लगने वाली चीजें जैसे- गर्मी में सूखते कपड़े, सुई और तागे के बीच, घड़ी, टूटा हुआ ट्रक भी कविता का विषय बनते हैं। उनकी कविता के शीर्षक को देखकर उनकी काव्य संवेदना के बारे में यह एकतरफा नहीं कहा जा सकता है कि वे महानगरीय संवेदना के कवि हैं या लोक संवेदना के कवि हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि समकालीन कविता के कई महत्त्वपूर्ण नाम (धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, मणिक मोहिनी, मोनागुलाटी आदि) जब भयावह सरलीकरणों-निरर्थकताओं-चीखों-संत्रांसों का शिकार हो रहे थे तब केदारनाथ सिंह जीवन की समग्रता पर बल दे रहे थे। केदारनाथ सिंह का महत्त्व यह है कि वे अपने दौर की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए विद्रोह की एक नई भावभूमि पर पांव टेक रहे थे। विद्रोह के इस मानसिक विक्षोभ को उन्होंने जनवरी-मार्च 1968 के आलोचना में प्रकाशित अपनी टिप्पणी 'युवालेखन: प्रतिपक्ष का साहित्य' में स्पष्ट करते हुए कहा कि ''यह मानसिक विक्षोभ साहित्यिक कम और ऐतिहासिक अधिक है। संभवतः नवलेखन के क्षेत्र में यह सौंदर्यवादी रूझान कुछ दिनों तक और चलता रहता यदि अकस्मात 1962 के राष्ट्रीय संकट में साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों और खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में शंका न भर दी होती।'' डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार सन् 1960 के बाद की कविता की दो दिशाएँ थीं- देहगाथा की दिशा और बुर्जुआ लोकतंत्र के विरोध की दिशा। एक में बजबजाहट की तो दूसरे में बौद्धिक रूखाई। केदारनाथ सिंह ने कविता को उनसे मुक्त कर संवेदनात्मक बौद्धिकता से जोड़ा।

केदारनाथ सिंह शायद हिन्दी कविता के अकेले ऐसे कवि हैं, जो एक ही साथ गाँव के भी कवि हैं और शहर के भी। अनुभव के ये दोनों छोर कई बार उनकी कविता में एक ही साथ और एक ही समय दिखाई पड़ते हैं। अनुभव का यह विस्तार उनके संवेदनात्मक ज्ञान को और बढ़ाता है। उनकी संवेदना में विस्तार भी है और गहराई भी। इसमें आग और पानी के अर्थगर्भ संकेत हैं, मौत और जिन्दगी के उत्तर-प्रत्युत्तर हैं, युगीन चुनौतियाँ हैं, फसलें, रोटी, माँ की अनजानी प्रतिध्वनियाँ और आहटें हैं और कुल मिलाकर यहाँ है- जीवन का पर्व। उनके पास

अनुभवों का एक ठोस संसार है, जिसे उन्होंने आसपास से गहरे डूबकर प्यार करके प्राप्त किया है। उनकी काव्य संवेदना का दायरा गाँव से शहर तक परिव्याप्त है, जिसमें आने वाली छोटी-सी-छोटी चीज उनके उत्कृष्ट मानवीय लगाव से जीवन्त हो उठती है। नीम, बनारस, पहाड़, बोझे, दाने, रोटी, जमीन, बैल, घड़ी जैसी कविताएँ अपनी धरती और अपने लोगों के प्रति गहरी आत्मीयता की प्रमाण हैं। भारतीय समाज के प्रति उनके गहरे संवेदनात्मक लगाव को देखना हो तो 'माँझी का पूल', 'सड़क पार करता आदमी', 'पानी से घिरे हुए लोग', 'एक पारिवारिक प्रश्न', 'टूटा हुआ ट्रक' तथा 'बिना ईश्वर के भी'- जैसी कविताओं को देखना चाहिये। उनके यहाँ मामूली से मामूली विषयों में भी गहरे मानवीय सरोकार और चिंताएँ छिपी हुई हैं, जो बिना किसी वाद या खेमेबाजी के सैद्धांतिक बैसाखी के सहारे उनकी कविताओं में व्यक्त होती है। उनकी कविताओं की दुनिया एक ऐसी दुनिया है जिसमें रंग, रोशनी, रूप, गंध, दृश्य, एक-दूसरे में खो जाते हैं लेकिन कविता का 'कमिटमेंट' नहीं खोता- वहाँ कविता के मूल सरोकार, कविता की बुनियादी चिंता, कविता का काव्य या संदेश पूरी तीव्रता के साथ ध्वनित होता है। उनके अनुसार-

''ठण्ड से नहीं मरते शब्द

वे मर जाते हैं साहस की कमी से

कई बार मौसम की नमी से

मर जाते हैं शब्द''- लेकिन यह चिंता भी है कि-

''क्या जीवन इसी तरह बीतेगा

शब्दों से शब्दों तक

जीने

और जीने और जीने और जीने के

लगातार द्वन्द्व में ?''

वे कविता में एकालाप नहीं, सार्थक संवाद की कोशिश करते हैं। उनकी कविताएँ अपने समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करने वाली कविताएँ हैं।

6.3.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नयी दुनिया

केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। उनकी कविताएँ अपने समय समाज में बहुत दूर तक और देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। कविता का आन्दोलन, कविता का मतवाद आते-जाते रहते हैं- लेकिन केदारनाथ सिंह को कविताएँ हर समय में प्रासंगिक बनी रहती हैं और

नया अर्थ देती हैं। एक सामान्य कथन के सहारे वे एक ओर अन्तःकरण की पीड़ा को व्यक्त करते हैं तो दूसरी तरफ अपने समय की विडम्बना पर भी गहरा कटाक्ष करते हैं-

''पर सच तो यह है

कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता

तुमने यहाँ लिखा है 'प्यार'

वहाँ लिख दो सड़क

फर्क नहीं पड़ता।''

यहाँ महत्त्वपूर्ण है अत्यंत सामान्य से लगने वाले मुहावरे 'फर्क नहीं पड़ता' पर इतनी गहराई से और इतनी दूर तक की अर्थ अभिव्यंजना। उनके यहाँ 'हाँ' या 'नहीं', 'क्या' और 'क्यों' जैसे शब्द कामचलाऊ शब्द नहीं हैं। वे पूरे अर्थ में जीवित शब्द हैं जो अपना नया अस्तित्व या प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उनकी काव्यात्मक यात्रा के कई महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं और हर पड़ाव 'होने की लगातार कोशिश' का परिणाम हैं। 'होने की लगातार कोशिश' के परिवर्त्तन की यह प्रक्रिया सन् 1960 में प्रकाशित उनके प्रथम संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' से होती है। वे तीसरा सप्तक तक युवा गीतकार के रूप में सामने आये थे लेकिन वे गीतों को अलविदा कहते हैं और कविता की नयी दुनिया में प्रवेश करते हैं। यह वह दौर है जब केदारनाथ सिंह अपनी रूमानियत (गीतों के रूमानियत) से छुटकारा पाकर यथार्थ का साक्षात्कार करते हैं और अपने को नेहरू युग के मोहभंग से जोड़ते हैं। 1967 आते-आते भारतीय समाज के आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध इतने तीव्र हो जाते हैं कि आम चुनाव में नौ राज्यों में कांग्रेस अपना बहुमत खो देती है और मिली-जुली गैर कांग्रेसी सरकारों का एक नया दौर शुरू होता है यद्यपि उससे स्थिति में कोई बुनियादी परिवर्त्तन नहीं होता। साठोत्तरी कविता की समूची पीढ़ी का गहरा सम्बन्ध 1967 के आम चुनाव से है, लेकिन उसकी ट्रेजेडी है कि वह विकल्पहीन है। आम चुनाव के परिणामों ने उसके अनुभव में यथास्थिति के टूटने का एक तीखा बोध जरूर दिया था, लेकिन इससे उसकी स्थिति में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया था। 1967 में केदारनाथ सिंह ने एक कविता लिखी- 'चुनाव की पूर्व संध्या पर', जिसमें उन्होंने कहा कि- भेड़िये से फिर कहा गया है- 'अपने जबड़ों को खुला रखें'- इससे भारतीय जनतंत्र से आप उनकी निराशा का अनुमान लगा सकते हैं। उनका दूसरा काव्य संग्रह लगभग दो दशकों के अन्तराल पर 1980 में 'ज़मीन पक रही है' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की सभी कविताएँ साठोत्तरी कविता के दौर की ही हैं लेकिन उस दौर के बदलाव का आईना भी हैं। ज़मीन की तरह कवि के काव्यात्मक परिपक्वता का संकेत यहाँ साफ है जैसे केदारनाथ सिंह ने 'जमीन पक रही है'- ठेठ किसानी मुहावरे को किसानों के बीच से उठा लिया है। केदार की कविताएँ जो कुछ भी और जहाँ कहीं भी सुन्दर और मूल्यवान है, उसे बचा लेना चाहती हैं-

‘‘नहीं

हम मंडी नहीं जायेंगे

खलिहान से उठते हुए

कहते हैं दाने

जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे

जाते-जाते

कहते जाते हैं दानें’’

× × × ×

‘‘मगर पानी में घिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते

वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में

कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं

थोड़ी-सी आग’’

केदारनाथ सिंह थोड़ी सी धूप, आम की गुठलियाँ, पुआल की गंध, खाली टीन, भुने हुए चने, महावीर जी की आदमक़द मूर्ति, टुटही लालटेल को हर कीमत पर बचाने की कोशिश करने वाले कवि हैं। ‘यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा/मैं लिखना चाहता हूँ’- यह सिर्फ केदारनाथ सिंह की काव्यपंक्ति भर नहीं है बल्कि उनकी प्रतिबद्धता और सजगता की पहचान भी है क्योंकि अब-

‘‘इंतजार मत करो

जो कहना हो

कह डालो

क्योंकि हो सकता है

फिर कहने का काई अर्थ न रह जाय।’’

उनकी कविता में एक ऐसा संसार है जिसमें कवि पूरी ताकत से शब्दों को फेंकना चाहता है, आदमी की तरफ यह जानते हुए कि आदमी का कुछ नहीं होगा, वह भरी सड़क पर सुनना

चाहता है वह धमाका जो शब्द और आदमी की टक्कर से पैदा होता है और यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा, वह लिखना चाहता है।

केदारनाथ सिंह के परवर्ती संग्रह 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस' तथा 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ'- की कविताएँ जीवनोत्सव की कविताएँ हैं। उन्हीं के शब्दों में कहा नाम तो वे अपने काव्यानुभव के हर अगले पड़ाव पर धीरे-धीरे पहुँचते हैं जैसे- ''बनारस में धूल/धीरे-धीरे उड़ती है/धीरे-धीरे चलते हैं लोग/धीरे-धीरे बजते हैं घंटे/शाम धीरे-धीरे होती है।'' कविता में 'धीरे-धीरे' होने की यह लय इस बात की प्रमाण है कि कवि शब्दों और भावनाओं को संतुलन के साथ पेश करना चाहता है। विसंगतियों से भरे इस दौर में उन्हें आदमियत की तलाश है और उसके होने पर गहरा भरोसा भी है। उसे विश्वास है कि-

'एक दिन भक् से

मूँगा मोती

हल्दी-प्याज

कबीर-नरक

झींगुर कुहासा

सभी के आशय स्पष्ट हो जायेंगे।'

6.3.2 केदारनाथ सिंह: काव्य-भाषा और बिम्बविधान

केदारनाथ सिंह का मूल स्वर एक गीतकार का है। 'अभी बिल्कुल अभी' में वे गीतों की छन्दयोजना को इस हद तक संभालने की कोशिश करते हैं कि उनको मुक्तछन्द की कविताएँ सिद्ध किया जा सके। कम से कम 1965-67 तक केदारनाथ सिंह गीतों के प्रयोग कर रहे थे, न कि मुक्तछन्द में। कवि के द्वारा एक खास विधा में प्रयोग की इतनी संभावनाओं का उद्घाटन उनकी प्रयोग शक्ति और दृष्टि को प्रमाणित करता है। केदारनाथ सिंह की काव्य-भाषा कविताई की काव्य-भाषा से अलग अपने पाठक से सार्थक संवाद की काव्य-भाषा है। उनका मानना है कि ''बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव-अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्रायः असंभव है।'' उनकी कविताओं के विषय में यह भी कहा जाता है कि उनके यहाँ काव्य-भाषा व बिम्बविधान में अमूर्त्तन बहुत है। कहीं-कहीं अमूर्त्तन अर्थ-ग्रहण की अबूझ प्रक्रिया तक पहुँच जाता है। जैसे- 'उसे बेहद हैरानी हुई जब उसने/खरहों की माँद में जमीन नहीं है' या 'आदमी की परछाई एक छोटे-से चम्मच में रखी जा सकती है या नहीं' इत्यादि। केदारनाथ सिंह की कविताएँ उस दौर में लिखी गईं जब सपाटबयानी का खूब शोर-शराबा था जबकि ज़िन्दगी की जटिलता को सपाटशैली में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता था। इसलिये केदारनाथ सिंह सूर्य, जमीन, रोटी, बैल, बढ़ई और चिड़िया, एक प्रेम-कविता को पढ़कर, धूप में घोड़े पर बहस आदि कविताओं में सौन्दर्यमूलक योजना के तहत चीजों को बिखरा देते हैं। इसके माध्यम से

वस्तुओं के रिश्तों और स्पेस में अनुस्यूत अर्थवत्ता की तलाश करते हैं। बर्ड्सवर्थ ने जिस कविता में भावों के सहज एवं तीव्र उच्छलन की बात की है, केदारनाथ सिंह उन स्वतःस्फूर्त उद्रेकों को रोककर अधिक आभामय, अधिक प्रखर बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिये वे प्रायः दृश्यचित्रों को उनके संदर्भ से काटकर ऐसे घनचित्र उभारते हैं जो एक ही दृश्य को अनेक संदर्भ से जोड़ता, अनेक अर्थों को उभारता चला जाता है। अपने मन के विक्षोभ को, आकाश को, पराजय और असमर्थता को भी बिम्बों में बांधा जा सकता है यह सब पाब्लो नेरूदा की कविताओं की विशेषता है। पर केदारनाथ सिंह के यहाँ बिम्ब सीधे और आक्रामक रूप में आते हैं, दबे-सिकुड़े संदर्भ से कटे हुए नहीं- लगता है छतों पर सूखते हुए सारे कपड़े/मेरी त्वचा और हड्डियों की मांग से/उतनी ही दूर है/जितनी मेरे गॉव के टीले से/फिदेल कास्त्रों की भूरी दाढ़ी।

केदारनाथ सिंह अपने दौर के कवियों के बीच भाषा के जादूगर हैं। वे कभी-कभी चौकाने के प्रलोभन में पड़ जाते हैं, इससे उनकी कविताओं का सौन्दर्य बिगड़ता सा लगता है लेकिन वे बहुत कीमती धागे से बाँध लेते हैं। उनकी कविताओं में एक ठहराव है, बँधाव है। रोक रखने और बाँध लेने की शक्ति है, प्रश्न पर प्रश्न उभारते जाने की क्षमता है, पर उत्तर नहीं, गति नहीं। उनकी कविताएँ-

एक दिशा है

जो लौटा देती है सारे दूत

प्रश्नवाहक

भटकी आवाज।

× × × ×

छत पर आकाश

आकाश में

रखी हुई

सतरंगे बाँस की टेढ़ी-सी कुर्सी

कुर्सी में

मैं हूँ। -

यह मोह ही केदार की काव्यात्मक शिल्प विधान की विशेषता है। केदारनाथ सिंह पर 'कवि' पत्रिका में लिखते हुए कभी नामवर सिंह ने लिखा था कि वह ''मद्धिम संवेगों के कवि'' हैं। उनकी विशेषता है कि वे केवल रंगों और ध्वनियों को ही नहीं, पूरे दृश्य खण्ड को ही एक साथ

अपनी तूली मे उठाकर नये सौन्दर्य की रचना कर सकते हैं। वे अंधेरे में पहुँच के पार फेंकने के उभरते हुए चित्रों की प्रतीति करा देते हैं-

‘फेंक दिया जाता हूँ

(अपने ही पैरो से)

हवा की गेंद-सा

बाहर अंधेरे में

पहुँच के पार’

यहाँ फेंकने वाले पैर उनके ही हैं। उन्होंने अपना क्रूस स्वयं तैयार किया है और उसमें अपने को जड़ा भी, अपनी ही गढ़ी कीलों से है। वे अपनी कविताओं में कवि के रूप में कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। अद्भुत है शब्दों की रंगत, मिज़ाज और ताप की उनकी पहचान, असाधारण और अविश्वसनीयता की हद तक असाधारण है उनकी दक्षता।

6.3.3. संक्षिप्त जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म: 1932, चकिया जिला बलिया, उ0प्र0 सामान्य किसान परिवार में। हाईस्कूल से एम.ए. तक की शिक्षा वाराणसी में। 1964 में काशी विश्वविद्यालय से ‘आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान’ विषय पर पीएचडी उपाधि। विधिवत् काव्य लेखन की शुरूआत 1952 से। बनारस से निकलने वाली अनियतकालीन पत्रिका ‘हमारी पीढ़ी’ से सम्बद्ध। 1959 में प्रकाशित ‘तीसरा सप्तक’ के कवियों में से एक। पेशे से अध्यापक, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी, सेंट इण्ड्रूज कॉलेज, गोरखपुर, उदित नारायण कॉलेज, पडरौना तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर से सम्बद्ध। 1976 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए वहीं से सेवानिवृत्त। प्रकाशित काव्य संग्रह- अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, अकाल में सारस, यहाँ से देखो, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ। आलोचना- कल्पना और छायावाद, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, मेरे समय के शब्द।

6.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना

6.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ

1. रोटी

उसके बारे में कविता करना

हिमाक़त की बात होगी

और वह मैं नही करूँगा

मैं सिर्फ़ आपको आमन्त्रित करूँगा

कि आप आयें और मेरे साथ सीधे

उस आग तक चलें

उस चूल्हे तक--जहाँ वह पक रही है

एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ

समूची आग को गन्ध में बदलती हुई

दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़

वह पक रही है

और पकना

लौटना नहीं है जड़ों की ओर

वह आगे बढ़ रही है

धीरे-धीरे

झपट्टा मारने को तैयार

वह आगे बढ़ रही है

उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद

और विचारों तक

मुझे विश्वास है

आप उसका सामना कर रहे हैं

मैंने उसका शिकार किया है
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ

मेरे हाथ खोजने लगते हैं
अपने तीर और धनुष
मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं
जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ

मैंने जब भी उसे तोड़ा है
मुझे हर बार पहले से ज़्यादा स्वादिष्ट लगी है
पहले से ज़्यादा गोल
और खूबसूरत
पहले से ज़्यादा सुर्ख और पकी हुई

आप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ़ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे-यह भूख के बारे में
आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है

आप देखेंगे
दीवारें धीरे-धीरे
स्वाद में बदल रही है।

2. पानी में घिरे हुए लोग

पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को
और एक दिन
बिना किसी सूचना के
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर
धर-असबाब लादकर
चल देते हैं कहीं और

यह कितना अद्भुत है
कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो
उन्हें पानी में
थोड़ी-सी जगह ज़रूर मिल जाती है
थोड़ी-सी धूप
थोड़ा-सा आसमान

फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे

उलझा देते हैं मूँज की रस्सियाँ और टाट
पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गन्ध
वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ
खाली टिन
भुने हुए चने
वे ले आते हैं चिलम और आग

फिर बह जाते हैं उनके मवेशी
उनकी पूजा की घंटी बह जाती है
बह जाती है महावीर जी की आदमक़द मूर्ति
घरों की कच्ची दीवारें
छीवारों पर बने हुए हाथी-घोड़े
फूल-पत्ते
पाट-पटोरे
सब वह जाते हैं

मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी-सी आग

फिर डूब जाता है सूरज

कहीं से आती हैं

पानी पर तैरती हुई

लोगों के बोलने की तेज़ आवाज़ें

कहीं से उठता है धुँआ

पेड़ों पर मँडराता हुआ

और पानी में घिरे हुए लोग

हो जाते हैं बेचैन

वे जला देते हैं

एक टुटही लालटेल

टाँग देते हैं किसी ऊँचे बाँस पर

ताकि उनके होने की खबर

पानी के पार तक पहुँचती रहे

फिर उस मद्धिम रोशनी में

पानी की आँखों में

आँखें डाले हुए

वे रात-भर खड़े रहते हैं

पानी के सामने

पानी की तरफ

पानी के ख़िलाफ़

सिर्फ उनके अन्दर

अरार की तरह

हर बार कुछ टूटता है

हर बार पानी में कुछ गिरता है

छपाक्.........छपाक्...........

3. फर्क नहीं पड़ता

हर बार लौटकर

जब अन्दर प्रवेश करता हूँ

मेरा घर चौंककर कहता है ‘बधाई‘

ईश्वर

यह कैसा चमत्कार है

मैं कहीं भी जाऊँ

फिर लौट आता हूँ

सड़कों पर परिचय-पत्र माँगा नहीं जाता

न शीशे में सबूत की ज़रूरत होती है

और कितनी सुविधा है कि हम घर में हों

या ट्रेन में

हर जिज्ञासा एक रेलवे टाइम टेबुल से

शान्त हो जाती है

आसमान मुझे हर मोड़ पर

थोड़ा-सा लपेटकर बाक़ी छोड़ देता है
अगला कदम उठाने
या बैठ जाने के लिए
और यह जगह है जहाँ पहुँचकर
पत्थरों की चीख साफ़ सुनी जा सकती है
पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फ़र्क नहीं पड़ता
तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहाँ लिख दो 'सड़क'
फ़र्क नहीं पड़ता

मेरे युग का मुहाविरा है
फ़र्क नहीं पड़ता
अक्सर महसूस होता है
कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे
और अफ्रीका की धुँधली नदियों के छोर
एक हो गये हैं

और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में
सटी है

मैं बहस शुरू तो करूँ

पर चीज़ें एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं

कि सामने की मेज़ को

सीधे मेज़ कहना

उसे वहाँ से उठाकर

अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है

और यह समय है

जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर

अलग हो जाती है

और यह समय है

जब मेरे जूते के अन्दर की एक नन्हीं-सी कील

तारों को गड़ने लगती है

4. अनागत

इस अनागत को करें क्या

जो कि अक्सर

बिन सोचे, बिना जाने

सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है

किताबों में घूमता है

रात की बीरान गलियों-बीच गाता है

राह के हर मोड़ से होकर गुज़र जाता

दिन ढले--

सूने घरों में लौट आता है,

बाँसुरी को छेड़ता है

खिड़कियों के बन्द शीशे तोड़ जाता है

किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटा देता

बिस्तरों पर छाप अपनी छोड़ जाता है।

इस अनागत को करें क्या

जो न आता है, न जाता है!

आजकल ठहरा नहीं जाता कहीं भी,

हर घड़ी, हर वक्त खटका लगा रहता है

कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाये

हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है!

फूल जैसे अँधेरे में

दूर से ही चीखता हो

इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है

हाथ उसके

हाथ में आकर बिछल जाते,

स्पर्श उसका

धमनियों को रौंद जाता है।

पंख

उसकी सुनहली परछाइयों में खो गये हैं,

पाँव

उसके कुहासे में छटपटाते हैं।

इस अनागत को करें क्या हम

कि जिसकी सीटियों की ओर

बरबस खिंचे जाते हैं।

5. एक पारिवारिक प्रश्न

छोटे-से आँगन में

माँ ने लगाये हैं

तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है

बरगद छतनार

मैं अपना नन्हा गुलाब

कहाँ रोप दूँ!

मुट्ठी में प्रश्न लिये

दौड़ रहा हूँ वन-वन,

पर्वत-पर्वत,

रेती-रेती......

बेकार।

6.4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना

केदारनाथ सिंह का काव्यात्मक विकास गीतकार के रूप में हुआ, जहाँ कथ्य व शिल्प की नयी दीप्ति थी और स्वर में ताज़गी, निजता और सम्वेद्यता भी- 'झरने लगे नीम के पत्ते', 'ये कोयल के बोल उड़ा करते' तथा 'आना जी बादल जरूर' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। केदारनाथ सिंह नई कविता के थोड़े से भाग्यशाली कवियों में हैं जिनकी काव्यशक्ति पर प्रयोगवादियों तथा प्रगतिवादियों दोनों ने विश्वास जताया था। वे अपने आसपास की हल्लेबाजी से अलग, अपनी निजी जमीन पर टिके उस पूरे दौर में कविता करते रहे जब समूचा काव्य परिदृश्य भीड़ के साथ बहा जा रहा था लेकिन केदारनाथ सिंह के लिए परम्परा का एक गहरा अर्थ था और वह उनका निषेध करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे:

'छोटे से आंगन में/माँ ने लगाए हैं/तुलसी के बिरवे दो/पिता ने उगाया है/बरगद छतनार/मैं अपना नन्हा गुलाब/कहाँ रोप दूँ।' यहाँ एक विनम्र स्वीकार है पूर्ववर्तियों के कृतित्व का, उनके द्वारा सिंचित-पल्लवित परम्परा का लेकिन उसमें नवीन के प्रति गहन आस्था भी है। वह जिसे प्रतिष्ठित करना चाहता है, वह कम प्यारा नहीं है- उसके लिए। वह न तुलसी की उपेक्षा करके गुलाब रोपने के पक्ष में हैं, न बरगद की छाया में उसे रोपकर इसे ग्रस्त होने देना चाहता है- यहाँ नई जमीन, नई संभावनाओं की खोज है। एक पारिवारिक प्रश्न सिर्फ पारिवारिक प्रश्न भर नहीं है बल्कि अपने पूरे सामाजिक-साहित्यिक संदर्भ के सम्मुख उपस्थित प्रश्न है, स्वीकृति और निषेध का और नवीन की स्थापना का भी।

केदार की कविताएँ अपने समय में बहुत देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। ये कविताएँ चुप्पी और शब्द के रिश्ते को बखूबी पहचानती हैं और उसे एक काव्यात्मक चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है। गीतों की रूमानियत से छुटकारा पाकर जब वह यथार्थ का साक्षात्कार करते हों या सामाजिक-राष्ट्रीय मोहभंग का सामना करते हैं तो उन्हें साफ दिखता है कि- ''भेड़िये से फिर कहा गया है/अपने जबड़ों को खुला रखे।'' इससे भारतीय जनतंत्र से उनकी निराशा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कविताओं में आत्मनिर्वासन से लेकर वस्तुकरण तक का वर्णन है। 'सूर्य' उनकी बस्ती के लोगों की दुनिया में वह अकेली चीज़ है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है। कवि के शब्दों में 'सिर्फ उस पर रोटी नहीं सेंकी जा सकती!'- यह संदर्भ अर्थव्यंजना को कहाँ तक खींच लाता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है कि 'केदार विशिष्ट शब्दार्थो के कवि हैं। उनकी कविता में शब्दार्थो की जो अद्वैतता है, स्पर्धाधर्मिता है, वह उसे विशिष्ट बनाती है।' केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चिंतता का भाव भी है, एक बेचैनी है, जो कविताओं के बीच में बिजली की तरह कौंध-कौंध उठती है- ''आप विश्वास करें/मैं कविता नहीं कर रहा हूँ/वह पक रही है/और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में/आग का बयान है/जो दीवारों पर लिखा जा रहा है।''- जो पक रही है वह 'रोटी' है। वह वहाँ तक चलना चाहता है जहाँ वह पक रही है- एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ/समूची आग को गंध में

बदलती हुई/दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज/वह पक रही है- उसके पकने में जनसरोकार और प्रतिबद्धता का भाव निहित है। यहाँ जीवनोन्मेष की अनुभूति प्रबल है। यहाँ कविता श्रम संस्कृति और जन सरोकार का तिर्यक साक्षात्कार न करके, सीधे करती है। सब मिलाकर यहाँ कविता के स्तर में विषमता है। 'रोटी' न सिर्फ़ राजनीतिक प्रतीक भर है बल्कि जनधर्मी प्रतीक भी है। केदार की कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा भी करती हैं। उनके यहाँ खलिहान से उठते हुए दानों की आवाज़ है, जो मण्डी जाने से इंकार करते हैं, मनुष्य के खाली सिर हैं, जो अपने बोझे का इंतेजार कर रहे हैं, रोहू मछली की डब-डब आँखें हैं, जिसमें जीने की अपार तरलता है और वह बेचैन धूल है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चयता के स्थान पर अनिश्चयता है, आत्मविश्वास के स्थान पर संशयग्रस्तता है। उनकी कविताएँ सौन्दर्य और उल्लास की ओर चलते रहने का आग्रह करती हैं लेकिन गहरी प्रश्नाकुलता का संकेत भी करती हैं। 'माझी के पुल में कितने पाये हैं ? ', 'रास्ता किधर है? ', 'क्या तुम जानते हो? ', 'क्या शुरू हो गया आमों का पकना? ', 'तुम अब तक चुप क्यों हो मेरे भाई? '- क्या यह अनायास है कि केदार की कविताएँ प्रश्नवाचक चिन्हों से भरी पड़ी हैं! क्योंकि कवि प्रश्नवाचकता को अभिप्राय सहित खोलना चाहता है। उनकी कविताओं में अस्पष्टताबोधक चित्र अवश्य हैं, पर उन्हीं में वे सूक्ष्य रेखाएँ भी हैं जो विचार-बोध को विशेष अर्थ-बोध प्रदान करती हैं- 'उनके लक्ष्यहीन मोड़ों पर खिंचे हुए टोली के हल्के इशारे हैं।' दिशाहीन चिड़िया के पर में आकांक्षा के जीवित रेशे हैं। कामकाज, घर-हाट, खेत-खलिहान, घर-परिवार, गर्द-गुबार की दुनिया में धुंधले पड़े मामूली शब्द, इस्तेमाल की मामूली चीज़ें, प्रकृति लोक के नगण्य तथ्य केदारनाथ सिंह की कविता में अपना बजूद प्रमाणित करते हैं। वे अपने कलात्मक कौशल से मामूलीपन में भी अर्थपूर्णता व अनिवार्यता की तलाश करते हैं। अनागत है तो 'हाथ उसके हाथ में आकर बिछल जाते हैं।' पूल अजन्में हैं लेकिन हवाओं में तैरते हैं। केदार की कविताएँ अपने दायरे को तोड़कर व्यापक वास्तविकता का सामना करने की आकुलता जगाती हैं। 'अनागत'- वैसे अमूर्त्त है लेकिन कवि-दृष्टि उसकी आहट को अपने परिवेश या वातावरण में देख लेती है और वातावरण के उन अमूर्त्त संदर्भो द्वारा अनागत को मूर्त्त करने का प्रयास करती है। इन्हीं जीवन्त संदर्भों के चलते 'अनागत' एक निराकार भविष्य के स्थान पर 'जीवित सत्ता' की तरह जान पड़ता है। कभी वह प्रेत छाया की तरह किताबों में घूमता है, कभी रात की वीरान गलियों के पार जाता है। कभी बाँसुरी को छेड़ता है, कभी खिड़कियों के बंद शीशे तोड़ जाता है, कभी किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटाते हुए बिस्तरों पर अपनी छाप अंकित कर जाता है। उसके आने-जाने की रहस्यता ऐसी है कि हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है। यहाँ प्रत्यक्ष है कि आस-पास के वातावरण से जो वस्तुएँ चुनी गई हैं, वे मन में निराकार और रहस्यमय अनागत की गतिविधियों को सजीव मूर्त्त और दीप्त बनाती है- फूल जैसे अंधेरे में दूर से ही चीखता है/इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है- उनका विश्लेषण करते हुए कविता की बिम्वधर्मी असंगतियों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कविता का वक्तव्य

और कवि का भी वक्तव्य यही है कि भविष्य यहीं-कहीं, आस-पास है, पर उसका रूप अनिश्चित अज्ञात है- हालांकि 'हम उसकी ओर बरबस खिंचे जाते हैं।'

केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता की सरलीकृत बोझिल शिथिलता तथा बिम्बधार्मिता की निरर्थकता का अनुभव कराते हैं। उनके यहाँ समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की है क्योंकि-

'चीज़े एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं

कि सामने की मेज को सीधे-मेज कहना,

उसे उठाकर अज्ञात अपराधियों के बीच रख देना है'

यहाँ भाषा अकारण ही, वक्तव्य की भाषा नहीं है- 'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'/वहाँ लिख दो सड़क/फर्क नहीं पड़ता/मेरे युग का मुहावरा है फर्क नहीं पड़ता।' मानवस्थिति की यह क्रूर विडम्बना- जिसके सामने हर जिज्ञासा रेलवे टाइम टेबुल से शांत हो जाती है'- वक्तव्य की सीधी भाषा में ही अपने को व्यक्त कर सकती है। यहाँ न कोई चित्रमयता है, न काव्योचित अलंकृति। यह कविता नेहरू युग के बाद के पनपे मोहभंग के बदले परिप्रेक्ष्य के साथ सूचित करती है, संकेत करती है और विश्लेषित भी करती है- जहाँ किसी चीज़ से कोई फर्क नहीं पड़ता- क्या यह स्थिति अमानवीयता की चरम स्थिति को नहीं सूचित करती है?

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

1. केदारनाथ सिंह का जन्म .... सन् में हुआ था।
2. केदारनाथ सिंह .... सप्तक के कवि हैं।
3. केदारनाथ सिंह हिन्दी कविता में .... के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।
4. अभी बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह का .... संग्रह है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. केदारनाथ सिंह की काव्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. केदारनाथ सिंह की कविताओं का महत्त्व बताइये।
3. 'केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थो के कवि हैं' कैसे ?
4. अनागत या फर्क नहीं पड़ता कविता का वैशिष्ट बताइये।

6.5 सारांश

इस ईकाई में आपने साठोत्तरी कविता के संदर्भ में केदारनाथ सिंह की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने नेहरू युग के अन्त के बाद के दौर में भारतीय समाज में पनपे मोहभंग, संत्रास तथा मूल्य विघटन के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, शमशानी कविता, किसिम-किसिम की कविता वाले समय में केदारनाथ सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। केदारनाथ सिंह तीसरा सप्तक के कवि हैं, उनकी काव्ययात्रा गीतकार के रूप में प्रारंभ होती है। वे इस अर्थ में विलक्षण कवि हैं कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की शिविर बद्धता के बीच वे दोनों के लिए समान प्रिय हैं। उनकी कविताएँ पहली बार रूप या तंत्र के धरातल पर एक आकर्षक विस्मय पैदा करती हैं, क्रमशः बिम्ब और विचार के संगठन में मूर्त्त होती हैं और एक तीखी बेलौस सच्चाई की तरह पूरे सामाजिक दृश्य पर अंकित होती चली जाती हैं। यहाँ कविता किसी अर्थ में एकालाप नहीं, वह हर हालत में एक सार्थक संवाद है। वह एक पूरे समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करती है। चुप्पी और शब्द के रिश्ते को वह बखूबी पहचानती हैं और उसे एक ऐसी चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है- जिसके उदाहरण कम मिलते हैं। ये कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा करती हैं। उनकी संवेदना अपने समय के समस्त हिन्दी कवियों से भिन्न है और उन्हें सौन्दर्य के ऐसे अछूते आयामों से जोड़ती है जिनकी ओर सामान्यतः औरों की दृष्टि ही नहीं जाती। ग्रामांचल में एक विशाल सपाट, फैला, हरियाली से भरा दृश्य खण्ड, जो संभवतः किसी तलाब का कछार- इन सबका सार्थक चित्र अन्यत्र मुश्किल है- हवा शान्त है/लोग/भागते हुए/स्वयं के साथ दौड़ती परछाई से अलग/तेजतर्रार /सीमान्तों पर/मुड़ते/मुड़ते/झण्डे बदल रहे हैं अपने।

केदारनाथ सिंह अपनी रचनायात्रा में कई बदलाव के साथ सक्रिय हैं। उनके प्रत्येक रचना संग्रह के साथ ताज़गी और रंगत के कई-कई विविध रूप अलग-अलग उभरते हैं। वे अपनी कविताओं में कवि कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। वे भाषा के जादूगर अतिरंजना के कारण नहीं हैं बल्कि उनकी कविताएँ एक विशाल मंच पर सुनहरी पगड़ी और चमचमाती कोट पहने गिलि-गिलि करता हवा से या किसी तीसरे के हैट से मनमानी चीज़ें निकालता, दिखाता, गायब करता, बदलता, जोड़ता, तोड़ता और पूरी शान और आत्मविश्वास से एक छोर से दूसरे छोर तक टहलता और मुस्कुराता हुआ गोगिया पाशा की याद दिलाने वाली कविताएँ हैं। केदार मुख्यतः रूपवादी कवि हैं उनका पैटर्न आश्चर्यजनक है। वे बहुत तेजी से घटित होने वाले बदलाव के खण्डित प्रभाव को शोर भरी निशब्धता में परिवर्तित कर देते हैं। उनकी कविताएँ उस दुनिया में विचरण करती हैं जिससे अभिजात्य रूचि वाले अन्य रूपवादी दूर भागते हैं- उनके यहाँ कन्धे पर कल्हाड़ी, पत्थरों की रगड़, आटे की गंध, बंसी डाले झुम्मन मियाँ, पकी रोटियों की गंध, अपनी समूची आदिम गरिमा के साथ उपस्थित है। इसलिये उनकी कोई भी कविता प्रतिक्रियावादी नहीं है। केदार जिस परिचित और आत्मीय दुनिया को

अपनी कविताओं में उतारते हैं, उससे ही पैदा होता है वह विश्वास कि यह हमारा अपना कवि है और इसलिए थकान मिटाने या जी बहलाने को वह थोड़ी देर भटका और बिलमा तो सकता है, पर हमें धोखा नहीं दे सकता। वे काव्य प्रयोजन के प्रति बेहद सजग हैं, उनमें काव्य चमत्कार प्रदर्शित करने से अधिक चिंता जीवन के जवलन्त सरोकारों से जुड़ने की देखी जा सकती है। जहाँ कवि एक ऐसी आडम्बरहीन शैली का 'सादगी ओ पुरकारी बेखुदी ओ हुशियारी' का विकास करते हैं। वे आवेग के स्थान पर विट से काम लेते हैं, इसलिये उनकी सादगी विचलित और विगलित नहीं करती, हमें चमत्कृत करती है। केदार की कविताओं में एक कलात्मक नियंत्रण, एक लगाव-अलगाव का युगपत् व्यापार सहज ही पाया जाता है। ऊर्जा और कला का एक सार्थक संगठन केदार की खासियत है जिसे विलक्षण उत्तेजना के साथ कवि विश्लेषणपरक बनाता है।

6.6 शब्दावली

1. तीसरा सप्तक: (प्रकाशन-1959, से0 अज्ञेय) संकलित कवि: कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण सारी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, प्रयाग नारायण त्रिपाठी)

2. अकविता: अकविता का प्रयोग । साठोत्तरी कविता के अर्थ में किया गया है। 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में चौदह कवियों की कविताओं का संग्रह 'प्रारंभ' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसके सम्पादकीय 'नये काव्य की भूमिका' के द्वारा प्रयोगवादियों के विरूद्ध सामूहिक आक्रोश के रूप में 'अभिनव काव्य' का प्रवर्तन किया गया। अभिनव काव्य शब्द को अपर्याप्त मानकर इसे । साठोत्तरी शीर्षक दिया गया जिसे अकविता के नाम से जाना जाता है। श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी की कविताओं के लिये यह नाम दिया गया। अकविता के मूल में विश्वयुद्धों के बाद दुनिया भर में फैली हताशा, एब्सर्डिटी और निरर्थकताबोध की लहर को माना जाता है जिसे किर्केगर्ड के परम्पराद्रोह तथा नीत्शे की ईश्वर की मृत्यु की घोषणा से काफी बल मिला। आजादी के बाद पनपे मोहभंग ने इसे हवा दी और यह आन्दोलन खड़ा हो गया।

3. बिम्बग्रहण: ऐसी रूप योजना जो मन के समक्ष वर्ण्य-वस्तु को प्रत्यक्ष कर दे, बिम्ब कहलाती है। केदारनाथ सिंह के अनुसार काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है। इस प्रकार सामान्य बिम्ब और काव्य बिम्ब में फर्क होता है। जहाँ भी कवि का उद्देश्य विषय का आलम्बन रूप में ग्रहण करना होगा वहाँ बिम्ब ग्रहण अनिवार्य होगा। बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 1. 1932 2. बिम्ब 3. तृतीय सप्तक 4. प्रथम कविता संग्रह

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

2. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

3. श्रीवास्तव, (सम्पादक) परमानन्द, दिशांतर (समकालीन कविता का संकलन)।

4. प्रतिनिधि कविताएँ: केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन।

5. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग।

6.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

2. श्रीवास्तव, परमानन्द, कविता का अर्थात।

3. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नयी कविता और अस्तित्ववाद।

4. सिंह, नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता।

5. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के काव्य वैशिष्ट्य का महत्त्व बताइए।

2. केदारनाथ सिंह की कविताओं के शिल्प वैशिष्ट्य का मूल्यांकन कीजिये।

3. 'केदारनाथ सिंह की कविताओं का बिम्बविधान' को स्पष्ट कीजिये।

4. 'केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता के परिदृश्य विशालता के कवि हैं'- कैसे ?

5. केदारनाथ सिंह मानवीय लगाव और जीवनोल्लास के कवि हैं- स्पष्ट कीजिए।

इकाई 7 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा

7.3.1 लोक साहित्य से तात्पर्य

7.3.2 लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता

7.3.3 लोकसाहित्य एवं परिनिष्ठित साहित्य

7.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास

7.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य

7.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण

7.5. सारांश

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.9 सहायक पाठ्य सामग्री

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोकसाहित्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि कुमाऊॅं में प्रचलित मौखिक परंपरा किस प्रकार परिनिष्ठित साहित्य में परिवर्तित हुई। कुमाऊँ क्षेत्र में आरंभ से चली आ रही मैखिक परंपरा को जानने समझने के लिए कुमाउनी भाषा का ज्ञान जरूरी है। कुमाऊँ में आरंभिक काल से चली आ रही मौखिक परंपरा ने ही कुमाउनी लिखित साहित्य को जन्म दिया है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य को जान सकेगे।

इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डाली गई है,साथ ही कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को भी आप इस इकाई के अन्तर्गत आसानी से समझ सकेगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकसाहित्य के महत्त्व को बता सकेंगे।
- यह समझा सकेंगे कि कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य में क्या अन्तर है ?
- कुमाउनी लोकसाहित्य की विविध विधाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मौखिक परंपरा की मौलिकता को बता सकेंगे।
- यह बता सकेंगे कि कुमाउनी साहित्य को आगे बढ़ाने में लोकसाहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

7.3.कुमाउनी लोकसाहित्य: तात्पर्य एवं परिभाषा

लोकजीवन की विविध क्रियाएं व अनुभूति जब अभिव्यक्ति के धरातल पर आती है तब वह लोकसाहित्य कहलाता है। 'लोक' की अनुभूति की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है लोकसाहित्य। कुमाऊं क्षेत्र भौगोलिक रूप से पर्वतीय क्षेत्र कहलाता है।यहाँ की प्राचीन परंपराएँ, गीत ,संगीत और संस्कृति के मिश्रण से यहाँ के लोकसाहित्य का निर्माण हुआ है। लोकजीवन की भावभूमि पर उगे हुए साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दी जाती हैं। आज लोकसाहित्य के प्रति सहदय पाठकों एवं विद्वानों का रुझान अधिक दिखाई पड़ता है। इसका मूल कारण यह हैं कि लोकसाहित्य एक विशाल जनसमुदाय का साहित्य है। लोकसाहित्य में परंपरागत लोकजीवन की धारणाओं, विश्वासों तथा मान्यताओं का पुट होता है। कुमाऊँ क्षेत्र की वाचिक अथवा मौखिक परंपरा का एक दीर्घकालीन इतिहास रहा है। परंपरा सें चली आ रही मौखिक अभिव्यक्ति को कुमाउनी लोकसाहित्य कहा जाता है।

7.3.1 लोकसाहित्य से तात्पर्य

लोकसाहित्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के ''लोकृ'' (दर्शन) से हुई है ''लोक'' तथा ''साहित्य'' शब्द मिलकर लोकसाहित्य शब्द का निर्माण करते हैं। अमरकोश में लोकसाहित्य के लोक नामक अग्रशब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्द मिलते हैं यथा - भुवन,जगती,जगत्। लोकसाहित्य पूरे जनसमुदाय की अभिव्यक्ति का दर्पण होता है। लोकसाहित्य इतिहास की दीर्घकालीन परंपराओं को समाविष्ट करता है। लोक में घटित हुई या घटित होने वाली घटनाओं के बारे में संवेदना मूलक धारणा विकसित करता है। लोक साहित्य के ममर्ज्ञ डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकसाहित्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है-''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है,उसमें भूत भविष्य,वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है।लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक,लोक की धात्री सर्वभूता माता पृथिवी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, ''यह एक अर्धसरल स्वाभाविक मानव समाज है,जिसकी भावनाओं,विचारों,परंपराओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं।''

प्रोफेसर देव सिहं पोखरिया ने लोकसाहित्य के संबंध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है, ''लोक'' मानव समाज की वह सामूहिक इकाई है,जो अपने नैसर्गिक और स्वभाविक रूप में अभिजात्य बंधनों तथा परंपराओं से रहित पांडित्य, चमत्कार तथा शास्त्रीयता से दूर स्वतंत्र एवं पृथक जीवन का प्रचेता है और इसी का साहित्य लोकसाहित्य है।

आंग्ल भाषा में लोक को Folk (फोक) तथा साहित्य को Literature कहा जाता है। लोकसाहित्य पूर्णतः लोकमानस की उपज है।लोकसाहित्य को लिपिबद्ध अभिव्यक्ति ही नहीं माना जाता, बल्कि यह वास्तविक रूप में वाचिक अथवा भाषागत अभिव्यक्ति के रूप में समाज के बीच आता है। लोकसाहित्य में प्राचीन काल के विविध आख्यान,जीवन दर्शन के तत्व तथा सभ्यता एवं संस्कृति के कई रूप निहित होते है। मानव व्यवहार के कौशल को मौलिकता के साथ लोकसाहित्य ही प्रकट कर सकता है।

डॉ. रघुवंश के शब्दों में –''लोक की अभिव्यक्ति को साहित्य कहते के साथ ही यह मान लिया गया है कि लोकगीत तथा गाथाओं आदि लोक काव्य के रूप हैं। साहित्य जीवन का सृजन ,पुनः जीने की प्रक्रिया है। लोकाभिव्यक्ति के क्षणों में भी समाज के बीच व्यक्ति अपनी सजगता में प्रमुखतः जीवन का अनुभव करता है।''

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रकट करते हुए कहा है कि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों,अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है।'

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत लिखते हैं, 'वाणी के द्वारा प्रकृत रूप में लोकमानस की सरल, निश्छल एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। इसमें जनजीवन का समग्र उल्लास उच्छवास,हर्ष-विषाद,आशा आकांक्षा,आवेग उद्वेग,सुख दुख तथा हास रुदन का समावेश रहता है।'

इन परिभाषाओं के आलोक में लोकसाहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार निर्धारित किया जाता है-

1. लोकसाहित्य व्यक्तिगत सत्ता से ऊपर उठकर समष्टिगत सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसमें वाचिक अभिव्यक्ति प्रधान होती है।
3. लोकसाहित्य प्रकृतिपरक होता है इसमें लोक जीवन की शीतल छांव महसूस की जा सकती है।
4. लोकसाहित्य की कतिपय विधाओं के निर्माता अज्ञात रहते हैं।
5. इसमें मौलिकता तथा सजकता होती है।
6. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वच्छंद रूप से हस्तान्तरित होती रहती है।
7. लोक की सत्यानुभूति तथा पैराणिक आख्यान स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य लोक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करता है। इसमें अर्थवत्ता के साथ साथ रसज्ञता भी होती है।

7.3.2 लोक साहित्य और लोकवार्ता

लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोक(Folk) तथा लोर(Lore) के मेल से बना है। फोकलोर शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के पुरातत्त्व विज्ञानी विलयम जॉन टामस ने लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के लिए किया । बाद में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे हिन्दी में 'लोकवार्ता' नाम से पारिभाषित किया। उन्ही के शब्दों में - 'लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है, लोक में बसने वाला जन ,जन की भूमि और मौलिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति,इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध इन्ही के साथ है। दरअसल लोकवार्ता समाज के निम्न वर्गों के वैचारिक क्रिया व्यापारों को पारिभाषित करती है। पश्चिमी देशों में निवास कर रही आदिवासी जन समुदायों के भाषा शास्त्रीय अध्ययन तथा लोक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप फोकलोर की विधा विकसित हुई। हिन्दी में कई विद्वानों द्वारा लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया गया है। लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार, 'लोकवार्ता लोकमानस एवं लोकतत्व का गहन,मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन है।' सुनीतिकुमार चटर्जी ने

लोकवार्ता को 'लोकयान' माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'लोकसंस्कृति'मानते हैं अन्य विद्वानों ने इसे लोकविज्ञान,लोकप्रतिभा,लोकप्रवाह,लोकज्ञान, लोकशास्त्र तथा लोकसंग्रह आदि के रूप में ग्रहण किया है।

लोक साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान प्रोफेसर डी0 एस0 पोखरिया ने अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है , 'लोकसाहित्य लोकवार्ता का एक अंग है, किन्तु अंग होते हुए भी वह एक स्वतंत्र और पृथक विद्या है। लोकवार्ता का क्षेत्र वृहत और व्यापक है। लोकवार्ता में लोक परम्पराओं प्रथाओं और लोकविश्वासों लोकसाहित्यों नृतत्व समाजशास्त्र भाषाशास्त्र इतिहास तथा पुरातत्व आदि सबका अध्ययन समाविष्ट है। यह संपूर्ण लोकसंस्कृति का व्यापक अध्ययन करने वाला गतिशील विज़ान हैं। यहाँ हमें इस बात को मानना पड़ेगा कि लोक में उत्पन्न हुई विधा लोकविधा तो कही जा सकती हैं। अर्थात उसे लोकसाहित्य तो आसानी से कहा जा सकता हैं, किन्तु जो विधा परिमार्जित होकर मनोविज्ञान की गूढ़ संकल्पनाओं का बोध कराती हुई आदिमजातीय तथ्यों से परिचित कराती है । उसे लोकवार्ता कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए । विस्तृत क्षेत्र में आप लोकवार्ता के प्रभाव को देखेंगे तथा उस वार्ता के जरिए साहित्यसम्मत उद्देश्यों के वैज्ञानिक प्रभावों का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त कर सकेंगे ।

लोकसाहित्य जहाँ केवल अनुभूति की साहित्यिक विधाओं को प्रकट करता है, वहीं लोकवार्ता समष्टिगत ऐतिहासिक तथ्यों, पुरातात्विक मान्यताओं एंव भाषाशास्त्र के लक्षणों को भी रूपायित करती है। इससे हमें इन दोनों को समझने में आसानी हो जाती है।

7.3.3 लोकसाहित्य और परिनिष्ठत साहित्य

आप साहित्य के विषय में पढ़ते आए हैं। यहाँ हम लोकजीवन के साहित्य के विविध रूपों को समझने का प्रयास करेंगे।परिनिष्ठित साहित्य को लिखित साहित्य भी कहा जाता है। जो साहित्य सुदीर्घ साहित्य परंपरा का निर्वहन करता हुआ लोक की भावभूमि से उठकर मानकों,परिष्कार की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है, उसे हम अभिजात या परिनिष्ठित साहित्य के नाम से जानते हैं।अभिजात साहित्य का प्रदुर्भाव लोक साहित्य से हुआ माना जाता है। उदाहरण के लिए कुमाऊँ क्षेत्र की जागर परंपरा को ही ले लें। जागर एक कुमाउनी लोक नृत्य की गायन शैली मिश्रित विधा है। जागर लगाने का क्रम इतिहास काल में प्रारंभ से माना जाता रहा है। अशिक्षित जागर गायक वर्षो से अपने दन्तवेद से इस विधा को संजोए हुए है। कतिपय स्थितियो में हम पाते हैं कि जागर के कुछ नमूने विचित्र भाषा में लिखे गए प्राचीन भोजपत्रों या अन्य पत्रों में मिलते हैं, किन्तु जागर गाने वाला जगरिया इस लिखित पत्रों को देखे बिना सुन्दर लयात्मक अंदाज में जागर लगाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा स्वंय में पुष्ट है। उसमे अभिव्यक्ति की ठोस क्षमता है। किन्तु कालान्तर में विकास के साथ साथ जागर जैसी अन्य कई गायन शैलीपूर्ण विधाएँ टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से ध्वन्यालेखित होती गई। उसका अभिजात या लिखित साहित्य में परिवर्तन होता गया।

परिनिष्ठत साहित्य के विषय में देव सिहं पोखरिया लिखते हैं, 'लोकसाहित्य परंपरा मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आई। साहित्य लिखित और परिष्कृत रूप "अभिजात" नाम से अभिहित किया जाता रहा। लोक की यह परंपरा ही विकास और परिवर्द्धन के विविध सोपानों को पार करती हुई लोक कवि के कंठ में पीयूषवर्षी वीणा के समान अमृत वर्षा करती रही। वेदों का "श्रुति " नाम भी इस बात का परिचायक है कि वैदिक परंपरा भी अपने प्रारंभिक रूप में मौखिक रूप में प्रचलित थी। इसलिए वैदिक साहित्य को लोक जीवन की आदि सम्पदा कहा जाता सकता है। बाद में लक्षणकारों द्वारा लैकिक साहित्य को शास्त्रीय रूप प्रदान किया गया। निरंतर प्रगतिशील परिवर्तन शील सभ्यता और संस्कृति लोकमानस के परिवर्तन की स्थितियों के साथ ही साहित्य के स्वरूप को भी परिवर्तित करती रही। समय के साथ ही उसमें गति, युगबोध और मूल्यों की नवीनता ने प्रकृष्ट रूप से स्थान प्राप्त किया। इसी कारण लोककवि वैदिक परंपरा से भी आगे बढ़ आया और लोक जीवन के साथ ही उसके अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष भी परिवर्तित होकर नए आयामों का रेखांकन करने लगे।'

उपर्युक्त अभिमतों तथा परिभाषाओं के आलोक में आप लोकसाहित्य को मौलिक सहज तथा परंपरा से चली आ रही लोक सम्मत विधा मानेंगे तथा लोकसाहित्य का सुव्यवस्थित , अभिजात तथा लिखित स्वरूप को परिनिष्ठित साहित्य के रूप में समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प का चयन कीजिए

1. परिनिष्ठित साहित्य को क्या कहा जाता है ?

   क. लोकसाहित्य

   ख. ग्राम साहित्य

   ग. अभिजात साहित्य

   घ. आदिम साहित्य

2. लोकसाहित्य की परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. लोकवार्ता से आप क्या समझते हैं?

7.4 कुमाउनी लोकसाहित्य का इतिहास

कुमाऊँ में आरंभिक काल से प्रचलित मौखिक साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है।यद्यपि कुमाउनी में हमें दो प्रकार का साहित्य मिलता है, किन्तु मौखिक परंपरित साहित्य के

निर्माता रचयिता अज्ञात होने के कारण लोगों के दन्तवेद या टेपरिकार्डर आदि के माध्यम से लोकसाहित्य यत्र तत्र किसी रूप में उपलब्ध हो जाता है। कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें पता चलेगा कि जिन रचनाकारों के कालक्रम का हमें पता है या जिनके द्वारा लिखा गया साहित्य हमें उपलब्ध है, हम उसे इतिहास में जोड़ते हुए लिखित या मौखिक का भेद किए बिना अध्ययन की समग्र सामग्री के रूप में स्वीकार करेंगे।

कुमाउनी भाषा में कविता, कहानी , निबंध तथा नाटक तथा अन्य विधाओं की रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इतिहास काल में समय समय पर विभिन्न शासनों का प्रभाव यहाँ के साहित्य पर भी पड़ा। इसीलिए संस्कृत,बगंला,उर्दू आदि भाषाओं का प्रभाव भी कुमाउनी लोकसाहित्य में देखा जा सकता है।

प्रो. शेर सिहं विष्ट के अनुसार, “ कुमाउनी में लिखित शिष्ट साहित्य की परंपरा अधिक प्राचीन नहीं है। यद्यपि लिखित रूप में कुमाउनी भाषा का प्रयोग ग्यारहवी सदी से उपलब्ध ताम्रपत्रों, सनदों एवं सरकारी अभिलेखों में देखने को मिलता है,परन्तु साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उसका लिखित रूप गुमानी (1790-1846 ई0) से प्रारंभ होता है। गुमानी ने जिस तरह की परिष्कृत कुमाउनी का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है, उससे लगता है कि उससे पूर्व भी कुमाउनी में साहित्य लिखा जाता रहा होगा। लेकिन उसकी कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक सामने नहीं आ पाई है।

कुमाउनी के लिखित साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय तत्कालीन स्थानीय अखबारों को जाता है जिसमें ‘अल्मोड़ा अखबार’, ‘कुमाऊँ कुमुद’, ‘शक्ति’,’अचल’ आदि प्रमुख हैं। डॉ. विष्ट ने कुमाउनी के लिखित साहित्य को कालक्रमानुसार तीन चरणों में बाटा है-

प्रारंभिक काल (1800 ई. से 1900 ई.)

मध्य काल (1900 ई. से 1950 ई.)

आधुनिक काल (1950 ई0 से अब तक)

कुमाउनी साहित्य का प्रारंभिक दौर काफी उतार चढ़ावों से भरा था। सन् 1790 ई्. में चन्द शासक के पतन के फलस्वरूप कुमाऊँ क्षेत्र गोरखा शासन के अधीन हो गया था। इसके उपरांत सन् 1815 में कुमाऊँ अंग्रेजी शासक के कब्जे में आ गया। प्रत्येक शासन काल में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का असर उस समय की रचनाओं पर पड़ा। गुमानी पन्त ने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कविताओं के माध्यम से आवाज उठाई। गुमानी पतं को लिखित कुमाउनी साहित्य का प्रथम कवि माना जाता है। इनका जन्म सन् 1790 में काशीपुर में हुआ। इन्होंने रामनाम, पंचपंचाशिका,राममहिमा वर्णन,गंगाशतक,रामाष्टक जैसी महान कृतियों की रचना की। इनका अवसान सन् 1848 ई. को हुआ। गुमानी के समकालीन कवि कृष्णापाण्डे (सन् 1800-1850 ई.) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में भी

सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। इनकी फुटकर रचनाओं में 'मुलुक कुमाऊँ' तथा 'कलयुग वर्णन' प्रमुख हैं। सन् 1848 ई. में फल्दाकोट में जन्मे शिवदत्त सती मध्यकालीन कुमाउनी कवि हैं। ये वैद्यक थे। इन्होंने घस्यारी नाटक मित्र विनोद नामक पुस्तकें लिखी।

गौरीदत्त पाण्डे 'गौर्दा' भी मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में अपना अलग स्थान रखते हैं। इनका जन्म 1872 ई. को देहरादून में हुआ तथा मृत्यु 1939 ई. को हुई। इनकी रचनाओं की प्रासंगिता के कारण हम इन्हें वर्तमान पाठ्यक्रम में भी पढ़ते है। इनकी कविताओं का संकलन 'गौरी गुटका' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा इनकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रथम वाटिका तथा छोडों गुलामी खिताब है। अंग्रेजी शासक के अत्याचारों के विरूद्ध इन्होने बड़ा काव्यांदोलन किया था।आधुनिक युग के छायावादी काव्य के आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का जन्म अल्मोड़ा जनपद के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी कुमाउनी में 'बुरूश'नामक कविता प्रकृति का साक्षात निरूपण करती है। पंत जी का हिन्दी साहित्य जगत में भी बहुत बड़ा नाम है। श्यामाचरण पंत (1901 ई. से 1967) का जन्म रानीखेत में हुआ। इनके द्वारा कई फुटकर रचनाएँ लिखी गई। कुमाऊँ के जोड़ एवं भगनौल विधा के ये एक अच्छे ज्ञाता थे। 'दातुलै धार ' इनकी विख्यात प्रकाशित पुस्तक है।

अल्मोड़ा में सन् 1910 को जन्में चन्द्रलाल चौधरी ने कुमाऊँ की प्रसिद्ध लोक विधा कहावतों पर आधारित पुस्तक 'प्यास' सन् 1950 में लिखी । इनका निधन वर्ष 1966 में हुआ। इनके अलावा मध्यकालीन कुमाउनी कवियों में जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती पंत, बचीराम, हीराबल्लभ शर्मा, ताराराम आर्य, कुलानन्द भारतीय तथा पीताम्बर पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। सन् 1950 से लेकर वर्तमान समय तक का रचनाकाल आधुनिक काल कहलाता है। स्वतंत्रता के बाद कुमाउनी रचनाकारों की रचनाओं में आए बदलाव को हम आसानी से देख सकते है। समय के साथ साथ ठेठ कुमाउनी का रूप मानक भाषा की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। युगीन प्रभाव के साथ साथ रचनाओं के अर्थग्रहण शैली में परिवर्तन देखा जा सकता है।

आधुनिक युग के कवियों में सर्वप्रथम चारूचंद पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन् 1923 को हुआ। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'अड.वाल' सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने पूर्ववर्ती कवि गौर्दा के काव्य दर्शन पर चर्चित पुस्तक लिखी। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ ब्रजेन्द्र लाल साह का जन्म 1928 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। रंगमंच से जुड़ाव होने के कारण इनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। इसी क्रम में नंदकुमार उप्रेती जिनका जन्म सन् 1930 को पिथौरागढ़ में हुआ, अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनकी 'भुलिनिजान आपुण देश',तीन कांड प्रकाशित पुस्तकें हैं। आधुनिक कुमाउनी के लोकप्रिय कवि शेर सिहं विष्ट 'अनपढ़' सन् 1933 में जन्मे थे। गीत एवं नाटक प्रभाग के एक जाने माने हास्य कलाकार के रूप में भी उनका नाम जन जन की जुबान पर आज भी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- 'मेरि लटि पटि', 'जाँठिक घुडु.र', तथा 'फच्चैक (बालम सिहं जनोटी के साथ)। बंशीधर पाठक 'जिज्ञासु' का जन्म 1934 ई. को अल्मोड़ा में हुआ । इनकी सुप्रसिद्ध रचना 'सिसौण' है। हिन्दी साहित्य के जाने माने मूर्धन्य

साहित्यकार रमेशचन्द्र साह का जन्म स्थान अल्मोड़ा है। इन्हें 'पद्म श्री' तथा 'व्यास सम्मान' जैसे महानतम अलंकरणों से विभूषित किया जा चुका है। 'उकाव हुलार' इनकी कुमाउनी में प्रतिष्ठित पुस्तके है। श्रीमती देवकी महरा का जन्म सन् 1937 ई. को अल्मोड़ा में हुआ। इनकी पुस्तकों में वेदना तथा विरहानुभूति दिखाई देती है। 'प्रेमाजंलि', 'स्वाति', 'नवजागृति' तथा उपन्यास 'सपनों की राधा' इनकी प्रकाशित कृतियाँ है।सन् 1939 को बेरीनाग के गढ़तिर नामक ग्राम में जन्मे बहादुर बोरा 'श्रीबंधु' की रचनाएँ विविध पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता की झलक मिलती है। मथुरादत्त मठपाल कुमाउनी के एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1941 को भिक्यासैण (अल्मोड़ा) में हुआ। ये 'दुदबोलि' कुमाउनी काव्य का संपादन वर्षों से करते आ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कुमाउनी साहित्य में अनेक पुरोधा रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं- यथा गोपाल दत्त भट्ट ,भवानीदत्त पंत, दीपाधार, हीरा सिहं राणा, गिरीश तिवारी 'गिर्दा',महेन्द्र मटियानी, दुर्गेश पंत,राजेन्द्र बोरा (अब त्रिभुवन गिरी), जुगल किशोर पेटशाली, बालम सिहं जनोटी,दामोदर जोशी 'देवांशु' डॉ. शेरसिहं विष्ट ,डॉ. देवसिहं पोखरिया , जगदीश जोशी, रतन सिहं किरमोलिया, उदय किरौला, दीपक कार्की, हेमन्त विष्ट, श्याम सिहं कुटौला, डॉ. दिवा भट्ट , मोहम्मद अली अजनबी, रमेश पाण्डे राजन, देवकी नंदन काण्डपाल, महेन्द्र सिहं महरा 'मधु' सहित वर्तमान के अन्य लेखक एवं कवि।

7.4.1 कुमाउनी लोकसाहित्य तथा कुमाउनी साहित्य

युग युगों से लोकमानस की स्वच्छंद स्वतंत्र अभिव्यक्ति को लोकसाहित्य की परिधि में रखा जाता है। यहाँ आप 'जो लिखा ना गया हो किन्तु गाया गया ' को लोकसाहित्य समझेंगे , लोक की भावभूमि पर मौलिक और स्वाभाविक रूप से जो कुछ उच्चरित होता रहा या वह लोकरंजक गुणों से परिपुर्ण था, जिसे तत्कालीन व अद्यतन समाज ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया, को लोकसाहित्य कहना उचित प्रतीत होता है। हालाँकि कालान्तर में यही वाचिक अभिव्यक्ति परिनिष्ठित या लिखित साहित्य के रूप में सर्व समाज के समक्ष आई, किन्तु अपने उद्भव एवं विकास काल से जो कुछ बुजुर्गों के मुख से गाया गया तथा सुना गया उसे लोक का साहित्य या लोकसाहित्य कहा गया। उदाहरण के लिए फूलदेई के त्योहार में बच्चें घर घर जाकर फूल चढ़ाते हुए कहते हैं ।-

" फूल देई छम्मा देई
दैणौ द्वार भर भकार
त्वी देली सो नमस्कार।''

घुघुतिया त्यार (मकर संक्रान्ति) पर्व पर कुमाऊँ में कौवे बुलाने का प्रचलन है-

''काले कव्वा काले
घुघुती मावा खा ले
तु ल्हि जा बड़

म्यकैं दिजा सुनु घड़ा ''

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परंपरा आरंभिक काल से चली आ रही है। इसका प्रदुर्भाव कैसे हुआ ? ये किसने रचा ? इस संबंध में कोई सटीक उत्तर प्राप्त नहीं होता। जो पढ़ना लिखना कभी नहीं जानते थे। वे लोग भी इसे आसानी से कह जाते है।लिखित साहित्य के अस्तित्व में आते ही समस्त या कुछ कुछ वाचिक परंपराओं का प्रतिफलन लिखित साहित्य में किया जाने लगा। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में भी कतिपय लोक सम्मत विधाएँ ऐसी है जिन्हें केवल दन्तवेद के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। अनुभूति के धरातल पर उर्वर लोकमानस की उपज ही लोकसाहित्य है।

कुमाउनी साहित्य लोकसाहित्य का ही लिखित एवं परिमार्जित रूप है। मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन कुमाउनी लोकसाहित्य की परंपरा का विशुद्ध लिखित रूप कुमाउनी साहित्य के नाम से जाना जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र की विविध भाषा बोलियों में कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। डी0 एस0 पोखरिया ने लिखा है, ' परिनिष्ठत या अभिजात साहित्य को लिखित साहित्य के रूप में कुमाउनी साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। परिनिष्ठित साहित्य में युगीन परंपराओं को मर्मज्ञ अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। इस साहित्य में क्रमिक विकासवादी दृष्टिकोण से रचनाकार ठेठ भाषा का परिमार्जन कर विषयवस्तु को ग्राहय बनाता है।कुमाउनी लोकसाहित्य के ध्वन्यालेखन तथा मुद्रण आदि से कुमाउनी साहित्य का अस्तित्व बहुत विकसित हुआ है। कुमाउनी साहित्य के परिनिष्ठित स्वरूप पर शोधकार्य करने वाले अनुसंधाताओं को विषयवस्तु को समझने में आसानी हो जाती है। कुमाउनी लिखित साहित्य के द्वारा नवीन भावबोधों एवं कलापक्ष पर आसानी से विवेचना की जा सकती है। कुमाउनी साहित्य में लोकसाहित्य की तरह गेयता को लिखने या अभिव्यक्त करने में कठिनाई जरूर होती है, फिर भी गेय विधाओं को कुमाउनी साहित्य में आसानी से लिखने के लिए हलन्त तथा अन्य स्वर व्यंजनों को यथास्थान अंकित किया जाता है ताकि पाठकवर्ग या विद्यार्थी उसे आसानी से समझ सकें।

7.4.2 कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकसाहित्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढ़ग से वगीकृत किया है।प्रो. पोखरिया के अनुसार, 'परिनिष्ठित या अभिजात साहित्य की भाँति देखने व सुनने की योग्यता के आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य के भी दो भेद किये जा सकते हैं- (1)श्रव्य और (2)दृश्य । कुमाउनी लोकसाहित्य की कई विधाओं में श्रव्य और दृष्य के गुण एक साथ पाए जाते हैं कुमाउनी के झोड़ा ,चाँचरी, छपेली आदि गीत रूप श्रव्य भी हैं और दृश्य भी। 'लोक जीवन की अभिव्यक्ति को प्रायः गेय शैली में देखा सुना जा सकता है। लयात्मक आधार पर कुमाउनी लोकसाहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है', (1)पद्य (2)गद्य तथा (3)चम्पू (गद्य पद्यात्मक विधा) पद्य के अन्तर्गत विविध,लोकगीत, गद्य के अन्तर्गत लोककथा,मुहावरे,कहावतें तथा मंत्र साहित्य तथा चम्पू के अन्तर्गत गद्य,पद्य मिश्रित

लोकगाथाएँ आती हैं। प्रो. पोखरिया ने कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण अधोलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया है-

(1) लोकगीत

(2) लोकगाथा

(3) लोककथा

(4) लोकोक्ति या कहावत

(5) मुहावरे

(6) पहेलियाँ

(7) लोकनाट्य तथा

(8) प्रकीर्ण लोक साहित्य।

डॉ. कृष्णानंद जोशी ने बटरोही द्वारा पुस्तक 'कुमाउनी संस्कृति ' में कुमाऊँ का लोकसाहित्य विषयक वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) पद्यात्मक (गेय)

(अ) धार्मिक गीत

(ब) संस्कार गीत

(स) ऋतु गीत

(द) कृषि गीत

(इ) उत्सव तथा पर्व संबंधी

(ई) मेलों के गीत

(य) परिसंवादात्मक गीत

(र) न्योली तथा जोड़

(ल) बालगीत

(2) गद्य पद्यात्मक (चम्पू काव्य)

(अ) प्रेम प्रद्यान काव्य: मालूसाही

(ब) वीरगाथा काव्य: भड़ौ- (सकराम कार्की, अजीत बोरा, रणजीत बोरा,सालदेव, जगदेव पंवार आदि)

(स) लोक काव्य – रमोला

(द) ऐतिहासिक गाथाएँ

(3) गद्य

(अ) लोक कथाएँ

(ब) लोकोक्तियाँ

(स) पहेलियाँ

(द) लोक प्रचलित जादू टोना

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ लोकसाहित्य के ज्ञाताओं ने कुमाउनी लोकसाहित्य को लगभग एक समान रूप से वर्गीकृत किया है। आप दोनों वर्गीकरणों की तुलना से पाएँगे कि मुख्य रूप से गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य वर्गीकरण का मुख्य आधार हैं। इस के बाद उप शीर्षकों में गेयता के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। गद्य पद्य तथा चम्पू काव्य के अन्तर्गत उपबिन्दुओं को समझते हुए हम कुमाउनी लोकसाहित्य का विशद वर्गीकरण कर सकेंगे

बोध प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को संक्षेप में समझाइए

(2) आधुनिक काल के चार कुमाउनी रचनाकारों के नाम तथा उनकी रचनाओं के नाम लिखिए

सही विकल्प चुनिए

3 (क) दृश्य श्रव्य लोकगीत है-

(अ) चाँचरी

(ब) न्योली

(स) संस्कार गीत

(द) जोड़

(ख) 'भड़ौ' किस प्रकार का काव्य है ?

(अ) प्रेमप्रधान काव्य

(ब) लोक काव्य

(स) वीरगाथा काव्य

(द) ऐतिहासिक गाथा

7.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

कुमाउनी लोकसाहित्य का अर्थ एवं परिभाषा समझ चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य और परिनिष्ठित साहित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी के उद्भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर चुकें होंगे।

कुमाउनी लोकसाहित्य तथा लिखित साहित्य के विद्वानों के विचारों से अवगत हो चुके होंगे ।

कुमाउनी लोकसाहित्य के वर्गीकरण को समझ गए होंगे।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

परिनिष्ठित - लिखित

अभिजात - सभ्य , सुसंस्कृत

वाचिक - मौखिक

पर्यवसान - निथार या सार

ध्वन्यालेखन - टेपरिकार्डर से सुनकर लिखना

जागर - जागरण,एक कुमाउनी लोकनृत्य

चम्पू - गद्य तथा पद्यात्मक काव्य

पीयूषवर्षी - अमृत बरसाने वाली

गेय - गाने योग्य

परिमार्जन - शुद्ध करना

अन्तर्भाव - आत्मसात या ग्राह्यता का गुण

दन्तवेद - वाणी द्वारा उच्चरित

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.3 के उत्तर

1 (क) अभिजात साहित्य

7.4 के उत्तर

अति लघु उत्तरी प्रश्नों के उत्तर

2 (अ) शेर सिहं विष्ट ‘अनपढ़’, रचनाएँ ‘मेरि लटि पटि’, ‘जांठिक घुडु.र’, ‘हसणै बहार’

(ब) गोपालदत्त भट्ट -’अगिनि आँखर’, ’फिर आल फागुण’,’गहरे पानी पैठ’,’आदमी के हाथ’।

(स) देवकी महरा - ’सपनों की राधा’, ’नवजागृति’, ’स्वाति’ ,’प्रेमांजलि’।

(द) शेर सिहं विष्ट - ’भारत माता’, ईजा’, उचैण।

3 (क) चाँचरी

(ख) वीरगाथा काव्य

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 पोखरिया,देव सिहं, लोक संस्कृति के विविध आयामः मध्य हिमालय के संदर्भ में, प्रथम संस्करण,1994,पृ -2-7

2. हिन्दुस्तानी,भाग 20 अंक 02 अप्रैल - जून 1959 में ’लोकवार्ता शीर्षक निबंध ’

3. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ -3

4. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि , डॉ. विद्या चौहान, पृ - 41

5. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र ,पृ -4

6 . हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ - 682

7. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास,भाग - 16 प्रस्तावना, पृ - 14

8. कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास डॉ. शेर सिहं विष्ट, पृ -109 -112
9. उत्तराँचल पत्रिका ,सं0 दीपा जोशी,नई दिल्ली, पृ -32

7.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) कुमाउनी संस्कृति , सं. बटरोही ,रूद्रपुर

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य,डॉ. देवसिहं पोखरिया,डॉ. डी. डी. तिवारी,अल्मोड़ा

(3) कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक व सास्ंकृतिक अध्ययन , डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय , बरेली

(4) कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य डॉ.त्रिलोचन पाण्डे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,लखनऊ

(5) कुमाऊँ हिमालय: समाज एवं संस्कृति , डॉ. शेरसिहं विष्ट, अल्मोंडा

(6) कुमाउनी भाषा,साहित्य और संस्कृति, डॉ. देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा

(7) कुमाऊँ का इतिहास, बद्रीदत्त पाण्डे, अल्मोड़ा

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य का परिचय देते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

(2) कुमाउनी लोकसाहित्य का वर्गीकरण कीजिए तथा इसके गद्य एवं पद्य स्वरूप की विवेचना कीजिए।

(3) लोकसाहित्य क्या है? कुमाउनी परिनिष्ठित एवं लोकसाहित्य का स्वरूप निर्धारण कीजिए।

इकाई 8 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
8.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ
8.4.2.कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.10 सहायक ग्रंथ सूची
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहे हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से

हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगो की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहे हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्घाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहे हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहे लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

(1) 19वीं सदी का साहित्य

(2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य

(3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होनें लगभग 18 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका ,गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई0तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखी। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई0 में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े ,चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी ,जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख है।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगी। भाषा भी अपने परिष्कार तथा परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई0 को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होनें लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहे। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं , मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौंण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके

अतिरिक्त देवकी महरा,गोपाल दत्त भट्ट ,किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम0डी0अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी ,श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

8.3.1 कुमाउनी लोकगीतः स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उ़द्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं। रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता हैं। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का

सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उ़द्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते है कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालिल्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व मे लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी, प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों , विशेषज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वैषयिक तथा वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्वानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

I. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
II. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
III. तर्क सम्मत- बैर
IV. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

I. अनिवार्य
II. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्धान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत

(4) जाति विषयक गीत

(5) व्यवसाय संबंधी गीत

(6) बाल गीत

(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती।इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहे हैं। रामचरित मानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र जी कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन

जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत

तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया

रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,

तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाआंे द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये,थाति को थत्याल

ध्यायनु भयै , ध्यायनु भैय ,भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,

धन की धौताला धन की धौ,

यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़

पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै

विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।

पैलिक सगुन पिडली पिठाक

उति है सगुन दई दई माछ।

पिड.ली पिठाक कुटल है

खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बंसत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हेरी फेरी ओ गरमा रितु,

मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊँ में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यो में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीतः- लोक के विविध उत्सवों, पर्वो पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शो के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई

भरभकार दैणी द्वारा

जतुकै दिछा उतुकै सई

फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

‘काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले

तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़

काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीत है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीष के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली

दुबड़ी कैंछ दुबै चड़ि जूलो

चेली कैंछ मैं मैतुलि जूंलो, आओ चेलि खिलकन मैत

तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीतः- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटै कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,

मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- ‘हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि ‘रघी’ घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य ‘फ्लैश बैक’ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,

पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्मान्तक पीड़ा का भाव देखा जा सकता हैं। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे।

बाल गीत - व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पंसद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता हैं। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वत: स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ

ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो

सात समुन्दर गोपी चन्दर

बोल मेरी मछली कितना पानी

(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?

   I. बालगीत
   II. नृत्यगीत
   III. पर्व संबंधी गीत
   IV. भगनौल

2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -

   I. गुमानी पंत
   II. रामदत्त पंत

III. गौरीदत्त पाण्डे
IV. शेरसिहं विष्ट

3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?

I. संस्कार गीत
II. ऋतु गीत
III. कृषि संबंधी गीत
IV. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए ।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तंरगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया हैं। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष ,विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वत: उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनकों रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अत: हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षो से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित हैं। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्योली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्योली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मान्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है।सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान,नामकरण,अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेषता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करूणा विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमीदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ ', मलाऊँ, आबाद,बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षो पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वंय में अनेक विशेषताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती है। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अत: कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ हैं, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

8.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है । ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की

पर्याप्त क्षमता होती है। प्रोफेसर देवसिहं पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा , सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय , प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष ,पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि,पूजा, टोने टुटके , आशा,निराशा,मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

(1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।

(2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।

(3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।

(4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहे जाते हैं।

(5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।

(6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।

(7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।

(8) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टत: लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों , धर्मो,अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे दिए गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरूष एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते है कहलाती है -

I. बैर
II. जागर
III. झोड़ा
IV. जोड़

2 - संवादक मूलक लोकगीत है -

I. झोड़ा
II. छपेली
III. चाँचरी
IV. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

I. छपेली
II. भगनौल
III. फाग
IV. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहे हैं।आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ के जनमानस की प्रकृतिपरक , मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं ,फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहे हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं।कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिहं पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी

संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्योली ,जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है । ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलो में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है।न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णो का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली
(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है । गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढ़ग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेषता को प्रकट करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर ' जोड़' गाया जाता हैं। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार
(अर्थात दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व,उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरूष पैरों एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अतं और आदि में ’छम’ का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम’ कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में ’झ’ वर्ण की सरलता के कारण ’ज’ वर्ण को ’झ’ में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना

पटि में पटवारि हुँछौ गौं में पधाना

आब जै के हुँ छै खणयूंणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत। यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक होता है। शेष समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते है। स्त्री पुरूष दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरूष होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढ़ग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई

भाबरै की लाई

कैले मेरि साई देखि

लाल साड़ि वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परंेपरा में बैर का अर्थ ’द्वन्द्व’ या ’संघर्ष’ माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्घाटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना , वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते है। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधरित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को ’फाग’ कहा जाता है। कही कही होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यो यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर ’शकुनाखर ’ और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। ’फाग’ गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालयों में ’फाग’ पुरूष गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम ’फाग’ के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही ’फाग’ का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान,जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म

विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को ’गीदार’ कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि

काज ए अति नीको शकूना बोल दईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढ़ग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1- ’न्यौली’ का एक उदाहरण दीजिए।

2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?

3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?

4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

8.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
- आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेषताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

8. 7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष

छपेली - क्षिप्रगति वाली

8. 8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

8.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

8. 9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112

2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)

3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,

4. पूर्वोक्त , पृ - 126

5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,

6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)

7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,

8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.

9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिहं पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12

10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211

11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25

12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

8. 10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिहं पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो

2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे

3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली

4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे

6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 9 कुमाउनी लोकगाथाएँ - इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप
    9.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप
    9.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएँ:ऐतिहासिक स्वरूप
    9.3.3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ
9.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
    9.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण
    9.4.2 कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व
9.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण
9.6 सारांश
9.7 महत्त्वपूर्ण शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक पुस्तक सूची
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की अपनी लोकसंस्कृतिक पहचान होती है। ये पहचान उस राष्ट्र के लोकजीवन में जीवंत लोकसाहित्य के विविध पहलुओं द्वारा चरितार्थ होती है। आप देखेंगे कि सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत तथ्य ही एक गौरवशाली अतीत से लोगों को परिचित कराते हैं। कुमाउनी लोकगाथाएँ भी यहाँ के ऐतिहासिक स्वर्णिम अतीत का परिचय प्राप्त कराती हैं। आदिकाल से प्रचलित लोककथात्मक आख्यानों की गवेषणा लोकगाथाओं के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। इस इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ प्रस्तुत करते हुए उसके

इतिहास एवं स्वरूप पर चर्चा की जाएगी। कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके भावपक्षीय पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। स्थानीय तत्व तथा प्रकृति चित्रण से लोकगाथाएँ कितनी प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। इस पर भी व्यापक दृष्टि डाली गई है। इकाई के उत्तरार्द्ध में कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

लोकगाथाओं में निहित सांस्कृतिक तत्वों के समाजबद्ध अध्ययन के फलस्वरूप प्रस्तुत इकाई उपादेय समझी जा सकती है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

(1) कुमाउनी लोकगाथाओं के इतिहास एवं स्वरूप को जान सकेंगे।

(2) कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित तत्कालीन पात्रों के चरित्रों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

(3) लोकगाथाओं के विविध रूपों को वर्गीकरण के आधार पर समझ जाएंगे।

(4) लोकगाथाओं की विशेषता के द्वारा कुमाउनी लोक मानस के अनुभूति पक्ष को जान पाएंगे।

(5) यह निर्धारित कर सकेंगे कि लोकसाहित्य के विकास में कुमाउनी लोकगाथाएं किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

9.3 कुमाउनी लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप

लोकगाथा प्राचीन आख्यानमूलक गेय रचना है। प्रारंभ से लोकपरंपरा के रूप में प्रचलित लोकगाथाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। जिस प्रकार वाचिक परंपरा से लोकसाहित्य की कहावतें आदि विधाएँ समृद्ध हुई हैं, ठीक उसी प्रकार लोकगाथाओं में भी प्राचीन काल की घटनाक्रम तथा चरित्रों का सतत उल्लेख होता रहा है। इतिहास काल से प्रचलित इन गाथाओं को किसने रचा? कैसे रचा? इस संबंध में सटीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना जरूर है कि ये प्राचीन गाथाएं या तो महाभारत रामायण कालीन परिदृश्य को प्रकट करती हैं, या फिर तत्कालीन परिस्थितियों में लोगों द्वारा दिन रात के अथक चिंतन द्वारा अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाली वृत्ति के रूप में परिलक्षित होती हैं।

प्रोफेसर डी0एस0 पोखरिया ने लोकगाथाओं के संबंध में कहा है-‘ लोक की भाषा अथवा बोली में पारंपरिक स्थानीय अथवा पुरा आख्यानमूलक गेय अभिव्यक्ति लोकगाथा है। इन गेय कथा

प्रबंधों के लिए अंग्रेजी के फोक एपिक या बैलेड शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में लोकगाथा शब्द का प्रयोग होता है। लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है। इसमें प्रामाणिक मूलपाठ की कमी होती है। संगीत और नृत्य का समावेश होता है। स्थानीयता की सुवास होती है। अलंकृत शैली का अभाव होता है। कथानक बड़ा होता है टेक पदों की आवृत्ति की बहुलता होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व तथा उपदेशात्मकता का अभाव होता है। यह मौखिक रूप में कंठानुकंठ परंपरित होती है।

चूंकि यहां हम देखते है कि लोकगाथाओं के रचनाकार अज्ञात हैं अतः इतिहास काल क्रम को तय करना असंभव सा प्रतीत होता है। इतना अवश्य पाया जा सकता है कि इन लोकगाथाओं में निहित पौराणिक आख्यान अपने अपने समय का उल्लेख करते हैं। कुमाउनी में पौराणिक धार्मिक , वीरतापूर्ण, प्रेम परक तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं की प्रचलित अवस्था के अनुसार ही हम उनके स्वरूप इतिहास का मोटा अनुमान लगा पाते हैं।

कुमाउनी लोकगाथाओं में मालूसाई, आठूँ ,रितुरैण, ठुलखेत, घणेली, भड़ा आदि गाथाओं के समान कई गाथाएं प्रचलित हैं। हुड़कीबौल में भी लोकगाथा का गायन किया जाता है। संदर्भ कथा को आत्मसात करने वाली विधा के रूप में लोकगाथाएं एक अप्रतिम गेय आख्यान हैं, जो प्रारंभ से लेकर वर्तमान काल तक समाज को एक सरस भाव से आप्लावित करती रही है। कहीं-कहीं मालूसाही जैसी लोकगाथा प्रेमपरक मर्मभेदी कथा प्रसंग को प्रकट करती हैं, तो कहीं ‘जागर’ जैसी गाथा सैकड़ों छोटी -छोटी कथात्मक आख्यानों को गायन नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करती है।

9.3.1 कुमाउनी लोकगाथाएँ : अर्थ एवं स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को समझने से पूर्व गाथा शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। कुमाऊं की लोकगाथाओं पर शोधकार्य कर चुके डॉ0 उर्वादत्त उपाध्याय का कहना है‘गाथा बड़ा ही प्राचीन शब्द है। ब्राह्मण ग्रंथों में गाथा शब्द का प्रयोग आख्यानों के लिए हुआ है। गाथा को प्राचीन प्राकृत आदि जन भाषाओं में ‘गाथा’ कहा गया है। जन साहित्य तथा प्राकृत भाषाओं में गाथा विधा इतनी प्रिय हुई है कि प्राचीन, पालि, मागधी तथा जैन प्राकृत भाषाओं में गाथा साहित्य अपनी समृद्धि के साथ विकसित हुआ।’

डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (ना0प्र0स0) 16वां भाग की प्रस्तावना में लोकगाथा को पारिभाषित करते हुए लिखा है- ‘लोकगाथा वह प्रबंधात्मक गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता हो।’ प्रो0 कीट्रीज ने गाथा के संबंध में कहा है कि बैलेड वह गीत है, जो कोई कथा कहता हो।

न्यू इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक का अभिमत है- ‘बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो।’

डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने उक्त परिभाषाओं के आलोक में लिखा है- ''गाथा गेय तत्व से युक्त किसी लोकप्रिय आख्यान पर आधारित वह लोकप्रबंध काव्य है, जिसमें लोकजीवन की अनुभूतियां और अभिव्यक्तियों का सहज प्रयोग किया जाता है।

यहां आप देखेंगे कि कुमाउनी लोकगाथाओं में कुमाऊँ की विषम भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप लोकमानस की अभिव्यक्ति जन-जन के जीवन को रससिक्त करती आई है। लोकगाथा अभिजात साहित्य की धरोहर नहीं है। पहाड़ के जनजीवन में स्वतः प्रस्फुटित आख्यान जब संस्कृति का अभिन्न अंग बनते गए, तब इन गाथाओं को जनजीवन ने उसी मौलिक रूप में अपनाया। इनकी मौखिक परंपरा लोकमानस का कुशल मनोरंजन एवं ज्ञान का प्रतिपादन करती आई है। लोकसाहित्य की समग्र विधाओं के अनुरूप लोकगाथाओं में चिरंतन सत्ता के प्रति एक रहस्य साधना का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। समूचे कुमाऊँ प्रदेश में अलग-अलग भाषा बोलियों के क्षेत्र में गाथाएं गाई जाती हैं, किन्तु भाव प्रायः सब जगह एक सा रहता है।

डॉ0 कृष्णानंद जोशी ने लोकगाथा को गद्य पद्यात्मक काव्य की कोटि में रखते हुए लिखा है-' 'कुछ विद्वानों ने इस वर्ग को लोकगाथाएं नाम भी दिया है। इस वर्ग के सभी गीतों में अनेक स्थलों पर गद्य का भी प्रयोग किया गया है। गायक द्वारा यह गद्य स्थल भी विशेष लय से कहे जाते हैं, सामान्य गद्य की भांति नहीं। इन गाथाओं में मालूसाही 'प्रेम काव्य' कहा जाता है। वीरगाथा काव्य में जिन्हें कुमाउनी में भड़ौ (भटो -वीरों की गाथाएं) कहा जाता है। बफौल, सकराम कार्की, कंुजीपाल चंद बिखेपाल, दुलासाही, नागी भागीमल, पंचूद्योराल, भागद्यो आदि की गाथाएं भी इसी वर्ग की हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित गाथाओं तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो तथा कत्यूरी और चंद राजाओं की गाथाओं- धामद्यो, समणद्यो,उदैचन्द, रतनचन्द्र भारतीचंद की ऐतिहासिक गाथाएं कहा जा सकता है। इनमें धार्मिक ऐतिहासिक वीरगाथा तथा प्रेमगाथा के तत्वों का समन्वय मिलता है। 'रमोला' में जिसे हम कुमाउनी का लोक महाकाव्य कह सकते हैं ,इससे स्पष्ट होता है कि गाथाओं की उत्पत्ति के पीछे लोक ऐतिहासिक घटनाक्रम निहित है। इन चरित्रों एवं घटनाओं के संदर्भ गाथाओं की उत्पत्ति के मूल कहे जा सकते हैं।

9.3.2 कुमाउनी लोकगाथाएं : ऐतिहासिक स्वरूप

कुमाउनी लोकगाथाओं को लोक महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति एवं प्रादुर्भाव के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में ये प्राच्य आख्यान कुछ काल्पनिक चीजों तथा कुछ सत्य घटनाओं का समन्वित स्वरूप प्रदर्शित करती हैं। इतिहास काल क्रम के आधार पर निश्चित रूप से इन लोकगाथाओं को बांधना कठिन प्रतीत होता हैं किंतु, इतिहास काल की कथाओं के आख्यान इन विभिन्न प्रकार की गाथाओं में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम नंदा देवी की बैसी को देखें तो बैसी अर्थात बाईस दिन के गायन का निरंतर क्रम हमें प्राप्त हो जाएगा।

लोकगाथाओं में प्रमुख रूप से परंपरागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते है। परंपरागत रूप से मालूसाही तथा रमौल की गाथा प्रचलित है। जागर नामक गाथा में पौराणिक कथाओं का सार मिलता हैं । कुमाऊं की जागर गाथाओं तथा कृषि संबंधी गाथा हुड़की बौल में यहां के पौराणिक तत्व सम्मिलित हैं।

इन गाथाओं में महाभारत तथा रामायण कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का महिमामंडन गायन शैली द्वारा प्रकट किया जाता है। इनमें महाभारत , कृष्णजन्म, रामजन्म तथा वनगमन शिव शक्ति, चौबीस अवतारों सहित नागवंशीय परंपरा का समुद्घाटन हुआ है।

जागर में विभिन्न कालों में घटित हुई विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हुए उन चरित्रों को आधार बनाया जाता है, जो आज के समय में भी तत्कालीन परिस्थितियों की स्मृति कराकर अवतार में परिणत हो जाते हैं। कुमाऊँ के विभिन्न लोकदेवता इन गाथाओं में समाविष्ट हैं।

कुमाऊँ के कत्यूरी चंद वंशीय शासकों का उल्लेख भी जागर में हुआ है। धामदेव, बिरमदेव तथा जियाराणी के जागर कत्यूरी राजाओं से संबंध रखते हैं। धामदेव तथा बिरमदेव को क्रूर एवं अत्याचारी शासकों के रूप में दर्शाया गया है। 'हरू' की जागर चंद वंश से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इतिहास की वीरतापूर्ण गाथाओं, जिन्हे 'भड़ौ' कहा जाता है, में वीरोचित चरित्रों तथा उनके पराक्रम तथा रोमांच का प्रतिनिधित्व करती जनमानस को तत्कालीन शौर्यगाथा से परिचित कराती हैं। हुड़की बौल में राजा विरमा की गाथा को गायक बड़े सुरीले दीर्घ स्वर में गाता है। शेष कार्य करने वाली महिलाएँ उस गायन को सस्वर गाती हैं। जाति संबंधी गाधाओं में झकरूवा रौत, अजीत और कला भड़ारी, पचू द्योराल, रतनुवा फड़त्याल, अजुवा बफौल, माधोसिहं , रिखोला के विस्तृत वृतान्त प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं तथा शेष को गाथाकारों ने अपने ढ़ग से स्वयं गढ़ लिया है।

रोमांचक गाथाओं में प्रेमाख्यान मिलता है। ये गाथाएँ प्रेमपरक हैं। प्राचीन काल में किसी सुदंरी को प्राप्त करने के लिए लोग आपस में युद्ध करते थे। इस युद्ध में विजयी राजा या व्यक्ति उस वस्तु या सुदंरी को पाने का हकदार हो जाता था। इस श्रेणी के चरित्रों में रणुवारौत ,सिसाउ लली, आदि कुवाँरि, दिगौली माना, हरूहीत, सुरजू कुवंर और हंस कुवंर की गाथाओं के नाम प्रमुख हैं। इनका गायन वीररसपूर्ण होता है, जो भड़ौ में स्पष्ट दिखाई देता है। अतः आप समझ सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न प्रकार की लोकगाथाओं में इतिहासकालीन चरित्रों तथा घटनाओं का उल्लेख एक समान रूप से किया गया है। मूलकथा का भाव समूचे कुमाऊँ क्षेत्र में लगभग एक समान दिखाई देता है।

9. 3. 3 कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताएँ

कुमाउनी लोकगाथाएँ यहाँ की पैराणिक संस्कृति की संवाहक रही हैं। इन लोकगाथाओं के निर्माण के पीछे इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका रही है। लोकमानस की भाव भूमि पर प्रचलित इन गाथाओं में आप प्रचीन काल की घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख पाएँगे।

कुमाऊँ क्षेत्र की विशेष पर्वतीय भौगौलिक संरचना, सभ्यता , संस्कृति तथा लोकजीवन की अनुभूति के लयात्मक संस्पर्श को हम इन गाथाओं के माध्यम से आत्मसात करते हैं। भाषा बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में इन गाथाओं की लय विलग हो सकती है, किन्तु भावात्मक सुन्दरता प्रायः एक सी है। कुमाउनी लोकगाथाएँ स्वयं में आख्यान का वैशिष्ट्य प्रकट करती हैं। आप कुमाउनी लोकगाथाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा समझ सकेंगे -

(1) **वाचिक परंपरा के मूल स्त्रोत:** - कुमाउनी लोकगाथाएँ मौखिक परंपरा के आधारभूत स्त्रोत हैं। इतिहास की दीर्घ कालीन परंपराओं से ये अनुभवजन्य ज्ञान की संचित राशि के रूप में व्याख्यायित होते रहे हैं। आप देख सकते हैं कि कई अनपढ़ गाथा गायक जो अपना नाम तक लिखना नहीं जानते, गाथाओं के मौखिक गायन में पारंगत होते हैं। ये गांथाकार कई दिन तथा रातों तक निरंतर बिना किसी बाधा के गाथा का वाचन करते हैं। उसे लयबद्ध ढ़ग से गाते हैं। वाचिक परंपरा में गाथाकारों की अभिव्यक्ति अनूठी होती है। स्वरों के आरोही अवरोही तथा हाव भाव को गाथाकार बड़ी रोचकता के साथ श्रोताओं के समक्ष रखते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मौखिक परंपरा में गाथा एक मौलिक अभिव्यक्ति है, जो बिना किसी उद्देश्य तथा तर्क के अनुभूत ज्ञान की रूपरेखा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

(2) **सुदीर्घ कथानक की प्रधानता**:- कुमाउनी लोकगाथाओं के कथानक इतने लम्बे होते हैं कि एक गाथा एक पुस्तक के रूप में लिखी जा सकती है। मौखिक परंपरा में प्रचलित इन गाथाओं के मूल पाठ के लिए कोई निश्चित प्रतिबद्धता नहीं है। जीवन जीने की कला के रूप में बुजुर्गों द्वारा लम्बे कथानक वाली गाथाएँ गायी जाती रही है। राजुला मालूसाही की गाथा एक सुदीर्घ कथानक वाली गाथा है।इसमें गद्य भाग को भी गाया जाता है तथा पद्य भाग को भी । इन गाथाओं में संवादमूलकता बनी रहती है। नाटकीय अंदाज में अलग अलग चरित्रों द्वारा उच्चरित संवादों को शामिल करने के कारण इन गाथाओं की अन्तर्वस्तुु सुदीर्घ हो गई है। कथानक का बड़ा या छोटा होना गाथाओं के लिए कोई प्रभावकारी नहीं है। सार्थक संवादों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंग भी गाथाओं में अकारण जुड़े प्रतीत होते हैं। मूल एवं प्रामाणिक पाठ के अभाव में ही गाथाओं का कथानक विस्तृत बन पड़ा है। आप समझ सकते हैं कि रमौल, मालूसाही तथा जागर आदि सुदीर्घ गाथाओं के गायन में गाथाकार कितना अधिक समय लेते हैं। इनके गायन में लगे समय के सापेक्ष ध्वन्यालेखन में और अधिक समय खर्च होता है।

(3) **रचयिता अथवा सृजनकर्ता का अज्ञात होना:** - कुमाउनी लोकसाहित्य की वाचिक परंपरा में परंपरित कई विधाओं के रचनाकारों का कुछ पता नहीं है। इन गाथाओं के मूल जन्मदाता कौन थे ? किस व्यक्ति ने इन गाथाओं को सर्वप्रथम गाना शुरू किया ? इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता । कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के संबंध में भी यही बात सामने आती है कि इन सूक्तियों एवं कहावतों के निर्माणकर्ता या रचयिता कौन थे ? लोकगाथाओं का जनमानस में प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? इस संबंध में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोकगाथाएँ अपनी मौलिकता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई हैं।

डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय ने हडसन के मत का संदर्भ ग्रहण करते हुए अलंकृत काव्य तथा संवर्धित काव्य के बारे में बताते हुए लिखा है कि लोकगाथा सवंर्धित काव्य का रूप है। मूल में जिसका कोई कवि रहा होगा, किन्तु विकास के साथ साथ अनेक लोक कवि एवं गायकों द्वारा उसकी वस्तु में वृद्धि की गई होगी। इसी कारण उसमें परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप में आ गया अतः आप समझ पायेंगे कि रचनाकारों के अज्ञात होने के बावजूद इतिहास काल से अद्यतन इन गाथाओं का स्वरूप जीवन्त है।

(4) **नैतिक प्रवचनों एवं उपदेशात्मकता का अभाव:-** कुमाउनी लोकगाथाएँ किसी कथाख्यान का आलंबन लेकर सीधे प्रवाहित होती हैं। इनमें नैतिकता तथा जीवन के लिए दिए जाने वाले उपदेशों का नितान्त अभाव है। इससे प्रतीत होता है कि ये गाथाएँ जब निर्मित हुई होंगी, तब के समाज में कोई ऐसी विभीषिका नहीं होगी ,जो गाथाओं को प्रभावित कर सके । गाथाएँ अपने कथाभाव को लय के साथ अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़ती हैं। इसमें जीवन जीने के लिए दिए जाने वाले उपदेशों का सर्वथा अभाव है।

(5.) **संगीत तथा नृत्य का अप्रतिम साहचर्यः-** कुमाउनी लोकगाथाओं में संगीत और नृत्य का अनूठा साहचर्य है। जागर गाथा को वाद्य यंत्रों के माध्यम से गाया जाता है, घर में लगने वाली जागर में हुड़का तथा कांस्य की थाली को बजाने का विधान है। जबकि मंदिरों या धूनी की जागर बैसी इत्यादि में ढोल दमाऊँ बजाकर देवताओं का आह्वान किया जाता है। कुमाऊँ में कृषि कार्यो को द्रुत गति से सम्पन्न कराने के लिए हुड़कीबौल का प्रचलन है। इसमें भी बौल गायक हुड़के की थाप पर किसी प्राचीन गाथा का गायन करता है। इन गाथाओं में छंद की महत्ता उतनी नहीं समझी जाती। छंद विधान की कट्टरता को दरकिनार करते हुए लय और सुरताल पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(6) **अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक तत्वों से युक्त कथानक रुढ़ियाँ-** जीवन के यथार्थमय दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने के बाद भी इन गाथाओं में अतिमानवीय प्रकृति का समावेश हुआ है। डॉ0 गोविन्द चातक के अनुसार देव गाथाओं में इसका समावेश एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, किंतु अन्य वर्गो की गाथाओं में उसका उपयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक हुआ है। इसका कारण समाज में समय-समय पर प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों, कथानक रूढ़ियों तथा लोकमानस की चिन्तन विधियों में निहित है। इस प्रकार अतिमानव तत्व उस आदिम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों की देन है, जिससे लोकमानस प्रीलौजिकल विवेकपूर्ण होता है। वह अपने चिन्तन में कार्य कारण क्रम का तारतम्य अपने ढंग से स्थापित करता है। दूसरे अर्थ में वह अपने नियम को प्रतिपादित करने के लिए अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेता हैं।

(7) **स्थानीय तत्वों का समावेशः-** कुमाउनी लोकगाथाओं में स्थानीय तत्वों का प्रचुरता से समावेश हुआ है। राजुला मालूसाही की गाथा में भोटांतिक जन समुदाय की स्थानीय विशेषता दिखाई देती है। उत्तरार्ध में बैराठ द्वाराहाट, कत्यूर दानपुर, भोटप्रदेश की झांकी दिखाई देती है।

मादोसिंह मलेथा की गाथा में गढ़वाल के मलेथा नामक जगह का उल्लेख हुआ है। इनमें स्थान विशेष की परंपरा का बाहुल्य है। लोक जीवन की कला संस्कृति तथा स्थानीय रीतिरिवाजों, रहन-सहन आदि के साहचर्य से गाथाओं का रूप निखरा है। स्थान विशेष के लोगों के द्वारा किए जाने वाले पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, रीतियों का वर्णन कई गाथाओं में देखा जा सकता है। स्थानीय देवी देवताओं का वर्णन जागर गाथा में स्पष्ट रूप से हम पा सकते हैं। प्रेम तथा प्रणय की गाथाओं में भी स्थानीय जनता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन इन गाथाओं में हुआ है।

यहां उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में आप कह सकते हैं कि गाथाएं अपनी जमीन से जुड़ी हरेक प्राच्य आख्यान को समाविष्ट करती हैं समाज को दिशा निर्देश देने के पूर्वाग्रह को आप इन गाथाओं में नहीं पा सकेंगे, ये गाथाएं मानव सभ्यता के उस दौर में प्रस्फुटित हुई है जब लोकजीवन में कुछ रचने एवं गढ़ने का एक स्वच्छंद शौक विद्यमान था। इसीलिए कुमाउनी तथा गढ़वाली लोकगाथाओं में सूक्ष्य चिन्तन दृष्टि को छोड़ स्थूल मनोरंजक प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है। स्थानीय प्रकृति तथा वातावरण के अनुभूत स्वर लहरियों को गाथाकारों ने एक विशद् लयात्मक स्वरूप प्रदान किया, तब से ये गाथाएं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ अभिव्यक्त होती रही हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प चुनिए

1. मालूसाही है-

I. लोकसंगीत
II. लोकगाथा
III. लोकवार्ता
IV. लोककथा

2. लोकगाथा को क्या कहा गया है?

I. लोककथा
II. लोकगीत
III. लोकवाद्य
IV. गद्य- पद्यात्मक काव्य

3. हुड़कीबौल का संबंध है-

I. कृषि गाथा से
II. जागर गाथा से
III. प्रणय गाथा से
IV. लोकवार्ता से

ख. निम्नलिखित में सत्य या असत्य छॉटिए-

1- लोकगाथा कुमाउँ तथा गढ़वाल दोनों मंडलों में प्रचलित है। (सत्य/असत्य)

2- जागर में केवल हुड़का नामक वाद्य यंत्र बजाया जाता है। (सत्य/असत्य)

3- लोकगाथा के रचयिता अज्ञात हैं। (सत्य/असत्य)

4- लोकगाथा में स्थानीय तत्वों का सर्वथा अभाव है। (सत्य/असत्य)

ग- लोकगाथा से क्या तात्पर्य है। लोकगाथा के स्वरूप को समझाइए।

घ- लोकगाथाओं में इतिहास कालीन घटनाओं तथा चरित्रों का उल्लेख किस प्रकार हुआ है,समझाइए।

9.4 कुमाउनी लोकगाथाओं का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

कुमाउनी लोक परंपरा के द्वारा ही यहां की विविध लोक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ है। प्रत्येक लोकजीवन की अपनी कुछ अलग भावपक्षीय विशेषताएं होती हैं। इन विशेषताओं का प्रभाव उस काल खंड में रचे गए लोकसाहित्य पर भी पड़ता है। डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने लोकगाथाओं के भावपक्ष संबंधी विशेषताओं पर लिखा है- ‘यद्यपि ये विशेषताएं एकान्तिक रूप से केवल कुमाउनी साहित्य की विशेषताएं ही नहीं की जा सकती हैं। अर्थात यह आवश्यक नहीं है कि ये विशेषताएं केवल कुमाऊँ के गाथा साहित्य के अतिरिक्त विश्व साहित्य में सुलभ ही न हो।’ यहां के गाथाओं की विशेषताओं में भावपक्ष की प्रबलता है, जिन्हें अधोलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

(1) कुमाउनी गाथाकार कतिपय स्थानों पर भूतकाल की जगह भविष्यत काल का वर्णन करता है-

तेरी होली राणी

गाउली सौकेली

सुनपति सौका हो लौ

बड़ो अन्नी धन्नी

सुनपति शौका का

सनतान न होती

अर्थात् तेरी रानी गॉउली सौकेली होगी। सुनपति भोटिया बड़ा अन्नवान तथा धनवान होगा। सुनपति सौक की कोई संतान नहीं है।

(2) तुकबंदी के लिए प्रथम पंक्ति को निरर्थक रूप में जोड़ने का लक्षण प्रस्तुत है-

भरती भरली

दैण नौर दाथुली

वो नौर धरली

सांटी में को सूलो

झिट घड़ी जागी जावो

ऊंमी पकै लूलो (गंगनाथ गाथा)

अर्थात भरती भरेगी। दाहिने कंधे की दराती बांये पर रखेगी, सांटी में का सूल। तनिक प्रतीक्षा करो, मैं ऊंमी पकाकर लाऊंगी।

(3) साहित्य जगत में कवियों द्वारा नायिका के रूप में सौन्दर्य का वर्णन 'दिने दिने सा ववृधे शुक्ल पक्षे यथा शशी' द्वारा किया जाता है। किन्तु राजुला मालूसाही गाथा में राजुला के शैशवकाल से यौवन तक का वर्णन गाथाकार ने अपने निजी ज्ञान के आधार पर किया है-

द्वियै दिन में हो छोरी चार दिन जसी

नावान बखत छोरी, छे महैणा कसी

म्हैणन में हई गैछ बरसन कसी

चैत की कैरूवा कसी वणण बगै छ

भदौ की भंगाल कसी बड़ण बैगे छ

पूस की पालड. कसी ओ छोरी रजुली

राजन की मुई जनमी देवातों की वैरी

ओ छोरी रजुली ऐसी जनमी रै छ (मालूसाही द्वितीय श्रुति)

(दो ही दिन में वह छोकरी चार दिन के समान हो गई है। नामकरण के समय छः मास की हो गई, महीनों में ही वर्षो के समान वृद्धि पा गई, चैत्र मास के कैरूवा के समान बढ़ने लगी हैं भादौ की भड़ा.ल जैसी उगती गई। पूस मास के पालक जैसी हे रजुली, राजाओं को तू मूल नक्षत्रों के

समान खटक रही है। इसका सौन्दर्य राजाओं के लिए चुनौती बन गया है। इसका सामना देवतागण स्वर्गवासी होने के कारण नहीं कर सकते।)

आपने पढ़ा कि किस प्रकार भावपक्षीय सुंदरता को गाथाओं में वर्णित किया जा सकता है। जीवन के मूल भाव को नेपथ्य में रखते हुए गाथाएं अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अनुसार चलती हैं।

9.4.1 कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण

साहित्य की लगभग भावात्मक विधाओं में प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। प्रकृति एक विराट विषय है । मनुष्य की प्रकृति कहने से भी यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मानव मन की प्रकृति भी वाह्य प्रकृति की एक अनुकृति है। डॉ उर्वादत्त उपाध्याय लिखते हैं-‘जहां तक लोकगाथाओं में प्रकृति चित्रण का संबध है। वहां भी प्रकृति के नानारूपात्मक चित्रणों का अभाव नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ये गाथाएं घटना प्रधान हैं, तथा वर्णन प्रधान हैं ये खंडकाव्य, इनकी रचना प्रकृति चित्रण के लक्ष्य से नहीं हुई है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन गाथाओं में प्रकृति चित्रण का सर्वथा अभाव है। वायु में मिश्रित सुरभि को सूंघने तथा आंखों के आगे कुसुमित प्राकृतिक सुषमा से कौन मुख मोड़ सकता है कुमाऊँ का प्रदेश तो नियति नटी के विभिन्न वेशभूषाओं तथा अलंकरणों से सुसज्जित है तथा उसके नाना प्रकार के व्यापारों से मुखरित है।’

वैदिक कालीन अभिव्यक्ति से लेकर आज तक जितने भी लोक सम्मत विधाओं का निर्माण हुआ है। उनमें प्रकृति एक सार्थक आलंबन के रूप में वर्णित रही है। यहां हम कुछ लोकगाथाओं के अंशों में प्रकृति चित्रण का अध्ययन करेंगे।

मौलिक आलंबन के रूप में प्रकृति चित्रणः- राजुला मालूसाही गाथा में जब गंगा के गर्भ से राजुला का प्रादुर्भाव हुआ, तब तत्कालीन हिमालयी पर्वत प्रदेश की छटा निखर उठी। आप उस छटा की मनोरम झांकी प्रस्तुत अंश में देख सकते है-

हिमाल बादो फाटो री री री. पंचाचूली चांदी जस चमकी रौ

नन्दा देवी की घुडि.टी री री री और तली खिसकण लागी रै

गोरिगंगा पाणी बड़ौ री री री उज्यालो चमकीलो है रौ

(मालूसाही प्रथम श्रृति)

अर्थात हिमालय के बादल फट गए हैं और पंचाचूली चांदी के समान चमक रहा है। नंदादेवी के घूंघट को और नीचे खिसका रहा है। गौरी गंगा का पानी बढ़कर साफ और चमकीला हो गया है।

गाथाकार ने एक अन्य स्थान पर गंगा के तट का प्रातःकालीन चित्र उभारते हुए कहा है-

चार पहर रात अब, खतम है गई हो

गंगा का सुसाट नरैण आब बड़ि गयो हो

करकर ठंडी हवा ऊँछै सरसर जाड़ो लागो हो

(हरू सैम की गाथा)

अर्थ रात्रि के चार पहर बीत चुके हैं । हे नारायण गंगा के पानी की कलकल ध्वनि अब बढ़ गई है। करकर करती हुई हवा आकर ठंडे का आभास करा रही है अर्थात जाड़ा होने लगा है।

एक गाथा में छिपलाकोट जंगल की नैसर्गिक सुषमा के बारे में गाथाकार ने कहा है-

समुणी बीचा माजी, फल फूल बोट

बीस अमिर्त दाख दाड़िम आम पापली चौरा

कत्यूर शिलिंग कुन्जूफूलो और फूली प्योली

अर्थात सामने के बाग में फल और फूल के पेड़ है।

अमृत, विष दाख तथा दाड़िम के फल हैं। आम तथा पीपल के पेड़ों में चबूतरे का निर्माण हुआ है। कनेर शिलिंग कुञ्ज तथा प्योली के फूल खिले हैं।

प्रकृति का उद्दीपक रूपः- प्रकृति के उद्दीपक रूपों का वर्णन भी गाथाओं में हुआ हैं। नायक नायिका की मन स्थिति के अनुसार वेदना में उसे प्रकृति असुंदर लगती है तथा हर्षित क्षणों में वही प्रकृति नायक या नायिका के लिए वरदान सी साबित हो जाती है-

हिमाल की हवा क्या मीठी लगी रे

के धूरा हो राजू तेरि दीठि लागी रे

राजू का शोर या हवा ले मीलि रे

शौक्यूड़ा बगीचा मेरि राजू खिलि रे।

अर्थात हिमालय की हवा में कितनी मीठी सुवास है । राजुला तेरी दृष्टि किस दिशा में लग रही हैं। क्या तू मेरे आगमन को नहीं देख रही हैं। राजुला के श्वास में यह घुली है इसी के द्वारा मिठास का अनुभव होता है। भोट प्रदेश में बगीचे में मेरी रजुली खिली है।'

विरहिणी राजुला की विरह व्यथा में स्थानीय पक्षी फाख्ता (घुघुत) का वर्णन आया है। राजुली के विरहाकुल मनोदशा पर उसे घुघुत की बोली भी असहनीय कष्ट दे रही है।

ए नी बासो घुघुती को रूमझूम

मेरी ईज सुणली को रूमझूम

काटी खांछ भागी गाड़ को सुसाट

छेड़ी खांछे भागी तेरी वाणी

(मालूसाही द्वितीय श्रृति)

(हे घुघुत! तुम घुर्र घुर्र कर आवाज मत निकालो कही तेरी मर्मस्पशी आवाज मेरी मॉ सुन लेगी हे भाग्यवान पक्षी! नदी के बहने की ध्वनि को सुनकर मुझे बहुत कष्ट होता है। तेरी दुःखभरी वाणी मुझे काट खाने को आती है।)

अलंकारों के रूप में प्रकृति चित्रण- कुमाउनी लोकगाथाओं में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत विधान अलंकारों के माध्यम से प्रकट होता है। कहीं उपमाएं दी जाती है तो कही रूपक अतिश्योक्ति के रूप में वस्तुस्थिति का चित्रण किया जाता है । राजुला मालूसाही गाथा में अलंकृत शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है-

कांस जसी बूड़ी गंगा रीरि रीरि कफुवा जसी फूली रै

कंठकारी जसी गंगा री री, सब दुःख भूली गै

(श्वेत जलधार वाली गंगा कफुवे की जैसी फूली है

ऐसा लगता है कि उसके गले से अनेक ग्रंथियां फूटकर दुखों को भुला रहे हैं।

इन गाथाओं में गाथाकार ने आशीर्वाद लेने के अर्थ में भी अलंकारों का प्रयोग किया है

यथा- दवा जसी जड़ी पाती जसी पीली

बांसा जसी घाड़ी जुग जुग रौओ

(अर्थात दूब की जैसी जड़ पत्तियों जैसी वृद्धि तथा बांस के झुरमुट जैसा सघन विस्तार तुम्हारे जीवन में हो, यही कामना की जाती है)

प्रकृति के उपादानों का वर्णनः- लोकगाथाओं में प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन हुआ है। ध्यान से देखा जाए तो समग्र प्रकृति ही गाथाओं के मूल में अवस्थित है। नदी,नाले पशु पक्षी, पेड़ पौधें किसी न किसी उपादान के रूप में इन गाथाओं में वर्णित हैं। राजुला मालूसाही गाथा में जब भोट प्रदेश से राजुली रंगीली बैराठ की तरफ प्रस्थान करती है, तब मार्ग में पड़ने वाली सदानीरा नदियों से वह संवाद करती हैं। सरयू के पावन संगम बागेश्वर में पहुंचकर वह बागनाथ जी का आशीर्वाद ग्रहण करती है और मार्ग में पड़ने वाली अन्य सहायक नदियों से भी अपने अमर

सुहाग का वरदान मांगती है। चूंकि लोकगाथाओं का प्रणयन लोकमानस की भावभूमि पर हुआ है। अतः इन गाथाओं में मनुष्य की प्रकृति पौराणिक सन्दर्भो को रूपायित करती प्रतीत होती है। नागगाथा का उदाहरण दर्शनीय है-

अधराती हई रैछ, अन्यारी रात छ

अन्यारी जमुना को पाणी, अन्यारी छ ताल

(अर्थात आधी रात का समय है घुप्प अंधेरा है, यमुना का पानी भी अंधियाला या काला है इसी कारण ताल भी अंधेरे से घिरा है।)

आप देख सकते है कि कुमाऊँ में बुरांश प्योली आदि के पुष्पों को सुंदरता के उपादानों के रूप में गाथाकारों ने प्रस्तुत किया है।

कतिपय गाथाओं में आप पायेंगे कि कफुवा न्यौली, घुघुता शेर आदि वन्य पशु पक्षियों को भी आलंबन के रूप में ग्रहण किया गया है। प्रकृति के रूपों को गाथाकार ने सरस ढंग से प्रस्तुत किया है इससे कुमाऊँ प्रदेश की सुरम्य प्राकृतिक सुदंरता का बोध आसानी से हो जाता है।

कुमाउनी लोकगाथाओं में निहित स्थानीय तत्व

स्थानीय तत्व को अंग्रेजी भाषा में सवबंस बवसवनत कहा जाता है। स्थान विशेष की विशेषता के कारण लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा प्रभावशाली एवं रोचक होती है। किसी भी सर्पक का अपना एक लोक होता है। वह उस निजी लोक का निर्माता भी स्वयं होता है। लोक की प्रत्येक क्रिया अथवा प्रतिक्रिया सर्पक को प्रभावित करती है। इस लोकरंजक सृजन में कवि अपनी अनुभूति को शब्द देते समय स्थान विशेष की वस्तुओं भावनाओं तथा परम्पराओं का बहुत ध्यान रखता है। यदि वह ध्यान न भी रखे तो भी उसकी काव्य में स्वतः समाविष्ट हो जाती है।

कुमाउॅ की लोकगाथाओं में आप समझ सकेंगे कि स्थान विशेष के लोक पारंपरिक आचार व्यवहार प्रकृतिपरक चीजें तथा प्रतिमानों की समिष्ट बड़ी सुरूचि के साथ गाथाकार ने गढ़ी हैं। डॉ. उर्वादत्त उपाध्याय के शब्दों में -अतः कुमाउॅ प्रदेश के लोकगाथाओं में यहॉ का पूरा लोकजीवन अपनी स्थानीय संस्कृति सहित साकार तथा सजीव हो उठा है। कवि ने अपनी स्थानीय प्रकृति पशु ,पक्षी तथा लोकजीवन के दैनिक व्यापारों का पूरा चित्रण किया है। यद्यपि

स्थानीय तत्व का यह रंग गाथाओं में सर्वत्र बिखरा है। कोई भी गाथा पढ़ी या सुनी जाए स्वतः ही उसमें यहॉ का स्थानीय रंग अपनी आभा लिए निखरने लगेगा।

पशु पक्षियों के वर्णन तथा उनकी गाथाओं से संबंधता को देखने से पता चलता है कि कुमाऊँ के धुर जंगलों में कोयल कफु का बोलना, घुघुत (फाख्ते) की घुर्र-घुर्र तथा न्यौली की मीठी सुरीली तान गाथाओं का प्रमुख आधार बने हैं।

हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं को भी गाथाकारों ने गाया के माध्यम से वर्णित किया है। नंदा देवी, पंचाचूली, छिपलाकेदार, त्रिशूली तथा अनेक ग्लेशियरों का वर्णन भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। प्राकृतिक सदानीरा सरिताओं में प्रमुख काली गंगा, गौरी गंगा, सरयू रामगंगा के माध्यम से कुमाऊँ क्षेत्र की पतित पावनी नायिकाओं के चरित्र की उदात प्रभा का उद्घाटन किया गया हैं कुमाऊँ के प्रसिद्ध शिवमंदिरों जागेश्वर धाम का वर्णन भी गाथा में इस प्रकार हुआ है-

जागेश्वर धुरा बुरूशि फुली रै

मौलि रैई बांजा फुली रै छ प्योली

(अर्थात जागेश्वर के जंगलों में बुरांश को पुष्प खिले हैं, बांज के वृक्ष ने श्याम सी छवि धारण की है तथा पीले पीले प्यौली के फूल खिल रहे है)

कहीं बुरूश नाम प्रसिद्ध पुष्प का वर्णन है, तो कही चैत्र मास में फूलने वाली पीलाभ प्यौली से नायिका के रूप सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया जाता है। कहीं स्थानीय ताल पोखरों का वर्णन भी गाथाओं में आया है। कुमाऊँ में ग्रामीण क्षेत्रों में कम पानी वाले क्षेत्रों में तालाब से बनाए जाते हैं। गर्मियों में इन तालों में भैसों को स्नान कराया जाता है। इन पोखरों को भैसीखाल या भैंसी पोखर के नाम से भी जाना जाता है। स्थानों के पौराणिक नामों का समावेश भी गाथाओं में हुआ है। भोटांतिक क्षेत्र को भोट बागेश्वर का क्षेत्र दानपुर तथा कत्यूर तथा द्वाराहाट का क्षेत्र बैराठ के रूप में गाथाकार ने वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त जौलजीवी मेला, उत्तरायणी मेला, बग्वाल का वर्णन भी मिलता है। स्थानीय वस्त्राभूषण जिनमें बुलांकी गले की जंजीर, कानों के झुमके, पैरों के झांवर, तथा झर हाथों की धागुली, नाक की नथुली दस पाट का घाघरा, मखमली अंगिया, धोती प्रमुख हैं, का भी समावेश लगभग स्थानीय गाथाओं में सभी में हुआ है। इस प्रकार आप समझ जाएंगे कि कुमाऊँ के स्थानीय मेले सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परंपरा के सभी सूत्र गाथाओं के विशाल कथानक के आधार स्तंभ हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क- बहुविकल्पीय प्रश्न

सही उत्तर का चयन कीजिए

1- लोकगाथाओं के रचयिता हैं-

I. ज्ञात
II. अज्ञात

III. एक दर्जन
IV. दस

2- कुमाउनी लोकगाथा में अभाव है-

I. रचयिता का
II. मूल पाठ का
III. उपदेशों का
IV. उपर्युक्त सभी का

3- कुमाउंनी लोकगाथा के भावपक्ष में प्रमुख कौन सा है?

I. प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्व
II. गाथाकार का व्यक्तित्व
III. अलंकार
IV. कोई नहीं

ख- अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1-कुमाउनी लोकगाथा में वर्णित किसी एक स्थानीय पक्षी का नाम बताइए ?

2- मालूसाही की नायिका/ प्रेमिका का नाम बताइए ?

3- नाक में पहने जाने वाले भोट प्रदेश के आभूषण का नाम क्या है?

4- कत्यूर क्षेत्र किस जनपद के अन्तर्गत आता है?

9.5 कुमाउनी लोकगाथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोकगाथाओं के अनेक रूप हमें प्राप्त होते हैं। इन गाथाओं में प्राचीन काल के विविध आख्यान निहित है। इन गाथाओं में आधुनिक काल की किसी कथा आख्यान को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुछ गाथाओं की कथा बहुत विस्तृत हैं, तो कुछ गाथाएं संक्षिप्त भी है। यहां आप संक्षेप में गाथाओं के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।

(1) परंपरागत गाथाएं

(2) पौराणिक गाथाएं

(3) प्रेमपरक गाथाएं

(4) धार्मिक गाथाएं

(5) स्थानीय एवं वैदिक देवी देवताओं से संबंधित गाथाएं

(6) वीर गाथाएं

परंपरागत गाथाओं में मालूसाही तथा रमौल की गाथाएं प्रसिद्ध है। मालूसाही की विस्तृत गाथा में राजुला मालूसाही का जातीय प्रेमाख्यान प्रदर्शित होता है। इसमें मध्यकालीन कुमाउनी संस्कृति के दर्शन होते हैं। कुछ विद्वान मालूसाही की गाथा को जातीय महाकाव्य के रूप में भी स्वीकारते है। कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्र जोहार से लेकर नैनीताल के चित्रशिला घाट तक का वर्णन इस गाथा में हुआ है।

दूसरी परंपरागत लोकगाथा रमौल के नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ तथा गढ़वाल मंडल में प्रचलित इस गाथा में आप महाभारत कालीन चरित्रों एवं घटनाओं का वर्णन समझ सकते हैं।

पौराणिक गाथाओं में पुराण कालीन अनेक गाथाओं का सम्मिश्रण मिलता है। महाभारत काल के कृष्ण अर्जुन संवाद, कौरव पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध के कारण तथा उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों को इसमें दर्शाया गया है। रामायण काल की रामचन्द्र जी एवं कृष्ण जी के अवतार संबंधी कथा का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शिव पार्वती संवाद, कृष्ण जन्म की घटना, चौबीस अवतार तथा नागवंश की विशेषताओं को पौराणिक गाथाओं के रूप में जाना जाता है। राजुला मालूसाही की गाथा विशुद्ध रूप से प्रेमपरक गाथा है। जातिगत वैभिन्य के बावजूद भी दोनों के मिलन की एक अलौकिक कथा हमारे समक्ष आती है। धार्मिक गाथाओं के अन्तर्गत वे गाथाएं आती हैं ,जिनके मूल में विशेष धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ की क्रियाएं सम्मिलित हैं। कुमाऊँ में जागर गाथा को धार्मिक गाथा कहा जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानों का इसके संबंध में अलग मत हैं। कुछ लोग जागर में महाभारत या रामायण काल की घटना की उपस्थिति के कारण इसे पौराणिक गाथा की कोटि में रखते हैं। किन्तु मूलतः पहाड़ की पूजा अनुष्ठान की विशेष छवि जागर गाथा में दिखाई देने के कारण इसे धार्मिक गाथा कहना उचित प्रतीत होता है। स्थानीय देवी देवताओं से संबंधित गाथाओं में नंदा का जागर, नंदा का नैनौल, सिदुवा बिदुवा की कथा, अजुवा बफौल आदि की गाथा सम्मिलित है। वीर गाथाओं में चंद, कत्यूरी वंशजों की गाथाएं गायी जाती हैं। राजा बिरमा की कत्यूरी गाथा भी एक प्रभावशाली वीर गाथा है। चंद राजाओं, उदैचन्द, रतन चंद, विक्रमचंद की गाथाओं में तत्कालीन वीरतापूर्ण आख्यान समाविष्ट हैं।

बोध प्रश्न

क- सही विकल्प छॉटिए

1. प्रेमपरक आख्यान किस गाथा में मिलते है-

I. जागर गाथा

II. धार्मिक गाथा
III. मालूसाही गाथा
IV. रमौल गाथा

2. नंदा का नैनौल है-

I. देवी देवताओं संबंधी गाथा
II. प्रेम गाथा
III. वीर गाथा
IV. परंपरागत गाथा

3. रमौल है-

I. परंपरागत गाथा
II. वीर गाथा
III. धार्मिक गाथा
IV. प्रेमाख्यान

ख - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1 पौराणिक गाथाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए

2 धार्मिक गाथाओं से क्या तात्पर्य है?

3 वीरगाथाओं की विशेषताएं बताइए।

9.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- ☐ कुमाउनी लोकगाथाओं का अर्थ एवं स्वरूप समझ चुकें होंगे
- ☐ कुमाउनी लोकगाथाओं के ऐतिहासिक स्वरूप को जान गए होंगे
- ☐ लोकगाथाओं की भाव भावपक्षीय सुंदरता का अध्ययन कर चुके होंगे।
- ☐ लोकगाथाओं के वर्गीकरण से विभिन्न प्रकार की

प्रचलित गाथाओं के बारे में ज्ञात प्राप्त कर चुके होंगे।

9.7 शब्दावली

उपादेय	-	उपयोगी
भड़ौ	-	भड़ौ अर्थात भटों एक प्रकार की वीर गाथा
जागर	-	जागरण कुमाऊँ की दीर्घ गाथा
नैनौल	-	नंदा देवी का जागरण गायन
विभीषिका	-	अशांति, अराजकता
भोट प्रदेश	-	भोटिया जनजाति का क्षेत्र जोहार, मुनस्यार
आख्यान	-	प्राचीन काल का भाव या सूत्र

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 9.3 के उत्तर

क- 1- लोकगाथा

2- गद्य-पद्यात्मक काव्य

3- कृषि गाथा से

ख-

1-सत्य

2. असत्य

3. सत्य

4. असत्य

इकाई 9.4 के उत्तर

क- 1- अज्ञात

2- रचयिता का

3- प्रकृति वर्णन तथा स्थानीय तत्त्व

ख- 1- घुघुत

2- राजुली

3- बुलॉकी

4- बागेश्वर

इकाई 9.5 के उत्तर

क- 1- मालूसाही गाथा

2- देवी देवताओं संबंधी गाथा

3 – परम्परागत गाथा

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1- उपाध्याय डॉ0 उर्वादत्त कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन , पृ0 34 व 35

2. पूर्वोक्त, पृ0 67

3. पूर्वोक्त पृ0 63-64

4. पूर्वोक्त पृ0 391-394

5- पूर्वोक्त पृ0- 423-431

6. पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य पृ0 229

7. पूर्वोक्त पृ0 234

8. पूर्वोक्त, कुमाऊँ का लोक साहित्य पृ0 160-161

9- पोखरिया, देवसिंह, लोकसंस्कृति के विविध आयाम पृ0 57-58

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय, प्रकाश बुक डिपो बरेली

2. कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, डॉ0 त्रिलोचन पाण्डे,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

3. लोकसंस्कृति के विविध आयाम, डॉ देवसिंह पोखरिया, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो अल्मोड़ा

4. कुमाउनी भाषा और संस्कृति, डॉ केशबदत्त रूवाली

5. भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय डॉ गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज दिल्ली।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगाथओं के स्वरूप एवं इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. लोकगाथाओं की विशेषताएं बताते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

3. जागर गाथा क्या है, जागर गाथाओं में गाए जाने वाली लोकगाथाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 10 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप
10.3.1 कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास
10.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं एवं महत्त्व
10.4 कुमाउनी लोकथाओं का परिचय
10.5 कुमाउनी लोककथाओं का वर्गीकरण
10.6 सारांश
10.7 पारिभाषिक शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक ग्रंथ सूची
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

कुमाउनी लोककथाएं कुमाऊँ के जनमानस की साहित्यिक उपज हैं। मनोरंजन और ज्ञान के अभाव की पूर्ति करने के लिए इन लोककथाओं का सृजन किया गया होगा। इतिहास काल से प्रचलित लोककथाओं में सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की परंपरागत अभिवृत्ति देखने को मिलती है। इकाई के पूर्वार्द्ध में आप लोककथाओं के प्रादुर्भाव एवं उनके ऐतिहासिक स्वरूप को समझ सकेंगे। लोककथा के निर्माण के पीछे लोकमनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां हम लोककथाओं की प्रवृत्तियों तथा उनके सामाजिक महत्त्व का अध्ययन भी करेंगे। इकाई के उत्तरार्द्ध में चुनी हुई लोककथाओं का परिचय तथा उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया हैं । प्रस्तुत इकाई को समग्र कुमाउनी लोकसाहित्य की रीढ़ कहना समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि लोकगीत तथा लोकगाथाओं में भी तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य तथा उनके कथामूलक आख्यान किसी न किसी रूप में समाहित रहे हैं।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप

- ☐ लोककथा द्वारा इतिहासपरक देशकाल एवं वातावरण को समझ सकेंगे।
- ☐ कुमाउनी समाज के अभिव्यक्ति कौशल का पता लगा पाएंगे।
- ☐ कुमाउनी लोकथाओं द्वारा समाज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर दृष्टि डाल सकेंगे।
- ☐ यह जान सकेंगे कि परंपरा की जीवंतता में लोककथाओं का कितना बड़ा योगदान है।
- ☐ कुमाऊँ के स्थानीय रीति रिवाजों तथा भौगोलिक परिस्थिति को समझ सकेंगे।

10.3 कुमाउनी लोककथाएं : इतिहास एवं स्वरूप

कुमाउनी लोककथाओं को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम कथा के अर्थ को समझें। कुमाऊँ तथा गढ़वाल में कथा के लिए कथा, काथ, वार्ता तथा कानी शब्दों का प्रयोग होता रहा हैं। देवी देवताओं के पौराणिक आख्यान को वार्ता कहा गया है। कानी (कहानी) गढ़वाली भाषा में यथार्थ जीवन की घटनाओं का दस्तावेज माना जाता है, जबकि कथा को मनगढन्त काल्पनिक विधा के रूप में पारिभाषित किया गया है। डॉ गोविन्द चातक के अनुसार- कथा, कहानी और वार्ता सुनने सुनाने के दो रूप होते हैं। एक तो कथाएं की जाती हैं। जैसे सत्यनारायण भागवत और पुराणों की कथाएं। इनके पीछे धार्मिक प्रेरणा होती है और ये प्रायः अनुष्ठान के रूप में ही की जाती हैं इन कथाओं का प्रसंग से सीधा संबंध नहीं। क्योंकि वे पढ़कर सुनाई जाती है और श्रोताओं का उनके प्रति कथा का भाव नहीं रहता। वह उनके लिए एक धार्मिक कर्तव्य सा होता है। इसी प्रकार की वार्तायें भी केवल धार्मिक समारोहों के अवसर पर सुनाई जाती हैं और उनका आधार भी कोई पौराणिक आख्यान ही होता है। वास्तविक कथाएं वे होती है, जिन्हें बूढ़े और बच्चे विश्राम और कार्य के क्षणों में मनोरंजन के लिए सुनाया करते हैं।

कुमाउनी लोककथाओं में भी कहानी या कथा का कोई यथार्थ या वास्तविक भाव उतना नहीं दिखाई देता। कुछ पौराणिक लोककथाओं जैसे महाभारत, रामायण आदि की कथाओं में वास्तविक जीवन के भाव बोध दृष्टिगत होते हैं। शेष कथाएं कल्पना या गल्प पर ही आधारित हैं।

कुमाउनी लोकसाहित्य के कुशल अध्येता डॉ0 बिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लोककथाओं को दो भागों में बांटा है-लोकगाथाएं तथा दन्त कथाएं। हम अपने दृष्टिकोण से इन्हें अलग-अलग कोटि में रखेंगे। यद्यपि कुछ लोकगाथाओं तथा लोककथाओं की कथावस्तु लगभग एक समान हैं फिर भी इनका वास्तविक स्वरूप भिन्न है। दन्तकथाओं में हम तांत्रिकों, पुजारियों, भूतप्रेतो,देवों दानवों, पशु पक्षियों ,वनस्पतियों, वृक्षों नदी, नालों तथा साधु संतों आदि की कथाओं को सम्मिलित करते हैं। डॉ कृष्णानंद जोशी ने विषयवस्तु को विभाजन का आधार मानते हुए कुमाऊँ की लोककथाओं को अतिमानवीय, मानवीय संबंधों और लोक विश्वास के दायरे में रखा है। डॉ पुष्पलता भट्ट ने लोककथाओं को बारह वर्गो में वर्गीकृत किया, जो हमारे वर्गीकरण से लगभग मेल खाता है। परन्तु गीत कथाएं तथा तन्त्र मंत्र संबंधी कथाएं अलग वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है।

कुमाउनी में आरंभ से चली आ रही लोककथाओं के निर्माता सर्वथा अज्ञात हैं। ये कथाएं पीढ़ी दर पीढ़ी बुजुर्गो को सुनकर अपनी अगली पीढ़ी को मौखिक रूप से हस्तांतरित करते रहते हैं। कुमाउंनी सभ्यता तथा संस्कृति के विकास क्रम में ही इन लोककथाओं का सृजन हुआ है। ये काल्पनिक और वास्तविक होने के साथ-साथ जीवंत हैं तथा सत्यानुभूति के धरातल पर पाठकों को दिशा निर्देश तथा उनका मनोरंजन करने में भी पूर्णतः समर्थ हैं।

10.3.1 कुमाउनी लोक कथाओं का इतिहास

कुमाउनी लोककथाओं का इतिहास काल क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये कथाएं प्रारंभ से परंपरा के रूप में विकसित हुई हैं। पिछले अध्यायों में आपने पढ़ा होगा कि लोकसाहित्य के प्रादुर्भाव के संबंध में प्रायः यही कहा जाता रहा है कि इन विधाओं के रचनाकार अज्ञात एवं दुर्लभ हैं। लोककथा भी लोकगाथा, लोकगीत तथा कहावतों की तरह एक वाचिक परंपरा की विधा है जिसका विकास जनमानस की संवेदी उर्वरा भावभूमि पर हुआ है। कुमाउनी लिखित साहित्य के अध्ययन के उपरांत आप देखेंगे कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ये लोककथाएं और कहावतें लिखित रूप में सामने आई। 19वीं शताब्दी से लिखित साहित्य का प्रारंभ माना जाता है। इस सदी में काव्य रचनाओं के माध्यम से ही लिखित साहित्य परंपरा की शुरूआत हुई। जीवनचंद्र जोशी (1901) तथा चन्द्रलाल वर्मा चौधरी (1910-1966) को कुमाउनी कथा साहितय एवं कहावतों का प्रणेता माना जाता है। इससे पूर्व 19वीं शताब्दी में पौराणिक संस्कृत साहित्य का अनुवाद कार्य भी हमारे समक्ष आता है।

जहां तक कुमाउनी लोककथाओं का प्रश्न है ये रचयिताओं का परिचय दिए बिना सतत प्रवहमान हैं, डॉ उर्वादत्त उपाध्याय ने सम्पूर्ण लोकसाहित्य के निर्माण के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है- 'लोक संस्कृति एवं लोकजीवन की परंपरा का साक्षात रूप से निर्वाह करने वाली है, यहां के लोकसाहित्य के प्रबंध काव्य जिन्हें गाथा कहा जाता है। सारा लोकसाहित्य परंपरागत रूप से श्रुति परंपरा द्वारा संचालित होता आया है तथा इसके रचयिता

एकदम अज्ञात हैं। उन्होने आगे लिखा है कि श्री ओकले और श्री तारादत्त गैरोला के प्रयत्नों से कुमाऊँ की अनेक लोककथाएं आदि प्रकाश में आई।

डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार-'लोकसाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग लोककथाएं हैं। यह लोककथाएं अंचल विशेष के जन जीवन, सामाजिक रीति रिवाज परंपराओं और लोकविश्वासों पर यथेष्ट प्रकाश डालती हैं। इन कथाओं में कुछ अतिमानवीय शक्तियों-भूतप्रेत राक्षस, दैत्य, परियों से मनुष्य विशेष के संघर्ष पर आधारित हैं ऐसी कथाओं में बहुधा मानवीय शक्तियों की अतिमानवीय शक्तियों पर विजय दर्शायी गई है। विभिन्न लोकविश्वासों की सुन्दर अभिव्यक्ति इन कथाओं में मिलती है। दूसरे वर्ग में वे कथाएं सम्मिलित की जा सकती हैं जिनमें पंचतंत्र की कथाओं और ईसप की कहानियों की भांति पशु पक्षियों के संसार को इस भांति वर्णित किया गया है कि बहुधा कहानी के पशु पात्र मानव स्वभाव की कोई दुर्बलता,वर्ग विशेष की चारित्रिक विशेषता या सामाजिक जीवन के किसी वैषम्य की ओर इंगित करते हैं। स्थानीय जनमानस की अभिव्यक्ति कौशल की ओर से कथाएं सीधा संकेत करती हैं। इन कथाओं का निर्माण वैदिक कालीन साहित्य एवं संस्कृति के आधार पर हुआ है। इतिहास का आधार महाभारत तथा रामायण काल की घटनाओं एवं उनमें शामिल चरित्रों को भी माना गया है। डॉ गोविन्द चातक ने लिखा है- 'गढ़वाल और कुमाऊँ में दो प्रकार के देवी देवता मिलते हैं। एक स्थानीय और दूसरे वे जिन्हें सामान्यतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में माना जाता है। हिन्दू देवीदेवताओं का पौराणिक सनातन व्यक्तित्व है। अतः कुमाऊँ और गढ़वाल में भी उनके संबंध में उसी प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं जैसी अन्यत्र हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उनके संबंध में ऐसी कथाएं स्थानीय रूप से चुनी गई है जिनके सूत्र अन्यत्र नहीं मिलते। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण की रसिकता से सम्बद्ध कुसुमा कोलिन सुजू की सुनारी, गंगू रमौला, सिदुवा ब्रहमकुँवर चन्द्रावली रूकमणी आदि के प्रसंग स्थानीय और मौलिक हैं इसी प्रकार पांडुवों की कथाएं जिन्हें पांडवार्त (पांडव वार्ता) कहा जाता है कुछ महाभारत के अनुकूल चलती है। किन्तु कई उससे भिन्न रूप में भी मिलती है। इसी प्रकार यहां की लोककथाओं में शिव पार्वती अनेक बार पालों के रूप में आते हैं इसके अतिरिक्त उनसे संबंधित कई कथाएं स्वतंत्र रूप से भी मिलती हैं। शिव और शक्ति का क्षेत्र होने के नाते जागेश्वर, बागेश्वर, पाताल भुवनेश्वर, सोमेश्वर नन्दादेवी, त्रिशूल गोपेश्वर, तुंगनाथ कालीमठ, कमलेश्वर सुरकंडा, चंद्रवदनी, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी आदि कई स्थान उनकी श्रृतियों से संबंधित हैं। राम कथा को भी स्थानीय रंगों से अनुरंजित किया गया है।

स्थानीय देवी देवताओं गणनाथ, मलयनाथ, भूमिया हरू,सैम, भैरव, कलुवा, सिड़ुवा बिदुवा, ग्वल्ल, परी आंचरी गड़देवी सहित अनेकानेक क्षेत्रीय देवी देवताओं के जीवन पर आधारित अनेक लोककथाएं कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित हैं। प्रो. देवसिंह पोखरिया ने लोककथाओं को लोकभाषा या बोली में परंपरा से चली आ रही वाचिक अभिवयक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उन्होनें कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास को बताते हुए लिखा है- भारतीय लोककथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। यदि भारत की सारी लोककथाओं को संगृहीत किया जाए, तो इनकी संख्या अनंत होगी। कथा साहित्य की दृष्टि से यह विश्व का अद्भुत ग्रन्थ होगा।

भारत को विश्व कथा साहित्य का मूल स्रोत होने का गौरव प्राप्त है, वैदिक संहिताएं ब्राहमण ग्रंथ उपनिषद् पुराण ग्रंथों की कथाएं , वृहत्कथा, मंजरी, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र हितोपदेश, वैताल पंचविंशति का सिंहासन द्वात्रिंशिका तथा जातक कथाएं भारतीय कथा साहित्य के अमर ग्रंथ हैं जो लोककथाओं की भूमि पर ही पुष्पित पल्लवित और सुरभित हैं।' प्रोफेसर पोखरिया के अभिमत के आलोक में हम कह सकते है कि प्रारंभ से अविराम गति से चली आ रही लोककथाओं ने वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का अनुशीलन करते हुए एक परंपरा विकसित की है। इस परंपरा का मूल लक्ष्य लौकिक जीवन को उस आनंद से अभिभूत करना था, जो मानवीय सोच के बिल्कुल करीब होती है। युगीन परिदृश्य तथा नैतिकतापूर्ण आख्यानों को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया।

यहां हम कह सकते हैं कि लोककथा एक वाचिक परंपरा की अभिव्यक्ति है, जिसे इतिहास काल से ही स्वच्छंद ढंग से आत्मसात किया गया। कुमाउनी लोक कथाओं में पौराणिक आख्यान, समाज का बिम्ब तथा नियति की विशेषता देखी जा सकती है। प्रकृति को अधार मानकर लिखी गई लोककथाओं में मानव मनोविज्ञान के तत्व साफ झलकते हैं। इन कथाओं की उत्पत्ति के संबंध में मनुष्य की अन्तर्विवेकी तथा लोकरंजन की मानस वृत्ति छिपी है। अनुभूति की मनोरंजक अभिव्यक्ति संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। यही इन लोककथाओं का ऐतिहासिक स्वरूप है।

10.3.2 कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएं तथा महत्त्व :-

कुमाउनी लोककथाएं कुमाउनी साहित्य की अनूठी धरोहर है। लोकसाहित्य में पायी जाने वाली विशेषताएं लोककथा की विशेषताओं के समान हैं। लोक जीवन की जीवन शैली तथा क्रियाकलापों को भी लोककथाओं में स्थान मिला है। ये लोक कथाएं सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने में भी सहायक सिद्ध हुई है। नीतिगत निर्णय तथा विश्व मंगल की कामना इन कुमाउनी लोककथाओं में सर्वत्र पायी जाती है। कुमाउनी लोकसाहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने के कारण वर्तमान में भी इनके प्रति लोगों की रूचि यथावत है। कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताओं को यहां कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है-

1. प्राचीन आख्यानों से परिपूर्ण- कुमाउनी लोककथाएं प्राचीन काल की परंपरा का प्रकाशन करती है । वैदिक युग सहित रामायण तथा माहाभारतकालीन घटनाओं का उल्लेख इन कथाओं में हुआ है। जिन आप्त चरित्रों को हम जीवन में उपादेय समझते हैं। उन चरित्रों का उल्लेख कई लोककथाओं में हुआ है । इन लोककथाओं में प्राचीन काल की लोकगाथाओं के आख्यान भी कहीं कहीं दिखाई देते हैं। मूलतः लोककथा तथा लोकगाथा कथा आख्यान की दृष्टि से एक ही हैं । अन्तर सिर्फ इतना है कि लोकगाथाओं का कथानक बहुत विस्तृत होता है, जबकि कहानी या लोककथा का कलेवर उत्कर्ष के सापेक्ष कुछ बड़ा होता है। राम, कृष्ण , अर्जुन, आदि के द्वारा प्रजाहित किए गए सत्कार्यो को लोककथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।

वृहत्कथा, मृच्छकटिकम, कथा सरित्सागर आदि में वर्णित कथा लोककथाओं के समान विशेषताएँ प्रदर्शित करती हैं।

2. लोकमंगल की कामना - लोककथाएँ लोकमानस की सच्ची बानगी है। लोकमानस से उद्भूत इन कथाओं में जन कल्याण तथा लोककल्याण की भावना परिलक्षित होती है। इसके पीछे एक यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राचीन काल की कथाओं में पौराणिक उदात्त चरित्रों का उल्लेख होने के कारण इनमें लोक के प्रति सद्भाव एवं मगंल कामना का वैशिष्ट्य पाया जाता है। मौखिक परंपरा से विकसित तथा लोकरजंकता का गुण विद्यमान है। क्योंकि साहित्य का उद्देश्य केवल थोथा या सुर्ख मनोरजंन ही नहीं है, बल्कि इस विशेषता को दर्शाते हुए जनकल्याण की भावना भी लोकसाहित्य में होनी चाहिए।

3- लोक जीवन की झाँकी - कुमाऊँ क्षेत्र को रंगीला कहा जाता है, तो गढ़वाल को छबीला। यहाँ की खूबसूरत वादियाँ सहदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती हैं। कुमाऊँ के सीमान्त जनपदों की आदिवासी जनजातियों की अपनी अलग पहचान है। इनके रीति रिवाज तथा प्रथाएँ सभ्य समाज से हटकर हैं। आप समझ पायेगें कि लोकजीवन की मौखिक परंपरा में इन आदिमजातीय परिवारों की संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कुमाउनी लोकगाथाओं में यहां की भिटौली, घुघुतिया घी त्यार, फूलदेई, बिरूड़िया आदि लोक परंपराओं का समावेश हुआ है। नातेदारी, रक्त संबंध तथा अन्य सामाजिक संस्थागत आदर्श भी लोककथाओं के विषय बने हैं। यहां के लोगों का रहन-सहन तथा ससुराल मायके जाने वाली प्रवृत्तियों का उल्लेख भी लोककथाओं में स्पष्ट झलकता है।

(4) लोक सत्यानुभूति का समावेश- कुमाउनी लोककथाएं आख्यान मूलक होने के साथ-साथ लोक सत्य उद्घाटन में भी अग्रणी हैं। लोकमानस की पवित्र मेधा से उद्भूत इन कथाओं का उत्कर्ष सत्य पर आधारित होता है। काफल पाको मैं निचाखो (काफल पके किन्तु मैंने नहीं चखे) चल तुमड़ी बाटो बाट मैं के जाणं बुड़ियकि बात (तुमड़ी तुम अपने रास्ते चलो मैं बुढ़िया के बारे में कुछ नहीं जानती) जैसी लोककथाएं लोक चातुर्य तथा लोक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

यहां हम समझ सकते हैं कि व्यक्ति की सोच एक कल्याणकारी जगत का निर्माण करने पर आमादा है। यहां की कथाएं व्यष्टि से समष्टि तक का सत्यापन करने में सक्षम हैं।

(5) पशु पक्षियों तथा प्राकृति उपादानों की अवस्थितिः- कुमाऊँ की लोककथाओं में यहां की प्रकृति तथा पशु पक्षियों को एक ऐसे आलम्बन के रूप में ग्रहण किया गया है, जिससे लगता है कि ये प्राकृतिक उपादान तथा पशु पक्षी मानव जगत से सीधा संवाद करते हैं। कुमाऊँ के स्थानीय पक्षी न्यौली, घुघुत, का उल्लेख कई कथाओं में हुआ है। इसी प्रकार यहां की वनस्पति, फल फूल, सिसौंण (बिच्छू घास) काफल (एक रसीला फल) तुमड़ा (गोल लौकी) भी कई कथाओं में वर्णित है। यहां की स्थानीय नदियों काली, गोरी, सरयू, रामगंगा सहित छोटे-छोटे गधेरों पठारों तथा जंगलों का वर्णन भी अनेक कथाओं में मिलता है। लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया के शब्दों में -'कुमाउनी लोककथाओं में पुर पुतई पुरै, पुर,

तीन, वॉट कि फिफिरी, अघिलै लाकड़ि जलि पछिलै ऊँ छि, धोति निचोड़ि मोत्यूं मिलि, सुनुकि बतख, भूतक नाश, दिन दिदी जाग जाग, घुघुति, एक राजाक द्वि सींग आदि कथाएं बहुचर्तित तथा लोकप्रिय लोककथाएं हैं।'

(6) उत्सुकता तथा जिज्ञासा का भावः- कुमाउनी लोककथाओं में अधिसंख्य कथाएं एक छि राज (एक राजा था) एक छि बुड़ी (एक बुढ़िया थी) से प्रारंभ होती है जैसे ही एक राजा था' कहा जाता है कि सुनने वाले की एकाग्रता तथा औत्सुक्य वहीं से शुरू हो जाता है । ये कथाएं दादी नानी के मुख से अपने छोटे-छोटे पोते-नातियों को अक्सर सुनाई जाती हैं। इन कथाओं का कथानक संक्षिप्त एवं सारगर्भित होता है। वर्ण्य विषय में अन्ततः चारमोत्कर्ष पर कथा का भाव लक्षित होता है। शुरू से लेकर अंत तक कथा कहने वाले की अपेक्षा सुनने वाले की तत्परता देखने लायक होती है। श्रोता के भीतर एक जिज्ञासा का भाव कथा क्रम के अनुसार बढ़ता जाता है । जब तक कथा का समाहार नहीं हो जाता, उत्सुकता बनी रहती है।

अतः हम कह सकते है कि कुमाउनी लोककथाएं अपने अस्तित्व में पूर्ण हैं। इनमें सुनने वाले की तत्परता इस बात का प्रमाण हैं कि कहीं न कहीं कथाभाव में मूल्यों की स्थापना तथा रोमांचित करने वाली विशेषता विद्यमान है। मौखिक और लिखित दोनों रूपों में प्राप्त इन कथाओं के आधार माननीय संवेदनाएं हैं। मानव द्वारा लोकरंजकता तथा स्वयं के बुद्धि चातुर्य को स्थापित करने में भी लोककथाओं का अवदान प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय हैं । इन कथाओं में वैश्विक कल्याण तथा प्रेम का संदेश देने वाली प्रवृत्तियों का कुशल अनुशीलन हुआ है।

कुमाउनी लोक कथाओं का महत्वः- आपने साहित्य को समाज का दर्पण के रूप में सदा ही स्वीकार किया है। किसी भी साहित्य की प्रवृत्ति समाजशील होती है, इन लोककथाओं का सबसे बड़ा महत्त्व मानवता की स्थापना विश्व एवं राष्ट्र प्रेम है। इन लोककथाओं को कुमाउनी लिखित साहित्य की परंपरा में मील का पत्थर माना जाता है। इनका समाज के जनमानस के साथ सीधा संपर्क होता है। जिससे लोकानुभूति लोकाभिव्यक्ति में स्वतः परिणत हो जाती हैं । इन लोककथाओं में निहित कुमाउनी संस्कृति के तत्वों द्वारा आम लोगों को यहां की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना के बारे में पता चल जाता है। मानवीय संवदेना को आदिकालीन परंपरा ने किस प्रकार ग्राह्य बनाया। इसे भी एक बड़े महत्त्व के रूप में देखा जाता है। समाज में साहित्य के अध्येताओं के लिए एक आंचलिक विधा के रूप में कथाओं का परिचय आसानी से प्राप्त कर लिया जाता है। कुमाउनी संस्कृति के अलावा रचयिता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्मारक बनाने में लोककथाओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

कुमाउनी लोककथाओं में यहां के ग्रामीण जीवन की सुन्दर झांकी स्पष्ट दिखाई देती है। इन कथाओं में सद्भाव तथा मूल्यों की स्थापना करने की क्षमता है। कई लोककथाएं भावात्मक होने के कारण यहां की बहू बेटियों के मर्मस्पर्शी एवं भावुक स्वभाव का परिचय देती हैं। इनमें वैचारिक प्रखरता होती है तथा किसी सामाजिक सांस्कृतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ये लोककथाएं बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। लोकमंगल की कामना से लेकर विश्व कल्याण की

अवधारणा इन कथाओं के मूल में निहित होता है। यहां पर हम समझ सकते हैं कि लोककथाएं समाज के मनोरंजन में साहित्यिक अवदान के लिए हर युग में सर्वग्राह्य सर्व स्वीकार्य होती है।

बोध प्रश्न

इकाई 10.3 के प्रश्न

क- उचित विकल्प चुनिए-

I. 'चल तुमड़ी बांटों बाट, मैं के जाणू बुड़ियकि बात' है-लोककथा
II. लोकगीत
III. लोकगाथा

2- लोककथा की मूल परंपरा क्या है?

I. शाब्दिक
II. लिखित
III. वाचिक
IV. आर्थिक

3- लोककथा का कथानक होता है-

I. संक्षिप्त एवं सुगठित
II. विस्तीर्ण
III. हास्यास्पद
IV. सूक्तिपरक

ख- निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

1- लोककथा की परिभाषा दीजिए।

2- लोककथा की पांच मुख्य विशेषताएं बताइए।

3- कुमाउनी लोककथाओं के संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डालिए।

4- कुमाउनी लोककथाएं यहां के समाज के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं?

10.4 कुमाउनी लोककथाओं का परिचय

कुमाऊँ में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। कुछ कुमाउनी कहावतों के रूप में प्रचलित लोककथाएं भी कथा आख्यान से परिपूर्ण हैं। कुमाऊँ क्षेत्र में ही इन कथाओं का जन्म हुआ था। ये इतिहास के सतत प्रवाह से समाज में संचरित होती आई हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण लोककथाओं का परिचय हिन्दी में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) पिनगटियक मरण (पिनगट का मरण)

किसी गांव में पिनगट नाम का एक व्यक्ति रहता था। उसके परिवार में दो ही सदस्य थे पिनगट और उसकी पत्नी । एक दिन जब उसकी पत्नी रोटी पका रही थी तब वह बाहर से कान लगाकर सुनने लगा। बाद में अंदर आकर उसने कहा कि आठ बार पट-पट हुई सोलह बार तवे में छप की आवाज हुई ,कुल आठ रोटियां होनी चाहिए। चार यहां पर हैं चार कहां गए। उसकी पत्नी ने चार रोटियां छिपाई थी, वह तुरन्त बोली- 'स्वामी! आप तो अन्तरयामी हैं सब जानते हैं।' ऐसा कहते हुए उसकी पत्नी ने चार छिपाई रोटियां सामने रख दी। दूसरे दिन उसकी पत्नी ने सारे गांव में खबर फैला दी कि उसके पति पुछयार (पूछ करने वाले)हैं। फिर क्या था। किसी स्त्री का मंगलसूत्र खो गया था। वह पिनगट के पास आई। पिनगट तो कुछ नहीं जानता था, फिर उसने गांव की एक सभा की। सभा में सभी गांववासी आए। एक अन्य ग्रामवासी का नाम भी पिनगट था। पिनगट ने सभा में सबकी तरफ देखा फिर असहाय होकर उसने कहा- 'आ गया रे अब पिनगटिया का मरण' दूसरा पिनगट जिसने मंगलसूत्र चुराया था। सामने आकर हाथ जोड़कर कहने लगा। ये लो मंगलसूत्र पर मेरी जान बचा लो। ऐसा कहते ही पिनगटिए की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। इस तरह पिनगट की यश कीर्ति चारों ओर फैल गई।

(2) के करूं पुतु पुरे पुरे (क्या करूं पुत्र काफल पूरे के पूरे थे)

यह लोककथा कुमाऊँ में सर्वत्र प्रचलित है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में एक फाख्ते (घुघुत) ने जमीन के गना काफल सुखाने धूप में डाल दिए। उसने अपने पुत्र को इसकी रक्षा करने को कहा। घुघुत कहीं दूर चला गया । शाम को जब घुघुत वापस लौटा तो उसने देखा कि काफल बहुत कम हैं। उसका दिमाग ठनका। उसने मन ही मन सोचा जरूर मेरे बेटे ने धूप में सुखाने डाले काफल खा लिए हैं। उसे क्रोध आया और उसने इस गलती के लिए अपने बेटे को मार डाला। घुघुत रो रहा था। पास से गुजरते एक अन्य घुघुत को उसने बात बताई उसने कहा कि तुम मूर्ख हो। काफल धूप में सूखने के बाद कम हो गए होंगे तुमने अनर्थ किया जो अपने बेटे को मार डाला। ऐसा सुनकर घुघुत सदमें से बेहोश हो गया और पुत्र वियोग में छटपटाते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिए। कहा जाता है कि आज भी वह घुघुत के करू पुतू पुरे पुरे कहकर अपना पश्चाताप प्रकट करता है।

(मौखिक परंपरा के अनुसार संकलित)

(3) रीश ख्वै आपण घर बुद्धि ख्वै पराय घर

(क्रोध अपना घर नष्ट करता है बुद्धि पराए घर को नष्ट करती है)

मनुष्य की बौद्धिकता को प्रदर्शित करने वाली इस कथा में कौवे नामक पक्षी को आधार बनाया गया है। इस कथा के अनुसार- एक कौवे के दो विवाह हुए। वह एक पत्नी को बहुत प्यार करता था तथा दूसरे से नफरत करता था । एक समय कौवा सात समुन्दर पार गया तथा दोनों पत्नियों को अपने साथ ले गया। उड़ते समय उसने अपनी लाड़ली पत्नी को मुंह में पकड़ लिया । दूसरी को उसने अपनी पीठ पर बैठा लिया। सौतियां डाह से जली भुनी पीठ पर बैठी कुलाड़ली पत्नी ने गुस्से से कहा- एक राजा की दो शादियां, एक राजा की दो शादियां' कौवे को सहन नहीं हुआ वह 'रॉड का क्या तू रॉड का क्या?' ऐसा कहते कहते बोलने से उसका मुंह खुला तथा लाड़ली औरत समुद्र में जा गिरी। तब कहा जाता है कि क्रोध अपने घर को नष्ट करता है, जबकि बुद्धि पराए घर को तबाह कर देती है।

(संकलन डॉ देव सिंह पोखरिया)

(4) भगवान कि माय (ईश्वर की माया)

एक बार एक राजा अपनी पत्नी तथा दो बच्चों सहित देश निकाला होने के बाद देश छोड़कर जाने लगा। रास्ते में नदी पार करते समय राजा ने अपनी पत्नी तथा एक लड़के को नदी तट पर छोड़ दिया। एक लड़के को कंधे पर बैठाकर राजा नदी पार कर रहा था। किनारे वाले बेटे पर एक बाघ झपटा तो राजा ने अचानक पीछे देखा। हड़बड़ी में कंघे वाला बालक नदी में गिर गया और बह गया । राजा बहुत घबराया था। उसने नदी के किनारे पर आकर देखा ।उसकी पत्नी बच्चा गायब थे। राजा ने सोचा कि बदकिस्मती आदमी का साथ कभी नहीं छोड़ती। ऐसा सोचते हुए वह नदी तट पर सो गया। बह गए पुत्र को एक मछुवारे ने बचा लिया । बाघ का आक्रमण हुए बच्चे को एक शिकारी ने बचा लिया तथा शिकारी ने उसकी पत्नी तथा बच्चे को पाल लिया। सोए हुए राजा को दूसरे देश वालों ने राजगद्दी पर बैठा दिया क्योंकि उसका माथा चमकदार था। राजा को तो उसका सम्मान मिल गया किन्तु वह अपनी पत्नी तथा बच्चों के बिछुड़ने के कारण परेशान था। संयोग की बात देखिए , जो बालक बहा था, उसे किसी मछुवारे ने पाल पोसकर बड़ा किया तथा वह राजा के महल में नौकरी पर लग गया। दूसरा लड़का जिसे बाघ उठाकर ले गया था एक शिकारी द्वारा बचा लिया गया था। उसे भी राजा के महल में गार्ड की नौकरी मिल गई। राजा की पत्नी भी भटकते भटकते राजमहल में नौकरानी के रूप में कार्य करने लगी। एक दिन राजा ने सारे राजमहल के कर्मचारियों के सामने अपने विगत अतीत की कथा सुनाई। तो राजा की पत्नी जो नौकरानी का कार्य करती थी ,तुरन्त सब कुछ भांप गई ,फिर उसने अपने पुत्रों तथा राजा को सारी कथा सुनाई । सब अवाक थे। ईश्वर के विधान को वरदान समझकर राजा का परिवार राजमहल में आराम से रहने लगा ।

(साभार - श्रीमती सरस्वती दुबे)

इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार की लोककथाएँ कुमाऊँ में प्रचलित हैं। कुछ कहावतों के रूप में कथा के भाव को ग्रहण किए हैं। एक राजाक द्वि सींग (एक राजा के दो सींग) धोति निचोड़ि मोत्यूं मिल (धोति निचोड़ी तो मोती मिल गए) इनरू मुया काथ (इनरवे मुया की कथा) राज के धन मि धन (राज के पास धन कहाँ मेरे पास धन है।) एक कावक नौ काव (एक कौवे के नौ कौवे) काफल पाको मैं नि चाखो (काफल पके पर मैंने नहीं चखे) तथा जुँ हो जुँ हो (मैं जाऊ, मैं जाऊ) कुमाऊँ में प्रचलित प्रमुख लोककथाएँ हैं । इन लोककथाओं में व्यक्ति के निजी जीवन की व्यथा तथा सामाजिक सद्भाव बराबर रूप से विद्यामान है। आप देख सकते हैं कि लोक की भावुकतामयी परिणति ही यहाँ की लोककथाओं में स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

बोध प्रश्न

10. 4 के प्रश्न

क - सही उत्तर को चुनकर लिखिए

1- कुमाउनी में रीश का हिन्दी अर्थ क्या है ?

I. प्रसन्नता
II. क्रोध
III. दुख
IV. वेदना

2 - ‘ के करूँ पुतु पुरे पुरे ’ में पुतु का अर्थ है -

I. भानजा
II. पुत्री
III. बुआ
IV. पुत्र

3 - ‘ पिनगटिया का मरण ’ नामक लोककथा का भाव है-

I. बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक
II. दहेज प्रथा का विरोध
III. परमात्मा से मिलन
IV. नदी पठारों के रूप

ख - निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए

1- लोककथाओं में पशु पक्षियों का वर्णन किस प्रकार हुआ है ?

2 - भगवान की माया नामक लोककथा का सारांश लिखिए।

3 - लोककथाओं में वर्णित स्थानीय तत्व को समझाइए।

10. 5 कुमाउनी लोककथाओं का वर्गीकरण

कुमाऊँ में प्रचलित लोककथाओं के आधारभूत तत्व यहाँ के समाज संस्कृति तथा प्राकृतिक संसाधनों द्वारा निर्मित हैं। आप समझ सकते हैं कि इन प्राकृतिक तथा अधिप्राकृतिक क्रिया व्यापारों द्वारा ही यहाँ के जनमानस ने लोककथाओं को अपने अपने ढ़ग से गढ़ा है। कतिपय विद्वानों ने लोककथाओं के वर्गीकरण का आधार विषयगत भाव को माना है। क्योंकि यहाँ प्रचलित लोककथाएँ अलग अलग विषयों से संबंधित होते हुए समाज के जन का मानसरंजन करने में सक्षम हैं। कुमाऊँ की लोककथाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

1- पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े तथा अन्य जीवों पर आधारित कथाएँ।

2 - अलौकिक ईश्वरीय सत्ता से संबंधी कथाएँ।

3- धर्म अनुष्ठान एवं उपवास विषयक कथाएँ।

4- दैत्य, राक्षस, प्रेत, भूत आदि संबंधी कथाएँ।

5- राष्ट्रीय चेतना तथा बौद्धिक चेतनामूलक कथाएँ।

6 - नीति परक एवं उपदेशपूर्ण कथाएँ।

7 - मनोरंजन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ।

8 - प्राकृतिक जीवन एवं व्यंग्यपरक कथाएँ।

9- बाल जगत की कथाएँ।

बोध प्रश्न

10.5 के बोध प्रश्न

क - निम्नलिखित में असत्य कथन छाँटिए-

1- लोककथाओं में प्रकृति के तत्वों का अभाव है।

2 - लोककथा परंपरा द्वारा विकसित हैं।

3 - उपदेशात्मकता लोककथा की विशेषता नहीं है

4 - लोककथा में बाल कथा समाविष्ट है।

5- न्योली एक लोककथा है।

ख- लघु उत्तरीय प्रश्न

1 - लोककथा का संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

2-- कुमाउनी लोककथाओं में वर्ण्य विषय की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

10.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी लोककथा के इतिहास एवं स्वरूप को समझ चुके होगे।

कुमाउनी लोककथाओं की विशेषताएँ एवं महत्त्व को उनके विषयगत आधार पर जान गए होंगे।

इतिहास काल से परंपरित लोककथाओं का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

लोककथाओं को उनके वर्गीकरण के आधार पर समझ गए होंगे।

आप यह भी भलीभांति समझ गए होंगे कि रचयिताओं के अज्ञात होने पर भी ‘लोककथाएँ जन जन की वाचिक परंपरा में अद्यतम जीवंत है।

10.7 शब्दावली

मनगढन्त	-	मन से स्वतंत्र रूप से निर्मित
गल्प	-	काल्पिनिक कथा
दन्तकथाएँ	-	मौखिक रूप से प्रचलित कथाएँ
श्रुति परंपरा	-	सुनने सुनाने की परंपरा
लेकरंजन	-	लोक का मनोरंजन
उपादान	-	घटक या तत्व
अवदान	-	योगदान

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई 10.3 के उत्तर

क - 1- लोककथा

2- वाचिक,

3- संक्षिप्त एवं सुगठित

10.4 के उत्तर

क - 1- क्रोध

2 - पुत्र,

3 - बुद्धि चातुर्य एवं व्यंग्यपरक

10.5 के उत्तर

क - 1, 3, 5 असत्य कथन हैं।

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- पाण्डे डॉ. त्रिलोचन , कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ- 148 - 170

2- हिमालयन फोकलोर - भूमिका , पृ- 181

3- चातक ,गोविन्द,भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ मध्य हिमालय , पृ -340

4- पाण्डे त्रिलोचन , कुमाऊँ का लोकसाहित्य ,पृ -199

5- जोशी, कृष्णानंद,कुमाऊँ का लोक साहित्य , पृ -35

6- भट्ट, पुष्पलता, कुमाउनी लोककथाओं में जनजीवन ,पृ - 86

7- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग 16,पृ - 629

8- पोखरिया ,देवसिंह एवं तिवारी डी0 डी0 , कुमाउनी लोकसाहित्य , पृ - 80

9 - पूर्वोक्त, पृ -26 -27

10- पोखरिया , डी0एस0 , लोकसंस्कृति के विविध आयाम: मध्य हिमालय के संदर्भ में, पृ -69-71

11- बटरोही, कुमाउनी संस्कृति ,पृ - 35-37

10.10 सहायक ग्रंथ सूची

1- धरती फूल बुरांश की, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

2- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे।

3- कुमाउनी भाषा का उद्धव एवं विकास , प्रोफेसर शेरसिंह विष्ट , अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल)

4- कुमाउनी लोकसाहित्य , डॉ. देवसिंह पोखरिया, डॉ. डी0 डी0 तिवारी,राजहंस प्रेस ,नैनीताल

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- कुमाउनी लोककथाओं के इतिहास एवं स्वरूप पर एक लेख लिखिए।

2- कुमाउनी लोककथाओं का परिचय देते हुए विषयगत आधार पर उनका वर्गीकरण कीजिए।

इकाई 11 कुमाउनी लोकसाहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ
11.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें
11.3.2 कुमाउनी पहेलियाँ
11.3.3 अन्य रचनाएँ
11.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व
11.5 सारांश
11.6 पारिभाषिक शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.9 सहायक ग्रंथ सूची
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

पुराकाल से मानवीय अभिव्यक्ति के दो रूप हमें प्राप्त होते रहे है। एक वाचिक या मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित है तथा दूसरी विधा लिखित अथवा परिनिष्ठित साहित्य के रूप में जानी जाती है। हमने पूर्ववर्ती इकाइयों में इन दोनों रूपों का अध्ययन किया है। कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रकीर्ण विधाओं का अध्ययन इस इकाई के अन्तर्गत किया जाएगा। कुमाऊँ के समाज में मुहावरे ,कहावते तथा पहेलियाँ आदि काल से मौखिक रूप में प्रचलित रही है। इनके निर्माताओं के बारे में अद्यतम कुछ नहीं कहा जा सकता। युग युगों से संचित ज्ञानराशि के रूप में ये प्रकीर्ण कुमाउनी विधाएँ लोकजीवन की रोचक धरोहर के रूप में विख्यात हैं।

प्रस्तुत इकाई के प्रारंभ में कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उनके स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है। कुमाऊँ में प्रचलित लोक कहावतों ,मुहावरों,पहेलियों आदि को पारिभाषित करते हुए उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। कुल मिलाकर प्रस्तुत इकाई लोकसाहित्य की विविध विधाओं का समाहार करती हुई अपने सामाजिक महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

कुमाउनी मुहावरों तथा कहावतों के आशय को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे

कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों में निहित लोक जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

कुमाउनी पहेलियों तथा यहाँ के लोगों की बुद्धि चातुर्य पर प्रकाश डाल सकेंगे

प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ सकेंगे।

11.3 कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियाँ

कुमाऊँ में लोकगीत , लोककथा तथा लोकगाथा के अतिरिक्त अन्य लोक विधाएँ भी प्रचलित हैं। इनमें मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियाँ प्रमुख हैं। ये सभी विधाएँ इतिहास काल के दीर्घ प्रवाह में अपना स्थान निर्धारित करती आई हैं। मुहावरे तथा कहावतों एवं पहेलियों की रचना किस व्यक्ति द्वारा की गई ? किन परिस्थितयों में की गई,? इस सम्बन्ध में आज तक ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि ये विविध विधाएं तत्कालीन परिस्थितियों से लेकर आज तक हमारे समाज में पूरी तरह से जीवंत हैं। इन विधाओं को सूत्रकथन के रूप में जाना जाता है। लोकमानस की अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक परंपरा द्वारा संचालित रही है। लोकजीवन से सम्बद्ध कई घटनाएं तथा विचार प्रायः मौखिक रूप में ही अभिव्यक्त होते हैं। कुमाउनी मुहावरें तथा कहावतों को सूत्रकथन के रूप में समाज में बहुत प्रसिद्धि मिली है। मानव की सभ्यता व संस्कृति के अनेक तत्वों पर आधारित इन प्रकीर्ण विधाओं में संक्षिप्तता सारगर्भितता तथा चुटीलापन है। इनकी मूल विशेषता इनकी लोकप्रियता है। इसी कारण ये कहावतें मुहावरें आदि जनमानस की जिह्वा पर जीवित रहते हैं। कहावतों को विश्व नीति साहित्य का एक प्रमुख अंग माना जाता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में कहावतों तथा मुहावरों के व्यापक प्रयोग हुए हैं।

भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार के कई अन्य देशों में भी इन प्रकीर्ण विधाओं का प्रचलन अपनी अपनी भाषाओं में है। हमारे देश में मुहावरे तथा कहातवें की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। कुमाउनी लोकसाहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोक कथाएं तथा लोकगाथाएं इन कहावतों तथा पहेलियों से गूढ़ संबध रखती है। इन सूत्रात्मक व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली विधाओं द्वारा लोकानुभूति की अभिव्यक्ति सहज रूप में जाया करती है। कुमाऊँ में इन कहावतों का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ के प्रकटीकरण के लिए किया जाता है। पहेलियां भी कुमाउनी जनमानस की लोकरंजक मनोविज्ञान से संबंधित हैं। इनमें बुद्धितत्व को मापने की अद्भुत कला है। लोकमानस की तमाम जिज्ञासाओं में निहित वातावरण तथा मनोविज्ञान का पुट इन पहेलियों का निथार है। मनुष्य की लाक्षणिक त्वरित बुद्धि के आदान प्रदान तथा जिज्ञासा के समाधान हेतु ये विधा लम्बे समय से प्रचलित रही हैं।

कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों के धरातल पर बुद्धि की परख करने में तमाम प्रकीर्ण विधाएं यहां के लोकसाहित्य को समृद्ध किए हुए है। इनके समाज में निरंतर प्रचलित रहने से लोकसाहित्य की परंपरा अक्षुण्ण रही है।

11.3.1 कुमाउनी मुहावरे एवं कहावतें

कुमाउनी समाज में आरंभिक काल से मुहावरों तथा लोकोक्तियों की अनूठी परंपरा रही है। वाचिक (मौखिक) परंपरा के रूप में मुहावरे तथा कहावतें अपने लाक्षणिक अर्थ तथा व्यंग्यार्थ की अनुभूति के लिए प्रसिद्ध है। यदि लोकसाहित्य के विवेचन को ध्यान से देखा जाए तो मुहावरे तथा कहावतें किसी भी लोक समाज दर्शन से जुड़ी होती हैं। इनमें संक्षिप्त रूप से गहन भावार्थ छिपा रहता है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाली इन विधाओं के निर्माताओं के विषय में सटीक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतना अवश्य है कि ये लोक के गूढ़ आख्यान तथा उक्ति चातुर्य के प्रदर्शन में सिद्धहस्त हैं। यहां हम कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कुछ व्यावहारिक मुहावरें तथा कहावतों का अर्थ स्पष्ट करेंगें।

कुमाउनी मुहावरेः- मुहावरा शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा से मानी जाती हैं । अरबी भाषा में मुहावरे का अर्थ आपसी बातचीत, वार्ता या अभ्यास होता है। अंग्रेजी में मुहावरे को प्कपवउ (ईडियम) कहा जाता है।

प्रोफेसर देव सिंह पोखरिया के शब्दों में- इस दृष्टि से किसी भाषा के लिखित या मौखिक रूप में प्रचलित वे सभी वाक्यांश मुहावरों के अन्तर्गत आते हैं। जिनके द्वारा किसी साधारण अर्थ का बोध विलक्षण और प्रभावशाली ढंग से लक्षणा और व्यंजना के द्वारा प्रकट होता है।

मुहावरों का प्रयोग दीर्घकाल से समाज में होता रहा है। यह केवल हिन्दी या कुमाउनी या हिन्दी में ही नहीं ,अपितु विश्व के सभी साहित्यों में अपने ढंग से व्यवहृत है। मुहावरा एक छोटा वाक्यांश होता है। मुहावरे तथा कहावत में मूल अंतर यह है कि कहावत एक पूर्ण कथन या वाक्य होता है। तथा मुहावरा वाक्यांश। कहावत में कथात्मकता होती है। आप जान गए होंगे कि कथा के भाव को आत्मसात करने वाली विधा लोककथा कही जाती है। कहावत कथा के आख्यान को समेटे रखता है ,जबकि मुहावरा लाक्षणिक अर्थ का बोध कराकर समाज में अर्थ प्रतीति को बढ़ाता है।

कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित मुहावरों की संख्या लगभग चार हजार से अधिक होगी। ये संख्या यहां के ग्रामीणों की बोलचाल की भाषा में अधिक प्रभावी है। आपसी वार्तालाप के लिए कुमाउनी में विशिष्ट मुहावरे का प्रचलन है। जैसे- 'क्वीड करण' का अर्थ होता है महिलाओं की गपशप ,किन्तु सामान्य गपशप के लिए 'फसक मारण' मुहावरा प्रचलन में है।

कुमाउनी मुहावरे विविध विषयों पर आधारित हैं। संक्षेप में मुहावरों का वर्गीकरण यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक जीवन पर आधारित मुहावरे

(2) व्यक्तिगत शैली पर आधारित मुहावरे

(3) व्यवसाय संबंधी मुहावरे

(4) जाति विषयक मुहावरे

(5) प्राकृतिक उपादानों पर आधारित मुहावरे

(6) भाग्य तथा जीवनदर्शन संबंधी मुहावरे

(7) तंत्र मंत्र तथा लोक विश्वास संबंधी मुहावरे

उपर्युक्त के आधार पर हम देखते हैं कि मनुष्य के शरीर के अंगों पर भी अधिकांश मुहावरो का प्रचलन समाज में होता आया है।

कुछ कुमाउनी मुहावरों को उनके हिन्दी अर्थ के साथ यहां प्रस्तुत किया जाता है-

(1) ख्वर कन्यूण - सिर खुजलाना

(2) बाग मारि बगम्बर में भैटण - बाघ मारकर बाघ की खाल पर बैठना।

(3) कन्यै कन्यै कोढ़ करण - खुजला खुजला कर कोढ़ करना

(4) स्यैणि मैंसोंक दिशाण अलग करण - पति पत्नी का बिस्तर अलग करना।

(5) आंख मारण - आंख मारना (इशारा करना)

(6) लकीरक फकीर हुण - लकीर का फकीर होना ।

(7) गाड़ बगूण - नदी में बहा देना।

(8) घुन टुटण - घुटने टूटना

(9) घुन च्यूनि एक लगूण - घुटना तथा मुंह साथ चिपकाना

(10) गल्दारी करण - बिचौलिया पन करना

(11 गोरख्योल हुण - गोरखों की भांति होना

(12) बिख झाणण - विष झाड़ना

(13) कांसक टुपर हुण - कांस की डलिया जैसा होना

(14) पातल मुख पोछण - पत्ते से मुंह पोंछना।

(15) जागर लगूण - जागर लगाना।

कुमाउनी कहावतें -

कहावत का अर्थ- कहावत शब्द की उत्पत्ति 'कह' धातु से हुई है। इसमें 'वत' प्रत्यय लगा है। अंग्रेजी में कहावत को च्तवअमतइ (प्रो -वर्ब) कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में कहात के लिए 'आभाणक' शब्द का प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा विज्ञान के ज्ञाता डॉ. के0डी0 रूवाली के अनुसार 'कहावत का संबंध 'कहना' क्रिया से है। हर प्रकार का कथन कहावत की कोटि में नहीं आता। विशेष कथन को ही कहावत कहा जा सकता है। डॉ. सत्येन्द्र का अभिमत है कि कहावत लोकक्षेत्र की अपूर्व वस्तु है।

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कहावतों के संबंध में लिखा है - 'कहावतों ने इतिहास के दीर्घकालीन प्रवाह में भी अपना स्वभाव नहीं बदला है। कहावतों में राष्ट्रीय जाति धर्म आदि के समाजबद्ध तत्व पाए जाते हैं। सामाजिक जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ ही कहावतों को जन्म देती हैं। जब व्यक्ति किसी परिस्थितियों या दृश्य को देखता है तो उसके मन में सहज ही कुछ विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार धीरे-धीरे स्थायी भाव के रूप में किसी सत्य की व्यंजना करने वाली उक्तियों के रूप में विकसित हो जाती हैं।' कहावतों के लिए लोकोक्ति शब्द भी प्रचलित है। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र का अधिकांश भूभाग पर्वतीय है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियां बड़ी विषम हैं। कुमाउनी समाज में कहावतों का प्रचलन आरंभिक काल से हो रहा है। इन कहावतो के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं फिर भी जनजन के मुख से इन कहावतों का प्रयोग होता रहा है । किस देश काल परिस्थिति में कौन सी कहावत प्रयुक्त होगी, यह स्वचालित रूप में जनमानस की बुद्धि के अनुरूप प्रवाहित होती रहती है। इन कहावतों में लोक विशेष की प्रक्रिया, इतिहास तथा स्थान विशेष की कथात्मकता निहित होती है।

कुमाउनी कहावतों में हिन्दी तथा अन्य हिन्दीतर भाषाओं की कहावतों के पर्याप्त लक्षण पाए जाते हैं। कहावतों को विश्वनीति साहित्य का अभिन्न अंग माना जाता है। क्योंकि वैश्विक स्तर पर इनमें लोकसत्य के उद्घाटन की विशेष क्षमता होती है, कुमाउनी लोकजीवन के अनुरूप हम देखते है कि लोक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार ने कहावतों को जन्म दिया है। इन लोक कहावतों में आदिम जातीय परिवारों में बोली जाने वाली लोकोक्तियों का मिश्रण है। स्थानीयता तथा सूत्रबद्धता कुमाउनी कहावतों का मूल लक्षण है।

पं0 गंगादत्त उप्रेती ने कुमाउनी कहावतों का अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में अर्थ स्पष्ट किया है। विषय की दृष्टि से कुमाउनी कहावतों के वर्गीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-

(1) सामाजिक कहावतें

(2) ऐतिहासिक कहावतें

(3) धार्मिक कहावतें

(4) नीति तथा उपदेशात्मक कहावतें

(5) राजनीति संबंधी कहावतें

(6) स्थान विशेष से संबंधित कहावतें

(7) जाति विषयक कहावतें

(8) हास्य व्यग्यपूर्ण कहावतें

(9) कृषि वर्षा संबंधी कहावतें

(10) प्रकीर्ण कहावतें

विविध विषयाधारित कहावतों में कुमाउनी समाज की संस्कृति तथा भाषा के मूल लक्षणों एवं विशेषताओं का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

यहां आप कुछ कुमाउनी कहावतों तथा उनके हिन्दी अर्थ को समझ सकेंगे-

(1) मुसकि ऐ रै गाउ गाउ बिराउक है रीन खेल - चूहे की मुसीबत आई है, बिल्ली के लिए खेल जैसा हो रहा है।

(2) जो गौं जाण नै, वीक बाट के पुछण - जिस गांव में जाना नहीं, उसका पता पूछने (रास्ता मालूम करने) से क्या लाभ।

(3) भैंसक सींग भैंस कैं भारि नि हुन - भैंस का सींग भैंस को भारी नहीं लगता अर्थात अपनी संतान को कोई भी व्यक्ति बोझ नहीं समझता।

(4) आपण सुन ख्वट परखणि कै दोष दी - अपना सोना खोटा परखने वाले को दोष।

(5) लुवक उजणण आय फाव बड़ाय, मैंसक उजड़ण आय ग्वाव बड़ाय - लोहे का उजड़ना आया तो फाल बनाया आदमी का उजड़ना आया तो उसे ग्वाला बनाया।

(6) दुसरक ख्वर पै ख्वर घोसणल आपण ख्वर चुपड़ नि हुन - दूसरे के सिर पर अपना सिर घिसने से सिर चुपड़ा नहीं हो जाता।

(7) ढको द्वार, हिटो हरिद्वार - द्वार ढको ,चलो हरिद्वार

(8) ध्याप्त देखण जागस्यर म्यल देखण बागस्यर - देवता देखने हो तो जागेश्वर जाइए, मेला देखना हो तो बागेश्वर जाइए।

(9) जैक नौव नै वीक फौव - जिसकी नली (कली) नहीं उसका फल

(10) मन करूं गाणी माणी करम करूँ निखाणी- मन तो कितने ही सपने बुनता है ,पर कर्म उसे बिगाड़ देता है।

(11) जॉ कुकड़ नि हुन वॉ के रात नि ब्यानी- जहां मुर्गा नहीं बोलता हो, क्या वहां रात्रि व्यतीत नहीं होती।

(12) बागक अनारि बिराउ- बाघ के रूप में बिल्ली

(13) नाननतिनाक जाड़ ढुग. में- बच्चों का जाड़ा पत्थर में

(14) कॉ राजैकि राणि कॉ भगोतियकि काणि- कहां राजा की रानी कहां भगौतिए की कानी स्त्री।

(15) पूरबिक बादोवक न द्यो न पाणि- पूरब के बादल से न वर्षा न पानी।

11.3.2 कुमाउनी पहेलियॉ

प्रकीर्ण विधाओं के अन्तर्गत कुमाउनी पहेलिया ने भी लोकसाहित्य में अपना एक अलग स्थान बनाया है। कुमाउनी में मुहावरे तथा कहावतों की भांति पहेलियों का प्रचलन भी काफी लम्बे समय से होता रहा हैं। अधिकांश पहेलियां घरेलू कामकाज की वस्तुओं तथा भोजन में काम आने वाली पदार्थों पर आधारित हैं। मानव तथा नियति सम्मत तत्वों पर भी अनेक पहेलियों का निर्माण हुआ है। कुछ कुमाउनी पहेलियां (कुमाऊँ में जिन्हें आ्ण कहते है) यहां प्रस्तुत हैं-

(1) थाई में डबल गिण नि सक चपकन सिकड़ टोड नि सक - थाली में पैसें गिन न सके मुलायम छड़ तोड़ न सके।

उत्तर- आकाश के तारे व सांप

(2) सफेद घ्वड़ पाणि पिहूँ जाणौ लाल घ्वड़ पाणि पि बेर ऊणौ - सफेद घोड़ा पानी पीने जा रहा है लाल घोड़ा पानी पीकर आ रहा है- उत्तर - पूड़ी तलने से पूर्व तथा पश्चात

(3) ठेकि मैं ठेकि बीचम भै गो पिरमू नेगि-बर्तन पर बर्तन बीच में बैठा पिरमू नेगी - उत्तर - गन्ना

(4) लाल लाल बटु भितर पितावक डबल - लाल लाल बुटआ भीतर पीतल के सिक्के उत्तर (लाल मिर्च)

(5) भल मैंसकि चेली छै कलेजा मजि बाव - अच्छे आदमी की लड़की बताते हहैं कलेजे में है बाल –उत्तर- आम

(6) काइ नथुली सुकीली बिन्दी -काली नथ सफेद बिन्दी - उत्तर- तवा और रोटी

(7) तु हिट मी ऊनूं - तू चल मैं आता हूँ

उत्तर सुई तागा

(9) मोटि मोटि कपड़ा हजार - मोटा मोटा कपड़े हजार उत्तर प्याज

11.3.3 अन्य रचनाएं

कुमाउनी लोकसाहित्य की प्रवृत्तियों में स्फुट रचनाओं का भी बड़ा महत्त्व है। लोकजीवन में वर्षो से चली आ रही मौखिक परंपरा में इन रचनाओं को जनमानस ने अपनी जिह्वा पर जीवंत किया है। इन रचनाओं में बालपन की हंसी ठिठोली, गीत तथा बालखेल गीत निहित हैं। बच्चों द्वारा झुंड बनाकर खेले जाने वाले खेलों में कुमाउंनी गीतों को स्थान मिला है। ये गीत बच्चों द्वारा ही खेल में गाए जाते हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चों को ये गीत हस्तांतरित होते रहते हैं।

कुमाऊँ में तंत्र मंत्र का प्रचलन बहुत अधिक हैं। यहां निवास करने वाली आदिवासी जनजातियों में तंत्र मंत्र का चलन बहुत पुराना है। सभ्य समाज के लोग भी झाड़ फूंक तथा तंत्र मंत्र में बहुत आस्था रखते हैं। मनुष्य तथा जानवरों को होने वाली व्याधियों के निवारण के लिए झाड़-फूंक तथा मंत्रों का सहारा लिया जाता है। पीलिया रोग होने पर उसे झाड़ने की परंपरा है। गाय भैंसों को घास से विष लगने पर उन्हें झाड़ फूंक कर इलाज करने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही हैं। इसके अतिरिक्त हास परिहास के लिए या वातावरण को मनोरंजक बनाने के लिए तुकबन्दी करने की परंपरा स्पष्ट दिखाई देती है। ये तुकबन्दियां पारिवारिक सामाजिक नातेदारी की स्थिति का निरूपण बड़े ही हास्य व्यंग्यपूर्ण ढंग से करती है। लोकनाट्य के अन्तर्गत स्वांग करना, प्रहसन करना, रामलीला पांडवलीला, राजा हरिश्चन्द्र का नाटक, रामी बौराणी की कथा पर आधारित नाट्य आदि सम्मिलित हैं। यह लोकमानस की भावभूमि पर स्थानीय परंपरा का उल्लेख करती हैं।

बोध प्रश्न

11.3 क- सही विकल्प का चयन कीजिए

1- छाति खोलण (छाती खोलना) है-

I. मुहावरा
II. कहावत
III. लोकनाट्य
IV. तुकबन्दी

2- खसियकि रीश, भैंसकितीस (क्षत्रिय का क्रोध , भैंस की प्यास) क्या है-

I. लोकगीत
II. लोककथा
III. कहावत

IV. मुहावरा

3. पांडव लीला किस विधा के अन्तर्गत आती है?

I. लोकनृत्य
II. लोकनाट्य
III. मुहावरा
IV. कहावत

4. कुमाउनी लोकसाहित्य की कहावत विधा में पाया जाता है-

I. गीतितत्व
II. नाटक के तत्व
III. कथा तत्व
IV. मुहावरा

(ख) निम्नलिखित लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(1) कहावत तथा मुहावरे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(2) कुमाउनी पहेलियों के चार उदाहरण देते हुए उनका हिन्दी अर्थ तथा उत्तर लिखिए।

11.4 कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएँ तथा महत्त्व

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाएँ लोकमानस के उर्वर भावभूमि के प्रदर्श हैं। आप समझ गए होंगे कि वाचिक परंपरा से ये विधाएं विकसित होकर परिनिष्ठित साहित्य में भी धीरे-धीरे अवतरित होती रही हैं। इन स्फुट विधाओं में कुमाऊँ का लोक साहित्य एवं संस्कृति का निरूपण करने में भी अग्रणी रही हैं। इनकी विशेषताओं एवं महत्त्व को संक्षेप में यहां प्रस्तुत किया जाता है-

कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं की विशेषताएं

(1) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों में लाक्षणिक अर्थ की प्रधानता होती है। ये प्रकीर्ण विधाएं अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ की प्रतीति कराते हैं।

(2) कुमाउनी प्रहेलिकाओं, तुकबंदी ,मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ व्यग्ंयार्थ का बोध कराती हैं। व्यग्ंय के माध्यम से समाज की दशा व दिशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता हैं।

(3) वाक् चातुर्य कहावतों तथा तुकबन्दी का प्रमुख लक्षण है। कथन की गंभीरता के लिए मुहावरे एवं कहावते युग युगों से प्रसिद्ध हैं।

(4) कुमाउनी मुहावरे , कहावतों, पहेलियों तथा तुकबन्दी एवं बालगीतों में संक्षिप्तता पायी जाती है। साधापणतया कहावते एवं मुहावरों को सूक्ति या सूक्तिपरक संक्षिप्त कथन के रूप में देखा जाता हैं।

(5) कुमाउनी प्रकीर्ण विधाओं में सजीवता पायी जाती है। लोकसत्यानुभ्ूति इन प्रकीर्ण विधाओं की प्रमुख पहचान है।

(6) कुमाउनी कहावतों सहित अन्य प्रकीर्ण स्फुट विधाओं के रचयिता सर्वथा अज्ञात हैं। ये स्फुट विधाएँ गद्य एवं पद्य साहित्य के रूप में संचरित रहे है।

महत्त्व - कुमाउनी साहित्य के विविध रूपों में परिनिष्ठित साहित्य द्वारा यहाँ के लोक सम्मत आख्यान तो समय समय पर प्रकट होते रहते हैं, किन्तु एक मौखिक परंपरा के रूप में वर्षो से चली आ रही कहावत,मुहावरा ,पहेलियाँ लोकनाट्य आदि विधाओं का कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में अलग महत्त्व है। वर्तमान में कुमाऊँ क्षेत्र के बुजुर्ग स्त्री पुरूषों के मुख से इन प्रचीन कहावतों लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रचलन होता रहा है। इससे पता चलता है कि वर्तमान में भी साहित्य की मौलिक विधा तथा उसके यथार्थ को कुमाऊँ के जन बहुत महत्त्व प्रदान करते हैं। प्रतिवर्ष नवरात्र में आयोजित होने वाली रामलीलाओं में लोकनाट्य परंपरा का कुशल निर्वहन होता रहा है। इन लोकनाट्य में कृष्ण लीला , पांडव लीला, सत्य हरीशचन्द्र नाटक ,रामी बौराणी सहित कई लोक सम्मत गाथाओं को मंचित कर प्राचीन गरिमामय चरित्रों का प्रस्तुतीकरण किया जाता हैं। जहाँ तक मुहावरे तथा कहावतों का प्रश्न है इनमें अपने लाक्षणिक अर्थ के साथ गागर में सागर भरने की प्रवृति मिलती है। साधारण शब्द देकर विषय गाम्भीर्य का परिचय हमें इनके द्वारा आसानी से प्राप्त होता है। व्यग्ंयार्थ मूलक स्फुट विधाओं के द्वारा यहाँ की लोक मनोवैज्ञानिक शैली का पता लगाया जा सकता है। आदिम समाज शिक्षित नहीं होते हुए भी कितना विवकेशील था। उसने अपनी प्रतिभा की सहजात वृत्ति से कितनी ही लोक विधाओं को विकसित किया । इन सभी बातों पर सम्यक रूप से विचार करने के उपरांत कहा जा सकता है कि संसार की चाहे कोई भी विधा या संस्कृति क्यों न रही हो, उसका समाज के लिए मानस निर्माण का महत्त्व सदा रहा है। ये स्फुट गद्य विधाएँ भी हमारे कुमाउनी समाज को नैतिकता , मानवता, तथा सद्भाव का पाठ पढ़ाने में समर्थ हैं। एक सामाजिक लोक दर्पण के रूप में इन रचनाओं का महत्त्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न

11.4 के बोघ प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

(1) कुमाऊँ के प्रचलित किन्ही चार स्फुट विधाओं के नाम लिखिए।

(2) कुमाउनी प्रकीर्ण (स्फुट) विधाओं की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(3) कुमाउनी कहावतों एवं मुहावरों का सामाजिक महत्त्व समझाइए।

11.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य की अन्य प्रवृत्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

(2) कुमाउनी मुहावरे तथा कहावतों के आशय को समझ चुके होंगे ।

(3) कुमाऊँ में प्रचलित पहेलियाँ तथा उनके उत्तरों को जान गए होंगे।

(4) कुमाउनी स्फुट गद्य विधाओं की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझ गए होंगे।

11.6 शब्दावली

लोकोक्ति - लोक की उक्ति या कथन

प्रकीर्ण - विविध

स्फुट - विविध ,अन्य

लोकनाट्य - लोक नाटक

तुकबन्दी - स्वतः पदों के मिलान की प्रवृत्ति

व्यग्ंयार्थ - व्यग्ंय का अर्थ

सहज - स्वाभाविक

गूढ़ आख्यान - गहन भाव या रहस्यमय विचारधारा

प्रतीति - बोध

11. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.3 के उत्तर

क - (1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) लोकनाट्य

(4) कथातत्व

11.4 के उत्तर

(1) मुहावरा

(2) कहावत

(3) तुकबन्दी

(4) पहेलियाँ

11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) पाण्डे,त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य , पृ -328-343

(2) पोखरिया ,डी0एस0 , लोकसंस्कृति के विविध आयाम, पृ - 76- 78

(3) दुबे, हेमचन्द्र,कुमाउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ- 36 -48

11.9 सहायक ग्रंथ सूची

(1) जनपदीय भाषा साहित्य ,डॉ. शेरसिंह विष्ट तथा डॉ. सुरेन्द्र जोशी, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी

(2) कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्धव एवं विकास ,प्रो0 शेर सिंह बिष्ट ,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल) 2006

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) कुमाउनी लोकसाहित्य के क्षेत्र में कहावतों तथा मुहावरों के योगदान की विस्तृत चर्चा कीजिए।

(2) कुमाउनी स्फुट रचनाओं पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

इकाई12 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप
12.3.1 गढ़वाली और गढ़वाली लोक मानस
12.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक
12.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास
12.3.4 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्गीकरण
12.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा
12.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य
12.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य
12.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य
12.5 सारांश
12.6 अभ्यास प्रश्न
12.7 पारिभाषिक शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

लोक का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है उसके प्रभामंडल की परिसीमा में उसकी संस्कृति, कलाएं , विश्वास, भाषा और इतिहास-धर्म सब कुछ आ जाता है। इन्हें लोक से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। डॉ0 गोविन्द चातक के अनुसार, 'लोक मानस की उद्भावना में इसके साथ ही सामूहिक जीवन-पद्धति का बड़ा हाथ होता है।' उसमें यथार्थ और कल्पना में भेद करने की प्रवृत्ति पर बल नहीं होता, इसलिए जड़-चेतन की समान अवधारणा पर उसका विश्वास बना रहता है। लोक साहित्य में यही लोक मानस बोलता है। मोहनलाल बाबुलकर 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' पुस्तक की भूमिका में इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए

लिखते हैं कि, “साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है और खेलती है। इन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे लोक साहित्य की प्राचीनता के विषय में उल्लेख करते हैं कि, ‘ऋग्वेद में अनेक लोक कथाएं उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राहमण और एतरेय ब्राहमण में ऐसी ही गाथांएं प्राप्त होती हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने भी लोक प्रचलित नाटकों को अपना विवेच्य विषय बनाया है। गुणाढ्य की वृहत्कथा , सोम देव के ‘कथा सरित सागर’ में लोक मानस ही वर्णित है। मध्य युगीन निजंधरी कथाओं में भी मूलरूप से लोक कथाएं ही हैं’। लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोककथाओं,लोक गाथाओं यहाँ तक कि लोक भाषाओं में भी लोक,रसा-बसा रहता है। लोक का प्रदेय ही लोक साहित्य है। यही करण है कि लोक को और उसके साहित्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निष्कर्षतः लोक का साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक को जानने - पहचानने के लिए साहित्य के इतिहास को जानना भी जरूरी है! क्योंकि लोक जैसे -जैसे आगे बढ़ता है, उसकी संस्कृति विकसित होती चली जाती है और उसका इतिहास भी संस्कृति का अनुगमन करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। इस तरह से भाषा का संस्कृति का और लोक व्यवहार का रूप सदैव बदलता रहता है वे निरंतर परिष्कार पाते रहते हैं।लोक के इन घटकों के साथ-साथ लोक साहित्य भी अनुपद चलता रहता है। और उसके साथ-साथ साहित्य का इतिहास भी सृजित होता रहता है। अतएव ’लोक’ को जानने के लिए उसकी परंपराएं, रीतिरिवाज, जातीय विश्वास मिथक, आदि को जानना जरूरी होता है। बिना इन्हें जानें आप लोक को नहीं समझ पाएंगें। लोक को समझनें में लोक साहित्य पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। अतः लोक साहित्य के स्वरूप को जानना भी हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता है। लोक साहित्य के स्वरूप के अन्तर्गत, लोक साहित्य की भाषा, उसकी प्रकृति, सभी गद्य-पद्य नाटक आदि विधाएं ,उसकी सृजन प्रक्रिया भेद-उपभेद, और सौंन्दर्य तत्वों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। अतएव लोक साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके क्रमिक वृद्धिंगत इतिहास पर भी आपकी दृष्टि रहनी चाहिए।

12.2 उद्देश्य

‘गढ़वाली लोक साहित्य’ अन्य भारतीय प्रदेशों के लोक साहित्य की तरह रोचक और लोक मानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएवं ‘गढ़वाली लोक मानस’ के लोक साहित्य के क्रमिक इतिहास को समझना ही इस इकाई लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस का अध्ययन करने से आप गढ़वाली लोक मानस के स्वभाव उनकी प्रवृत्तियों, उनके लोक साहित्य में लोक विश्वासों, मिथकों तथा उनके लोक साहित्य की बनावट व बुनावट के बारे में जान सकेंगें तथा साथ ही आप गढ़वाली लोक साहित्य के उद्भव एवं विकास के क्रमबद्ध इतिहास को भी जान सकेंगे.

12.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

12.3.1 गढ़वाल और गढ़वाली लोक मानस

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, ‘‘बावन गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। लगभग 1500 ई0 में राजा अजयपाल ने इन बावन गढ़ों को जीतकर सबकों अपने राज्य में मिला दिया। तब से इस पूरे पर्वतीय प्रदेश को जिसमें वे बावनगढ़ थे गढ़वाल कहा जाने लगा।, एच0जी बाल्टन ने अपनी पुस्तक ’ब्रिटिस गढ़वाल गजेटियर’ में बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल (गढ़वाल) प्रकारान्तर से कहा है। पातीराम ने अपनी किताब ’गढ़वाल एन्सेन्ट एंड मार्डन’ में ’गढ़पाल से गढ़वाल’ नाम पड़ा स्वीकार किया है। डॉ0 हरिदत्त भट्ट शैलेश’ ने अपनी पुस्तक गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य में लिखा है, ‘मेरी मान्यता है कि गढ़वाल शब्द गडवाल से निकला है। ’गड् और वाड’ ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं। और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है’।

‘गाड़’ बड़ी नदी और ‘गड़’ छोटी नदियों जैसे -दुण्गड, लोधगड आदि। यहाँ अनेक गड़ छोटी नदियाँ हैं। इसलिए गड़वाल छोटी-छोटी असंख्य नदियों का प्रदेश गढ़वाल हुआ। वाल-वाला। वाल शब्द गढ़वाली में बहुत प्रयुक्त होता है। जैसे -सेमवाल, डंगवाल आदि।

कविवर भूषण ने भी अपनी एक कविता में इस भूभाग के लिए ’गडवाल’ शब्द का प्रयोग निम्न पद्य में किया है-

‘‘सुयस ते भलो मुख भूषण भनैगी वाटि

गडवाल राज्य पर राज जो बखानगो।’’

यहां के मूल निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में यहां कक्ष-किन्नर, गन्धर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण,कुलिन्द, खस आदि जातियॉं निवास करती थी। इस के मध्य भाग में कोल, भील और राजस्थान, गुजरात,महाराष्ट्र और बंगाल से यहां बसी हुई जातियॉं निवास करती है। जिन्हें अब गढ़वाली कहते हैं। वर्तमान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में रहने वाले लोग यहाँ बसने के लिए ललायित रहने लगे हैं। यह यहाँ की संस्कृति ,प्राकृतिक छटा और शान्त वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है। गढ़वाली लोक मानस, भोला-भाला, आस्तिक,प्रकृति प्रेमी, शान्त और परम्परावादी है। वह लोक अनुश्रुतियों, रूढ़ियों,देवीदेवताओं की पूजन की विविध परम्पराओं और वीर योद्धाओं, प्रेमियों, धार्मिकों के चरित्र से प्रभावित रहता है। अनेक वाह्य समागतों के गढ़वाल में बस जाने पर अब गढ़वाली जनमानस उनकी संस्कृति को भी अपनाने लग गया है। विवाह के अवसरों पर ‘पंजाबी भाँगडा’ गुजराती ‘गरबा’ राजस्थानी नृत्यगान भी लाकप्रिय हाते जा रहे हैं। बाहर से आए वाद्य वादक, बैंड की धुन में गढ़वाली गीतों को ऐसे गाते और बजाते हैं जैसे वे वर्षो से यहीं बसे हों। गढ़वाली जनमानस ने अपनी परम्पराओं के साथ, देव पूजन आदि में और त्योहारों की रीति नीतियों में भी भारी

परिवर्तन करके अपने मिलनशील स्वभाव और घुलनशील संस्कृति का परिचय दे दिया है। गढ़वाली लोक मानस की भाषा का नाम भी इस प्रदेश के नाम के अनुसार 'गढ़वाली' ही है। गढ़वाल की भाषा गढ़वाली। गढ़वाली में वैदिक संस्कृत, और शौरसेनी प्राकृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं। द्रविड़ भाषा के शब्द और उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा राजस्थानी, गुजराती,महाराष्ट्री भाषाओं के अनेक शब्दों को गढ़वाली जनमानस ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। अब वे इस भाषा में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सरलता से पता नहीं लगता है। भाषा के साथ यहॉ का साहित्य भी बंगाली, राजस्थानी,और गुजराती साहित्य से आंशिक प्रभावित जान पड़ता है।

यहाँ की वीरगाथाएं, लोककथाएं और पवाड़ों का स्वर सरगम बहुत कुछ राजस्थानी से प्रभावित लगता है। वीरता, प्रेम, प्रतिज्ञा पालन, धर्म रक्षा, दैवीशक्तियों पर विश्वास, जादू-टोना, नृत्यगान में अभिरूचि आदि इसके प्रमाण हैं। प्रकृतिप्रेमी गढ़वाली लोक मानस की गंगा जी और चारोंधामों (बद्रीनाथ, केदार नाथ, गंगोत्री और यमनोत्री) में अगाध श्रद्धा है। देश की सीमा पर आज भी यहाँ के वीर सैनिक तैनात हैं जो कि देशभक्ति, और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक बनकर गढ़वाली लोक मानस की एक दिव्य छवि, देश और विश्व के आगे रखते हैं। तथापि शराबखोरी,अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों से भी यहां का लोकमानस मुक्त नहीं माना जा सकता है.

12.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक

गढ़वाली का लोक साहित्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो रूपों में प्राप्त होता है। बहुत-सा अलिखित साहित्य श्रुति परम्परा से बाजगियों, व पंडितों द्वारा रटा-रटाया होने से सुरक्षित है। यहाँ के लोक ने वीरों की गाथाओं को परम्परा से गा-गाकर सुरक्षित रखा, नानी ओर दादियों ने लोक कथओं,बालगीतों (लोरियों) और ऐणा-मेणा (पहेली और लोकोक्तियों) को बच्चों को सुना-सुनाकर जीवित रखा है। साथ ही जागरियों, और पवाडा गायकों ने देव गाथाओं तथा श्रंगार वीरता से भरे, गीतों तथा वार्ताओं व कथासूत्रों को सुरक्षित रखकर अपने कर्तव्य का पालन किया है। गढ़वाली के लिखित साहित्य को खोजने का काम अंग्रेज विद्वानों तथा अधिकारियों ने सर्व प्रथम किया।, मध्य पहाड़ी और गढ़वाली बोली लोक साहित्य के संकलन में एटकिन्सन के साथ उनके गढ़वाली विद्वानों का अवदान सराहनीय रहा है। जिनमें स्व0 तारादत्त गैरोला' पादरी मिस्टर ओकले, भजन सिंह, सिंह, डॉ0 गोविन्द चातक आदि का नाम अग्रगण्य कहा जा सकता है। डा0 गोविन्द चातक ने जहॉ लोक गीत- और लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं का संकलन किया, वहीं मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचन करके उसके स्वरूप तथा विकास को दर्शाया है। इन्होंने ही पहली बार लोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। चातक जी ने गढ़वाली लोक साहित्य को एक साथ अनेक पुस्तकों में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली के भाषा तत्व पर अनुसंधानपरक ग्रंथ लिखे (गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है। सुप्रसिद्ध लेखक भजन सिंह,सिंह, जनार्दन काला, अबोध बंधु। बहुगुणा, डॉ0 महावीर प्रसार लखेड़ा, कन्हैयालाल डंडरियाल,डॉ0 प्रयाग दत्त जोशी,डॉ0 जगदम्बाप्रसाद कोटनाला और

डॉ0नन्दकिशोर ढौंडियाल ने गढ़वाली लोक साहित्य के लेखन एवं संवर्धन में उल्लेखनीय कार्य किया है।

12.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना में गढ़वाली लोक भाषा के लिखित विकास के पाँच चरण माने हैं ।(1) आरम्भिक युग (2) गढ़वाली युग (3) सिंह युग (4)पॉधरी युग (5)आधुनिक युग। वे लिखते हैं, कि गढवाली भाषा में लिखित परंपरा सन् 1800 से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढवाली भाषा की लिखित परम्परा सन् 1850, तो कोई 1852, तथा कोई 1900 ई0 को आधुनिक युग,अथवा आरम्भिक युग मानते हैं। प्रारम्भ की रचनाएं हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, हर्षपुरी लीलानन्द कोटनाला की हैं। सन् 1892 में गढवाली भाषा में मिशिनरियों ने बाईबिल प्रकाशित की, और गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली हितोपदेश छापी । प्रारम्भिक युग की दो कवितायें , चेतावनी,और 'बुरो संग'(हर्षपुरी) जी की है। गढवाली युग गढवाली पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। 1905 में गढवाली के अंक में प्रकाशित 'उठा गढ़वालियों' सत्यशरण रतूड़ी की रचना थी, जिसने गढवाली मानस को झकझोर दिया था। चन्द्रमोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरौला, गिरिजादत्त नैथानी, विश्वम्भर दत्त चन्दोला बल्देव प्रसाद शर्मा 'दीन' की रामी तारादत्त गैरोला की सदेई और योगेन्द्र पुरी की फुलकंडी, चक्रधर बहुगुणा की रचना मोछंग तोताकृत गैरोला का प्रेमीपथिक भवानीदत्त थपिलियाल के, जयविजय और प्रहलाद नाटक ने गढ़वाली के पद्य और नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की । गढवाली छन्दमाला (लीलानन्द कोटनाला) तथा गढ़वाली पखाणा(शालीग्राम वैष्णव) की कालजयी कृतियाँ हैं। भजन सिंह 'सिंह' अपने कृतित्व से एक युग प्रवर्तक कवि और लेखक के रूप में गढवाली लोक साहित्य में अवतरित हुए। उनका युग उनके नाम से ही ('सिंह युग') कहलाने लगा. इस कालखंड के लोक साहित्यकारों में भजनसिंह,सिंह के अतिरिक्त कमल साहित्यलंकार , विशालमणि शर्मा, ललिताप्रसाद 'ललाम' सत्यशरण रतूड़ी उल्लेखनीय हैं। पांथरी युग के कर्णधार भगवती प्रसाद पांथरी थे। उनकी रचना बजवासुरी के बाद भगवतीचरण 'निर्मोही' की हिलांश पुरूषोत्तम डोभाल की वासन्ती तथा भगवतीप्रसाद पांथरी लिखित नाटक भूतों की खोह, पाँचफूल उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के स्वनाम धन्य कवियों में अबोधबन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद कंकाल सुदामाप्रसाद प्रेमी, सच्चिदानन्द कांडपाल, उमाशंकर 'सतीश' डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल , आदित्य राम दुदपुड़ी, महावीर प्रसाद गैरोला, जीतसिंह नेगी और डॉ0 गोविन्द चातक उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग के गढवाली लोक साहित्यकारों में नरेन्द्र सिंह नेगी, मधुसूदन थपलियाल,कुटुज भारती, निरंजन सुयाल,लोकेश नवानी, रघुवीर सिंह रावत 'अयाल' , महेन्द्र ध्यानी और चन्द्र सिंह राही प्रमुख हैं

12.3.4 'गढ़वाली लोक' साहित्य का वर्गीकरण

(क) लोक गाथा - गढवाली लोक साहित्य को विशेषकर लोक गाथाओं को डॉ0 गोविन्द चातक ने चार भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक गाथाएं (2) वीरगाथाएं (3) प्रणय गाथाएं (4) चैती गाथाएं। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाओं का आधर पौराणिक है। वीरगाथाओं में तीलूरौतेली, लोदी रिखोला, कालू भंडारी,रणूरौत, माधोसिंह भण्डारी की प्रमुख गाथाएं हैं। प्रणय गाथाओं में, तिल्लोगा (अमरदेव सजवाण) राजुला मालूशाही तथा धार्मिक गाथाओं में पाण्डव गाथा, कृष्ण गाथा,कुद्रू-विनता, और सृष्टिउत्पत्ति गाथा मुख्य है।

(ख) लोक कथा - कथा शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'कहना'। कहना से ही कहानी बनी है। कथसे 'कथा'शब्द निष्पन्न हुआ है। लोक अपनी बात को अपने कथन को जिस विधि से कहता है वही लोककथा है। लोक कथा में लोक मानस की अपनी व्यथा-कथा और कल्पना, तथा रहस्य-रोमांच, विश्वास,रीति- रिवाज व्यवस्था, रूढ़ि और मिथक (लोक विश्वास) कार्य करते हैं। इन्हीं से लोक का हृदय कथा बुनता है। उसमें प्राण डालता है और लोक ही उसे मान्यता भी देता है। लोक कथाएं लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। गढवाली में कथा-कानी, बारता तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। गढ़वाली की लोक कथाएं अपने वर्ण्य विषय के कारण निम्नवत् वर्गीकृत हैं -1 'देवी-देवताओं की कथाएं , 2 परियों, भूतों,प्रेतों की कथाएं 3 आँछरियों की कथाएं 4 वीरगाथाएं 5 पशु पक्षियों की कथाएं 6 जन्मान्तर-पुनर्जन्म की कथाएं 7 रूपक और प्रतीक कथाएं 8 लोकोक्ति अप्सराओं की कथाएं। पक्षियों की गढ़वाली कथाएं निम्न रूपों में वर्गीकृत की गई हैं -

पक्षीकथाएं - चोली, घिडूडी,घुमती, कौआ, पता पुरकनी, जिस्ता, हाथी-टिटों, समुद्रभट्कुटरू, करैं, कठफोड़वा, सतरपथा-पुरै-पुरै, सौत्यापूत पुरफुरै, तिलरू, स्याल।

पशुकथाएं - स्याल हाथी की कथा /स्याल बाघ की कथा/स्याल भगवान की कथा/ ऊँट हाथी की कथा , बाघ और बटोही की कथा/हिरण स्याल और कौआ/ स्याल और तीतर।

ज्ञान नीति की कथाएं -अच्छी सलाह / दुखः में चितैकी, वफादार कुत्ता,महत्त्वाकांक्षा आदि इस प्रकार लोक कथा के अन्तर्गत कतिपय लोक कथाएं (देव विषयक) भी गिनी जा सकती हैं ।

व्रत कथाएं - पूर्णमासी,बैकुठं चतुर्दशी, शिवरात्री, संकटचौथ आदि की कथा भी गढ़वाली लोक साहित्य में प्रकारान्तर से प्राप्त होती है।

व्यंग्य कथाए - कन्हैयालाल डंडरियाल की हास्य व्यंग्य कथा के अन्तर्गत 'सत्यनारायण की कथा' इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र कठैत की व्यंगात्मक कथाएं /कहानियाँ बहुचर्चित हो रही हैं जिसमें उनकी 'धनसिंगै बागी फस्ट' कुल्ला-पिचकरी,कृतियाँ उल्लेख्य हैं।

12.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा

गढ़वाली के लोक साहित्य से पहले हम आपको गढ़वाली भाषा के लिखित रूप से परिचित कराएंगें। गढ़वाली भाषा की पहली विशेषता यह है कि गढ़वाली उकार बहुला भाषा है और इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। गढ़वाली भाषा के आरम्भिक लिखित रूप

का पता देवप्रयाग मंदिर के सन् 1335 के महाराजा जगतपाल के दान पात्र से चलता है यह विवरण गढ़वाली भाषा में निम्नवत् है -

“श्री संवत्1412 शाके 1377 चैत्रमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतीपाल रजवार ले0 शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट्ट सर्वभूमि जाषिनी कीती जी यांटो मट सिलापट”।

अब देवलगढ़ में महाराज अजयपाल (1460-1519) का लेख देखिए

’अजैपाल को धरम पाथो भंडारी करौं उक’ ।

अब महाराजा पृथ्वीशाह (1664) का गढ़वाली में लिखा लेखांश प्रस्तुत है “श्री महाराजा पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भंडारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पलि परम् विचित्र श्री मथुरा वौराणी ज्यूल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भंडारी ज्यूल पाट चढ़ाया प्रतिष्ठा कराई......” इन लेखों में दी गई गढ़वाली भाषा को पढ़कर अब आप जान गए होंगे कि इसमें गढ़वाली के साथ संस्कृत शब्दों की भरमार है

‘ग्रियर्सन’ ने गढ़वाली के विषय में लिखा है कि “यह स्थान-स्थान पर बदलती है । यहाँतक की परगनै की बोली का भी अपना भिन्न रूप है, प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है फिर भी गढ़वाली का अपना एक आदर्शरूप (स्टैण्डर्ड) है’।’’ ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- श्रीनगरी 2- नागपुरिया 3-बधांणी, 4-दसौल्या 5-राठी 6- टिहरियाली 7- सलाणी 8-माझ-कुमैय्या।

“किसी आदमी के दो लड़के थे’’ इस वाक्य में इन भाषाओं के रूप देखिये-

1- श्रीनगरी- कै आदमी का द्वी नोन्याल छया।

2- नागपुरिया- कै वैख का दुई लौंडा छया।

3- दसौल्या- कई आदमी का दुई लडीक छया।

4- बधाणी- कै आदमी का द्वि छिचौड़ी छिया।

5-राठी- कै मनख की द्वी लौड़ छाया।

6- टिहरियाली- एक झणा का द्वी नौन्याल थया।

7-सलाणी- कै झणा का दुई नौना छया।

इस उदाहरण से आप समझ गए होंगें कि गढ़वाली की क्रियाएं एवं वाक्य स्थान-स्थान व (प्रत्येक जिले) में भिन्न हैं। फिर भी वे अच्छी तरह समझ में आ जाती हैं। संस्कृत से बिगड़े हुए तद्भव और शौरसेनी प्राकृत से ये रूप प्रभवित प्रतीत होते हैं। अब हम आपको गढ़वाली के लिखित लोक साहित्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी दे रहे हैं।

12.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य

हर्षपुरी जी जिनके विषय में आप पहले भी अध्ययन कर चुके हैं उनके द्वारा लिखित कविता 'बुरोसंग' गढ़वाली में लिखित पहली गेय कविता है। जिसकी बानगी (स्वरूप) इस प्रकार है-

" अकुलौ माँ मायाँ करी कैकी बी नी पार तरी।

बार विधा सिर थरी,वैकु वि कू रोयेंद" ॥

इन्हीं का एक विरह गीत देखिए -

"आयो चैतर मास सुणा दौं मेरी ले सास।

वण-वणूडे सबी मौलीं गैन चीटे मौलिगैंन घास ॥

स्वामी मेरो परदेश गै तो द्वी तीन होई गैन मास।

अज्यू तई सुणी नीमणी ज्यू को ह्वेगे उत्पास ॥

जौ का स्वामी धरू छन तौंको होयुं छ विलास।

रंग-बिरंगे चादरे-ओढ़ी अड़ोस-पड़ोस-सुहास" ॥

सन् 1905 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन के बाद का कालखंड "गढ़वाली युग" के नाम से जाना जाता है। गढ़वाली युग के कवि सत्यशरण रतूड़ी की कविता द्रष्टव्य है।

" उठा गढ़वालियों, अब त समय यो सेण को नीछ

तजा यही मोह-निद्रा कू अजौं तैं जो पड़ी हीं छ।

अलो! अपणा मुलक की यीं छुरावा दीर्घ निद्रा कु

सिरा का तुम् इनी गेहरी खड़ा या जींन गेर याल्ये

अहो ! तुम भरे त देखा कभी से लोक जग्यां छन

जरा सी ऑख त ख्वाला कनोअब घाम चमक्यूँछ"।

तोता कृष्ण गैरोला के प्रेमी पथिक में कल्पना और रसान्विति इतनी सुन्दर है कि कविता में प्रकृति का बिंब स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है मन्दाक्रान्ता छन्द नें उनकी कविताओं पर चार चाँद लगा दिए हैं -

चंदा आध सरद पर थै सर्कणी बादल्यूँमा

कॉसी की-सी थकुलि रड़नी खत्खली खूल्याँमा।

निन्योर ये निजन बण का नौवल्या गीत गाणी

शर्दे रातैं शरदि लगणी, शीतली पौन-पाणी ।।

अर्थात् आधा चन्द्रमा आसमान में बादलों के बीच में कॉसे की थाली के समान रगड़ खाते हुए चल रहा है। नीचे धरती में निम्यारे

झिल्लीयॉ निर्जन वन में (झन-झन करते हुए) नए नवेली के गीत गा रहे हैं। शरद की रातों में सर्दी बढ़ जाने से पानी और हवा भी ठंडी हो गई है।

सिंह युग अथवा समाज सुधार युग - इस युग के मूर्धन्य कवि भजन सिंह ’सिंह’ थे। उनके नाम से गढ़वाली कविता साहित्य का यह युग सिंह युग कहलाया। इस युग की कविताएं छन्दबद्ध, अलंकृत और समाज सुधार की भावना से ओत- प्रोत हैं। कविवर भजन सिंह ’सिंह’ के सिंहनाद की कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

फ्रांस की भूमि जो खून से लाल छ

उख लिख्यूँ खून से नाम गढ़पाल छ

रैंदि चिन्ता बडौं तै बड़ा नाम की

काम की फिर्क रैंदी न ईनाम की

राठ मा गोठ मौं को अमर सिंह छयो

फ्रांस को लाम या भर्ति ह्वै की गयो।

ज्यौं करी धर मूं लाम पर दौड़िगे

फ्रांस मा, स्वामि का काम पर दौड़िगे।

नाम लेला सभी माइ का लाल को

जान देकी रखे नाम गढ़वाल को।

इस तरह सिंह युग की सभी कविताएं प्रायः देशभक्ति और बलिदान के साथ ही प्रकृति चित्रण तथा समाज सुधर-उद्यम, पुरूषार्थ आदि से ओत प्रोत हैं। आत्माराम गैरोला 'गढ़वाली युग' की एक श्रेष्ठ काव्य विभूति माने जाते हैं। उनकी कविता ''पंछीपंचक'' से उदाहरण प्रस्तुत है -

अरे जागा कागा कब बिटि च कागा उड़ि उड़ी

करी काका काका घर घर जागोणू तुम सणी।

उठी गैन पंछी करण लगि गैन जय-जय

उठा भायों जागा भजन बिच लागा प्रभुजि का।

घुमूती घूगूती घुगति घुगता की अति भली

भली मीठी बोली मधुर मदमाती मुदमयी।

गढ़वाली में रचित यह कविता बहुत बड़ी है और शिखरणी छन्द में रची गई है। इसकी काव्यात्मक लय और शब्दावली संस्कृत के प्रभाव को लिए है।

बलदेव प्रसाद 'दीन' संवाद काव्य लिखने में अधिक सफल रहे हैं, उनकी लोक प्रिय रचना 'रामी' (बाटा गोडाई) और जसी आज भी गढ़वाली जनता के मुख से सुनी जा सकती है। रामी का संक्षिप्त काव्यरूप प्रस्तुत है -

बाटा गोडाई क्या तेरो नौं छे, बोल बौराणि कख तेरो गौं छ?

बटोही-जोगी ! न पूछ मैकू। केकु पुछदि, क्या चैंद त्वैकू ?

रौतु की बेटि छौं, रामी नौछ। सेठु की ब्वारी छौं,पालि गौंछ।।

विरह गीत लिखने में गढ़वाली कवि अधिक सफल हुए हैं क्योंकि पर्वतीय नारी की विवसता पति के परदेश जाने के कारण और बढ़ जाती है। गढ़वाल का प्राकृतिक सौदर्य, विरहणी नायिकाओं (नवविवाहिताओं) को अधिक सताता है। कवियों ने इन गढ़वाली बिरहिणियों के हृदय की चीत्कार और कर्मव्यथा को निस्सन्देह अपनी कविताओं और काव्य रूपों (खण्ड काव्य) (गीति काव्य) या (गीतिनाट्य) में प्रखर स्वर दिया है। पुरूष की विरह दशा का वर्णन चक्रधर बहुगुणा ने अपने कविता संग्रह मोछंग की छैला कविता में इस प्रकार किया है -

जिकुड़ि धड़क धड़क कदी, अपणि नी छ वाणी।

छैला की याद करी उलरिगे परागी।

पखन जखन सरग गिडिके, स्यां स्यां के विजुलि सरके

ढॉडु पड़ं तड़-तड़ के,रूण झुण के पाणी

छैला की याद करी उलगिरे पराणी ।।

पांथरी युग - भगवती प्रसाद पांथरी की कृति 'बजबांसुली' से यह युग शुरू होता है। इस परम्परा में 'भगवतीचरण' निर्मोही' की 'हिलांस' काव्यत्व की दृष्टि से उच्च कोटि की कृति मानी गई है। कहानी संग्रह भी इस युग में खूब निकले 'पाँच फूल' पांथरी जी का कहानी संग्रह है। भूतों की खोह, 'वासन्ती'आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं । इस युग के लेखकों में अबोधवन्धु बहुगुणा ने 'तिड़का,मण्डाण,घोल' अन्तिमगढ़ आदि प्रख्यात रचनाओं से अपनी विशेष पहचान बनाई थी। उन्होंने गढ़वाली का पहला महाकाव्य ''भूम्याल'' भी रचा। कन्हैयालाल डंडरियाल का महाकाव्य नागरजा' इसी युग का प्रदेय है। भले ही यह काव्य बहुत बाद में प्रकाशित हो पाया। कुएड़ी, अज्वाल,मंगतु उनकी श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं। उनके गढ़वाली नाटक जो अभी तक अप्रकाशित हैं दिल्ली और मुम्बई में मंचित किये गये। उनका व्यग्य 'बागी उप्पन की लड़ै' लोक प्रिय खण्ड काव्य है। उनका 'नागरजा' एक कालजयी गढ़ावाली महाकाव्य है। गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सच्चिदानन्द कांडपाल, डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' डॉ0 गोविन्द 'चातक' डॉ0पुरूषोत्तम डोभाल, जीत सिंह नेगी आदि इस युग के श्रेष्ठ गढ़वाली साहित्यकार माने जाते हैं। इस काल खण्ड में मोहनलाल बाबुलकर एक समीक्षक के रूप मे उभरे हैं। इस युग में गढ़वाली साहित्य में शिल्प की दृष्टि और वर्ण्य विषयों की विविधता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। गढ़वाली में लिखे नाटब्कों की संख्या के विषय में बाबुलकर जी का मत है कि ''इनकी संख्या लगभग 67 है। नाटक लेखकों में ललित मोहन थपल्याल, स्वरूप ढौडियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, महावीर प्रसाद गैरोला, उमाशंकर सतीश और नित्यानन्द मैठानी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग:- डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला इसे चतुर्थ चरण कहते हैं। इस कालखंड में चन्द्रसिंह राही का 'रमछोल' 2382 प्रकाश में आया । आत्माराम फोन्दानी का गीत संग्रह 'रैमोडी' के गीतों ने लोकरंजन किया उसके बाद 'चिन्मय सायर' मधुसूदन प्रसाद थपलियाल, निरंजन सुयाल, कुटजभारती के काव्य प्रकाश में आए। मधुसूदन प्रसाद थपलियाल ने गढ़वाली में गजल विधा को आरम्भ किया। उनकी काव्य पुस्तकें 'कस-कमर' और 'हर्षि-हर्वि' लोक प्रिय रही हैं। हास्य व्यंग्य विधा में कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा बनाए काव्य मार्ग पर सर्व प्रथम (रघुवीर सिंह 'अयाल') चले। अयाल जी के दो काव्य गुढयार (1988) पूर्णतः हास्य -व्यंग्य के छलकते रस कलश हैं। हास्य व्यंग्य विधा को ललित केशवान ने 'दिख्यांदिन तप्यांघाम' (1994) रचकर चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। लोकेश नवानी की 'कभी दिल्ली निजौं' सुप्रसिद्ध लोक प्रिय रचना स्वीकारी गई। कतिपय नए रचनाकार भी लगातार वर्तमान काल की समस्याओं को अपनी हास्य-व्यंग्यमय कविताओं को व्यंजना और वक्रोक्ति द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हो रहे हैं। नरेन्द्र कठैत का साहित्य इसका प्रमाण है। बाल साहित्य की कमी गढ़वाली में पहले से ही बनी रही है। अबोध बन्धु के 'अंख-पंख' के बाद कोई उत्कृष्ट बाल रचनाएं प्राप्त नहीं हुई है। नए लेखक भी इसकी उपेक्षा कर रहे हैं

इस कालखण्ड के साहित्य की सूची आपके सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

	कृति का नाम	कवि/लेखक	प्रकाशन वर्ष
1-	द्वी ऑसू	सुदामा प्रसाद प्रेमी	सन् 1962
2-	गढ शतक	गोविन्द राम शास्त्री	’’ 1963
3-	उज्याली	शिवानन्द पाण्डे	’’ 1963
4-	रंत रैवार	गोविन्द चातक	’’ 1963
5-	विरहिणी शैलबाला	पानदेव भारद्वाज	’’ 1964
6-	वट्वे	सुदामाप्रसाद प्रेमी	’’ 1971
7-	अग्याल	सुदामापसाद प्रेमी	’’ 1971
8-	माया मेल्वड़ी	भगवान सिंह रावत	’’ 1977
9-	पितरूकू रैवार	गोकुलानन्द किमोठी	’’ 1979
10-	गढ़गीतिका	बलवन्त सिंह रावत	’’ 1980
11-	समलौण	जग्गू नौटियाल	’’ 1980
12-	कुयेड़ी	कन्हैयालाल डंडरियाल	’’ 1990
13-	सिंह सतसई	भजन सिंह ‘सिंह’	’’ 1985
14-	गंगू रमोला	बृजमोहन कवटियाल	’’ 1997
15-	पार्वती	अबोधबन्धु बहुगुणा	’’ 1994

12.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य

उत्सव प्रिय गढ़वाली जन-मानस का चित्त जहां रमणीय अर्थवाली गीतिकाओं से आनन्दित होता रहा है, वहीं नाटकों में जो दृश्यऔर श्रव्य दोनों होते हैं से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। नाटक देखने के लिए जितनी भीड़ जुटती है उतनी कविता सुनने के लिए नहीं। महाकवि कालिदास ने इसी लिए नाटक को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है, ‘काव्येषु नाटकं रम्यं’ अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है। महर्षि भरत ने, ‘लोकःविश्रान्ति जनन नाट्यं- लोक की थकान मिटाने वाला,आनन्द प्रदान करने वाला, व्यवहारिक ज्ञान देने वाला, तत्व नाटक को माना है। गढ़वाली का नाट्य लेखन भवानी दत्त थपल्याल के ‘जय विजय’ और प्रह्लाद नाटक से शुरू माना जाता है। विश्म्भर दत्त उनियाल का ‘बसन्ती’, ईश्वरीदत्त जुयाल का परिवर्तन भगवती

प्रसाद पांथरी के दो नाटक (क) भूतो की खोह (ख) अधः पतन, तथा गोविन्द चातक का 'जंगली फूल' अबोध बन्धु के नाटक- 'कचविडाल' 'अन्तिमगढ़' माई को लाल नित्यानन्द मैठानी की 'चौडण्डी' प्रेम लाल भट्ट का 'बॅट्वरू' कन्हैयालाल डंडरियाल के नाटक- कन्सानुक्रम, राजेन्द्र धस्माना का 'अर्धग्रामेश्वर' विश्वमोहन बडोला का 'चैतकी एक रात' ललितमोहन थपलियाल का नाटक 'एकीकरण' तथा उर्मिल थपलियाल का 'खाडू लापता' आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली नाटक हैं । इनके अतिरिक्त जीत सिंह नेगी का नाटक 'डॉडा की अएड' गोविन्द राम पोखिरियाल 'मलेथा की कूल' आदि उल्लेख्य हैं।

12.3.8 कहानी एवं उपन्यास

गढ़वाली में सर्वाधिक संख्या में कहानी लिखी गई हैं । कहानीकारों में रमाप्रसाद पहाड़ी, भगवती प्रसाद जोशी 'हिमवंतवासी' डॉ0 उमेश चमोला, हर्ष पर्वतीय आदि उल्लेखनीय हैं । डॉ0 गोविन्द चातक ने सर्वाधिक कार्य नाटकों पर किया है । अब हम आपके अध्यनार्थ गढ़वाली नाटकों की भाषा के कुछ अंश संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं -

प्रहलाद नाटक की भाषा:-

'कालजुगी,माराज मी पर गुस्सा न होवन । सरकार, मैंत सब ताड़नाकर चुक्यूॅं । ये पर बार-बार अर गुरू जी न भि ये तैं दिखाये खूब धुधकार-फुटकार,। परन्तु ये न जरा भर भिन छोडि बोलणा, नारेण-हरिकर्तार! यां ते महाप्रभु! कुछ आपही कराये को बिचार हमते होई गयां ये ते बिलकुल लाचार।'' -

अब विश्म्भर उनियाल के वसन्ती नाटक की काव्यभाषा प्रस्तुत है -

''दिदि, देख दौं हम लोंगू या कतना बुरो रिवाज छ कि नौन्यूं को ब्यौ बुडयो से कर देंदन। भई इना करण से त जैं दिन नोंनि निजै वे दिन हि दतेंरे द्योन त अच्छो हो । जिंदगीभर का रोण-धोण से नि होण हि भलो'' ।

अब भगवतीप्रसाद पांथरी के नाटक 'अधःपतन' के संवाद देखिए -

''नैनुक्य सोनाकि कुंजी हि प्यार को दरवाजू खोल सकदी? पर क्य कंगाल कि हृदय कि अभिलाषा धूल मा हि लिपटण का होन्दी? वे का प्यारकी कुलाई कि डालि क्या दुसरू का सुख की होलि । जव्नौण का हि लपकदि?''

राजेन्द्र धस्माना के 'अर्धग्रामेश्वर' की भाषा देखिए -

सूत्रधार- ''अब ब्वनु क्या च माराज सुन्दरता मा यूडा दि छन हमरि ब्वनाच अब खुणैं भग्यान वक्नन्दा तै भग्यान भि छिन,अर गरीब ब्वलन्दा ते गरीब हुई अर एक चित दिखे जा ।

इस प्रकार गढ़वाली नाटकों की भाषा सशक्त और अपनी मांटी की सौंधी गंध लिए हुए है।

12.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य

लोकवार्ताएं केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायःरात ही उसके लिए उपयुक्त होती हैं रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों के मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थीं। आज भी लोकवार्ता का महत्त्व वैसे ही बना हुआ है जैसे पहले था। लोकवार्ता का काई भी ज्ञाता व्यक्ति मंडाण अर्थात् देववार्ता सुनने और देवता का नृत्य देखने के लिए एक समूह के बीच में बैठते हैं और अवसर पाते ही समूह के बीच से उठकर दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर या उनके छिद्रों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ता है वह वार्ता के आमुख के रूप में ढ़ोल या डमरू(डौंर) बजाने वाले औजी (वादक) को संबोधित करता है।

देवी देवताओं की वार्ता के समय सभी श्रोता एवं दर्शक भक्तिभाव से बैठे रहते हैं। देवी-देवताओं के समान ही अनिष्ट कारिणी शक्तियों जैसे (भूत,आँछरी) आदि की मनौती के लिए भी उन्हें नचाने खेलवाने के लिए नृत्य के साथ गीत गाए जाते हैं। उन वार्ताओं में कथा का अंश बहुत होता है और उसको रांसो कहा जाता है। डॉ0 गाविन्द चातक इसे 'रासो' से उत्पन्न मानते हैं उनका मानना है कि बोल-चाल में रासो का अर्थ धर्म कथा होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनारंजन होता है लेकिन रासो मनुष्यों को देवताओं और आँछरी,आदि के भय से निर्मुक्त करने की नृत्यमयी उपासना है। लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत -गढ़वाली का वृहत अलिखित साहित्य लोकवार्ता के रूप में आज भी मौजूद है। एटकिन्सन ने भी गढ़वाल के इतिवृत्त लेखन में लाकवार्ता साहित्य की मदद ली। उसने यहां की धार्मिक गाथाओं, तथा यहाँ के ऐतिहासिक अनैतिहासिक वीरों, राजाओं, महाराजाओं, वीरांगनाओं के गीतों को लोगों के मुख से सुना और उनसे यहां की सभ्यता-संस्कृति व भाषा का विश्लेषण किया। गढ़वाली लोकवार्ताएं राजस्थान,गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल के लोकवार्ता साहित्य के समकक्ष है। गढ़वाल की देव गाथाओं में भूगोल के साथ-साथ इतिहास की जानकारी भी मिलती है। विशेषकर तंत्र मंत्र और देव गाथाओं में पौराणिक भूगोल का वर्णन मिलता है जैसे - देवलोक जाग नागलोक जाग ! खारा समुद्र जाग, अन्तरिक्ष लोक जाग। इनके साथ ही गढ़वाल के प्रमुख पर्वत,नदी,घाटी, गुफाएं वन आदि का वृतान्त मिलता है। यहां के भड़ों और राजाओं की विरूदावली व वंशानुचरित भी गढ़वाली लोकवार्ता के अन्दर मिल जाते हैं।

12.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- गढ़वाली लोक साहित्य से परिचित हो गए होंगे.

- गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास से भी परिचित हो गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास प्राप्त कर चुके होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को जान गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य के विभिन्न युगों(काल-खंडों) को जान गए होंगे

12.6 शब्दावली

1.	सृजित	-	बनना , निर्मित होना
2.	आस्तिक	-	ईश्वर पर आस्था रखने वाला
3.	मानस	-	मन, हृदय
4.	मूर्धन्य	-	बड़ा, विशेष
5.	चीत्कार	-	चीखना, चिल्लाना
6.	उत्कृष्ट	-	अच्छा, सर्वश्रेष्ठ

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र0उ0 1 (क) सोमदेव (ख) गुणाड्य (ग) पातीराम (घ) योगेन्द्र पुरी

प्र0उ0 2 (क) मिथक -पुराने लोक विश्वासों,पौराणिक कथा एवं गाथाओं को 'मिथक' साहित्य कहा जाता है। मिथक में सत्य का विस्थापन होता है। जैसे हम कहें उषा के बाद सुर्योदय होता है तो मिथक कार उसे कहता है -सूर्य उषा का पीछा करता है।

प्र0उ0 3 तीन प्रमुख पक्षी कथाएँ निम्नलिखित हैं:-

(1)भटकुटुरू (2) चोली (3)सतर पथा-पुरै-पुरै (4) पता-पुरकनी।

प्र0उ0 4 - अजयपाल का धर्मपाथो (अनाज मापने का बर्तन) भंडारियों के यहॉ है।'

प्र0उ0 5 - ग्रियर्सन ने गढ़वाली भाषा के विषय में कहा है कि 'यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहां तक कि परगने की बोली का भी अपना भिन्न रूप है। प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है । और गढ़वाली का अपना एक आदर्श (स्टैण्डर्ड) रूप है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं।

प्र0उ0 6 – "किसी आदमी के दो लड़के थे"। इसका रूप नागपुरी और बधाणी में निम्नवत् होगा -

(क) नागपुरिया बोली में - कै बैख का दुई लौंडा छया।

(ख) बधाणी बोली में -कै आदमी का दिव् छिचौड़ी छिया।

प्र0उ0 7 'सिंह युग' की गढ़वाली कविताओं की 4 विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(1) सुधारवादी दृष्टिकोण (2)छन्दबद्ध कविताएं व गीत (3) लोक से जुड़ी गढ़वाली भाषा का काव्यात्मक प्रयोग (4) संवाद परकता।

प्रश्नोत्तर 8- बाटागोडाई (रामी) लोक गीत - लोक काव्य के स्वचिता का नाम है -बल्देव शर्मा 'दीन'।

12.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2396, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास को विस्तारपूर्वक समझाइए .

2. गढ़वाली लोकसाहित्य के क्रमिक विकास की विवेचना कीजिए .

ईकाई 13 गढ़वाली लोक गीत - स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 गढ़वाली लोक गीत : एक परिचय

13.3.1 गढ़वाली लोक गीतों का वर्गीकरण

13.3.2 गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख विशेषताएं

13.3.3 गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

13.3.4 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

13.3.5 'चांचड़ी' लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं

13.5 सारांश

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.7 पारिभाषिक शब्दावली

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

गढ़वाल अने प्राकृतिक सौन्दर्य, धार्मिक स्थानों का केन्द्र स्थल और सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विरासत के कारण सर्वत्र पहचाना जाता है। हिमालय के पांच खण्डों में एक खण्ड केदारखण्ड है। यही आज गढ़वाल मंडल है। प्राचीन साहित्य में इसे इलावृत्त, ब्रह्मपुर, उत्तराखण्ड, रुद्रहिमालय, चुल्ल हिमवन्त, कृतपुर, कार्तिकेयपुर के नाम से अभिहित किया गया है। गढ़वाल नाम सम्भवत 1500ई. पूर्व जब अजयपाल ने छोटे-छोटे बावन गढ़ों को जीतकर अपने एकछत्र राज्य की नींव डाली, तब से प्रकाश में आया है। सम्भवतः गढ़ों की अधिकता के कारण या गढ़ों वाला प्रदेश होने से इसका नाम गढ़वाल पड़ा होगा। इस नाम के पड़ने पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। इसका अध्ययन संक्षेप में आप पन्द्रहवी इकाई में कर चुके हैं। यहां के प्राचीन निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। पिछले कुछ वर्षों में मध्य हिमालय में जो पुरातात्विक उत्खनन हुये उनसे कुछ प्रमाण जरुर मिले है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रागैतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण, कुलिन्द, खस आदि जातियों की निवास भूमि रहा है। गढ़वाल में यक्ष पूजा के अवशेष मिलते हैं।

गढ़वाल के रबाई क्षेत्र में बसने वाले किन्नौर कहलाते हैं। किरात कुमांऊ, नेपाल, और गढ़वाल में राजी या राज किरात या किरांती नाम से जाने जाते है। भील कभी भिल्डा नाम से जाने जाते थे। भिलंग, भिलंगना, भल्डियाना नाम वाले अनेक स्थान आज भी गढ़वाल में है। साथ ही नागों के स्थान की सूचक नागपुर पट्टी यही गढ़वाल में है। बाद में राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल और दक्षिण से भी यहां लोग आये और बस गये। उत्तराखण्ड की भाषा गढ़वाली में द्रविड, कोल, नाग आदि जातियों की भाषाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट दिखता है। कई नृवंशों की छाप गढ़वाली शब्द सम्पदा में शब्द रुप में तथा समाज में सांस्कृतिक मेलापक के रूप में देखी जा सकती है। भाषाओं के इस मेलापक और सांस्कृतिक घाल मेल वाले गढ़वाली लोक के लोक जीवन के बीच उपजे गीत भी उनकी वृह्त सांस्कृतिक विरासत का स्मरण कराते है। डॉ0 गोविन्द चातक का मत है कि ‘लोक गीत जीवन और जगत की अभिव्यक्ति करते है। उनमें कोई विषय वर्जित नही होता है’। गढ़वाल के लोकगीत भी इस सत्य के अपवाद नही है। उनका कहना है कि गढ़वाल के कुछ नृत्यों के आधार पर वर्गीकृत हुए है। छोपती, तान्दी, थाड्या, चौंफुला, झुमैलों आदि नृत्यों के नाम हैं और उनके साथ गाये जाने वाले गीतों को भी ये ही नाम दे दिये गये है। यही बसन्ती, हरियाली, माघोज, होली, दीवाली, पंचमी, ऋतु तथा त्यौहारों में पायी जाती है। जैसे चैती ऋतु गीत हैं, गढ़वाल में अब सभी संस्कार गीत उपलब्ध नहीं हैं। मृत्यु के गीत केवल रबाई जौनपुर में प्रचलित हैं। गढ़वाल में व्यापक रूप में विवाह के गीत मिलते है, उनको मांगल कहा जाता है। देवी देवताओं के नृत्यमयी उपासना के गीत जागर कहलाते है। कुछ भागों में झूड़ा और लामण गीत भी मिलते हैं। गीतों के स्थानीय नामों तथा उनके वर्ण्यविषयों में अधिकांशतः कोई आधारभूत एकता नही है। उदहारण के लिए नृत्यों पर आधारित गीतों का नामकरण गीतों के भावसाम्य उपेक्षा सा करता है। चौंफुला, झुमैलों, चांचरी, तान्दी, थाड्य आदि नृत्यगीत अपने वर्ग के गीतों की भाव तथा विषय सामग्री की एकता छादित नही करते है। जैसे-

कोई चौंफुला प्रेम का है तो कोई लड़ाई का। वे अपने वर्ग के गीतों की ताल गति और लय का पालन तो करते हैं परन्तु भाव और विषय की अनुरूपता इनमें नही दिखती है। नृत्यों के अतिरिक्त गीतों की शैली, गाने के अवसर आदि को भी लोक ने वर्गीकरण का आधार बनाया है। प्रेमगीत इसके उदहारण है। छोपती, लामण, बाजूबन्द तथा अन्य प्रेमगीत रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते है। इस तरह लोकगीत गढ़वाल में प्रचलित या विभाजित वर्गीकरण में धार्मिक लोकगीत, संस्कारगीत, वीरगाथागीत, प्रेमगीत, स्त्रियों के गीत, नीति उपदेश, व्यवहारिक ज्ञान के गीत और विवाहगीत, जनआन्दोलनों, के गीत प्रमुख हैं।

'औजी' वाहक चैत के महीने में 'चैती' गाते हैं। हास्य-व्यंग्य, राष्ट्रीय चेतना के गीत अब विलुप्ति के कगार पर हैं। केवल आन्दोलनों के गीत सृजे जा रहे हैं। उत्तराखण्ड आन्दोलन पर श्री नरेन्द्र सिंह नेगी के गीत सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं और उनकी आगे भी सनातन प्रासंगिता बनी रह सकती है। बसन्त ऋतु में गाए जाने वाले गीतों चैती, बसंती, झुमैलों और खुदेड़ गीतों के सृजन की सम्भावना बनी रहेगी। बाल गीत अब समाप्त हो गए है। लोकगीतों में कभी इनकी भी तूती बोलती थी। युगान्तर में 'माँ' के मदर और पिता के 'डैड' हो जाने पर माँ की लोरीवाले वात्सल्यमय लोकगीतों को अब सुनने को कान तरस रहे है। प्राचीन घटना मूलक गीत भी अब शेष नहीं बचे हैं। कुछ गीत मुगल और गोरखा आक्रमण के बचे हैं। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए थे उनकी स्मृति भी लोकगीतों के रुप में बची है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष, श्रीदेव सुमन पर लोकगीतों की रचना हुई। जन समस्याओं को लेकर भी लोकगीत लिखे गये और अब भी सर्वाधिक रूप में लिखे जा रहे हैं। गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, बाघ, टिड्डी, अकाल, बाढ़ और आपदाओं पर पहले भी लोकगीत रचे गए और वर्तमान में भी इन पर लोकगीत रचे जा रहे हैं। देवपूजा के लोकगीत आज भी अपने जीवन्त रुप की साक्षी दे रहे हैं। पाण्डवों से सम्बन्धित पंडवार्ता, मंडाण, नागराजा को नचाने की लोकवार्ता, घंडियाल, बिनसर, कैलावीर, महासू, क्षेत्रपाल 'जाख' नरसिंह और भैरवनाथ देवी आदि जो गढ़वाल के स्थानीय लोकदेवता हैं उन पर आधारित लोकगीत, लोकवार्ता (जागर) के रूप में मौजूद हैं। गढ़वाल के ये विविध प्रकार के लोकगीत गढ़वाल की लोकमान्यता, विश्वास, धार्मिक तथा संस्कृति स्वरुप और आमोद-प्रमोद के परिचायक हैं। ये लोकगीत सचमुच में गढ़वाल के लोक मानस को जानने पहचानने के ज्ञानकोष हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते है और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?
2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?
3. डॉ0 गोविन्द चातक और मोहनलाल बाबुलकर द्वारा किया गया गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण कैसा है - क्या है ?

4. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या है ?

5. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?

6. लोकगीतों के कथानक और उनकी शैली से परिचित हो सकेंगे।

7. लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रवृत्तियों को जान सकेंगे।

13.3.1 गढ़वाली लोकगीत एक परिचय

लोकगीत, लोक मानस के चित्त की रागात्मक अभिव्यक्ति का स्वरूप है। मन जब हर्ष-विषाद और रोमांच तथा आश्चर्य से तंरगित या क्षुब्ध होता है, तब मानव मन के ये सुप्त रागात्मक 'स्थाई भाव' रस में परिणित होने के लिए 'गीत' का रुप धारण करते हैं। 'गीत' में छन्द तुक और लय का विधान होता है। 'गढ़वाल' प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। यहां की प्रत्येक वस्तु कवितामय है। नीरव- उतुंग शिखर, हिमानी चट्टानी, बर्फीले चमकदार पहाड़, नीला विस्तृत आकाश, नयनभिराम पशु-पक्षियों का क्रीड़ागंन गढ़वाल अपनी मोहकता से गीतों के सृजन के लिए अनाम कवियों को युगों-युगों से आमंत्रण देता रहा है। मानों अनेक लोकोत्सव और मेले-त्यौहार इस देवभूमि में गीतों को बिछाते और ओढ़ते हैं। 'गीत' यहां की संस्कृति का प्राण तत्व हैं। अतः संस्कारों, क्रियाओं, रीति-परिपाटियों के गीत भी अलग-अलग रूप के हैं। प्रमुखतः छोपती, तान्दी, थाड्या, चौफुंला, झुमैलों आदि यहां के लोक के नृत्य हैं लेकिन इन नृत्यों में जो गाया जाता है वह गीत इन्ही नृत्यों के नाम पर छोपती गीत, थाड्या गीत, तान्दी गीत चौफुला और झुमैलों गीत के नाम से पहचाने जाते हैं। चौफुंला प्रेम का गीत है तो कोई वीरता का, कोई वन्यजीव के आक्रमण का वर्णन प्रस्तुत करता है तो कोई चौफुंला हास्य का पुट लिए होता है। चौफुंला गीत अनेक भावों पर आश्रित होते हैं।, इनके नृत्य में हाथ, पैरों और शरीर की नृत्यमुद्रा का पद क्रम भी भिन्न-भिन्न होता है। विवाह के गीत संस्कार गीत हैं जिन्हें मांगल कहा जाता है। छोपती, लामण, बाजूबन्द आदि प्रेमगीत भाव और रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते हैं।

तथपि इनका युक्तिसंगत वर्गीकरण निम्नवत किया जा सकता है-

1. धार्मिक गीत 2. संस्कारों के गीत 3. वीरगाथा 4. प्रेमगीत 5. स्त्रियों के गीत 6. नीति-उपदेशों वाले गीत 7. राजनीति एवं समाज सुधार और आपत्ति (अकाल, बाढ़ पशु व्याघ्रादि का आतंक) पर आधारित गीत और विविध गीत, बाल गीत आदि।

गढ़वाल में ऋतुगीतों की अपनी अलग ही पहचान है। ऋतुगीतों में चैती सर्वाधिक लोकप्रिय और परम्परागत गीत हैं। कुमांऊ में इसे ऋतुरैण (ऋतुओं की रानी) कहा जाता है। इस गीत को औजी या बादक चैत के महीने में गाते है। यही नही बादी जाति इन गीतों को गाती ही नहीं बनाती भी है। ये सब गीत, जातियों की दृष्टि से बने हैं, लेकिन ये गीत सभी में फैले हैं। किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। भले ही एक वर्ग विशेष इनका रचियता एक गायक होता है। ये गीत उनके व्यवसायिक हित को भी साधते हैं। चैत के महीने औजी (आवजी, बाद लड़की

(घयाण) के माईके से उसके ससुराल में जाते हैं और चैती गाकर ससुराल पक्ष से दक्षिणा प्राप्त करते हैं। ऋतुगीतों का अपना लोक पर भारी प्रभाव हैं ये काव्यात्मकता लिए हुए होते हैं। बसन्त ऋतु कर गीत प्रस्तुत है- ‘‘उलरया मैना, ऐगे खुदेंड़ बसन्त, बारा रितु बौड़ी ऐन बारा फूल फूलेन!’’ बासलो कफ्फू मेरा मैत्यों की मैती,। यह गीत नवविवाहिता के मन को करुणा और वात्सल्य तथा श्रृंगाररस से ओत-प्रोत कर देता है। अधिकांश गीत जीवन की क्षणभंगुरता को भी प्रदर्शित करते है। ‘छूड़ा’ छोपती की अपनी विशेषताएं अलग हैं। ‘छूडे’ भले ही प्रेम गीत नहीं हैं लेकिन अन्य विषयों के साथ मिलकर प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। ‘बाजूबन्द’ श्रृंगारी युगल जनों का एकान्तिक प्रेम गीत हैं। त्यौहारों के गीत, होली, चौमासे और वर्षा ऋतु में कुयेड़ी के लौंकने पर एक करुण दृश्य की संरचना कर देते हैं। विरहतप्त, पर्वतीय नारी के हृदय की कोमल भावनाएं मायके की याद में कभी अपने परदेशी पति की याद में प्रकट होकर वातावरण को गमगीन कर देती है। एक गढ़वाली गीत प्रस्तुत है-

‘‘काला डांडा पछि बाबाजी काली छ कुयेड़ी

बाबाजी मैं यखुली लगदी डेर

यखुली मैन कनके की जाण विराणा विदेश ?

आज दिउलू बेटी तने हाथी-घोड़ा

त्वै दगड़ जाला लाडी तेरा दीदा भुला

त्वै लाड़ी मैं यखुली नी भिजौऊ’’

हिन्दी भावार्थ है, ‘‘काले पर्वत के पीछे पिताजी काले बादल है। पिताजी! मुझे अकेले डर लगता है। मैं पराए देश कैसे जाउंगी। पिता कहता है- पुत्री मैं तेरे आगे पूरी बारात भेजूंगा। तेरे पीछे हाथी, घोड़े भेजूंगा। तेरे साथ बेटी तेरे भाई जायेंगे, बेटी मैं तुझे अकेले नहीं भेजूंगा। मैं तुझे गायों के गोठ दूंगा, मैं तुझे बकरियों की डार दूंगा’’।

झुमैलों - यह गढ़वाली नृत्यगीत गढ़वाल की धरती को जब अपने गायकों की कंठध्वनि और पैरों की क्रमागत धम्म-धम्म की ध्वनि से गुंजित करता है तब संगीत और श्रृंगार भाव का एक साथ अवतरण हो जाता है और मन में गुदगुदी होने लगती है। कहीं-कहीं पर ‘करुण‘ रस भी चित्त को भिगों देता है। एक उदहारण प्रस्तुत है-

‘‘ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों’’।

झुमैलों गीत लड़कियों द्वारा मायके की याद में गाये जाते हैं । जिनकी टेक ही झुमैलों होती है। इनके साथ वे झूमकर नृत्य करती हैं। ये गीत बसन्त पंचमी से विषुवत संक्रान्ति तक चलते हैं।

खुंदेड़ गीत - ''जै भग्यान का ब्वे बाबू होला

स्ये उंका सहारा मैतूड़ा जाला

मेरा मैत छपन्याली डाली, कुल्यां की छाया

ये पापी सैसर रुखड़ा डांडा दायां, बायां"।

अर्थात्- ''जिस भाग्यवान बेटी के माता-पिता होंगे वे उसे मायके बुलाएंगे। उनके सहारे वह मायके जाएगी। मेरे मायके में छतनार चीड़ के वृक्षा की छाया है। इस पापी ससुराल में दाएं-बाएं रुखे पर्वत ही पर्वत है"।

प्रणय गीत - ये गीत अपने पति की याद में विवाहिता स्त्री द्वारा गाए जाते हैं वह गीत में अपने पति को अपना दर्द बताती है और मिलन की तड़फन जतलाती है और कालिदास की विरहिणी नायिका की तरह बादलों को देखती, नदियों, पक्षियों से अपना रैबार भेजती है। अपने प्रेमी को उलाहना भी देती है। गढ़वाली में प्रेम गीतों में देवर-भाभी, जीजा-साली के गीत बहुत प्रचलित हैं। 'बाजूबन्द' भी श्रृंगार के अतिरंजन पूर्ण मादक वर्णन भरे होते है। ये एकान्तिक, प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-विद्रोह के गीत है।

निष्कर्षतः श्रृंगार, प्रेम, वासना, करुणा और धर्म विश्वास इन लोक गीतों का प्राणतत्व है। संगीत की मादकता और गीत की बानगी उसके बोल मन को उमंगित करने में समर्थ होते हैं- उदाहरण के लिए एक गीत प्रस्तुत है-

''नाच मेंरी वीरा, तेरा घुंघरू बाज्या छम

घुगता की घोली, तेरी रुबसी धिची होली

कुछ भर्या आंख्योन, कुछ भर्या गोलीन

मेरों हिया भरियूं, छ तेरी मीणी बोलीन"।

अर्थात्-

''हे मेंरे ह्रदय की रानी वीरा! (प्रेमिका का नाम) तेंरे घुंघरू छम-छम बजते हैं। मेरा ह्रदय तेरी मीठी बोली से भरा है। प्यारी। अपने ह्रदय पर तू चिन्ता का बोझ मत डाल तू मेरी आखों में रीठे की दानी जैसी घूमती है। तूने मुझे अपनी बांकी नजर से मार डाला है। मेरा ह्रदय तेरी मीठी बोली से भर गया है। तेरी खूबसूरत गोल मुखाकृति घुघते के घोल सी सुन्दर है"।

निष्कर्ष - लोकगीत गढ़वाली लोक साहित्य की एक प्रमुख विधा हैं। ये लोक जीवन से उपजते हैं तथा जीव और जगत की अनुभूति करके सृजे जाते हैं। इनमें कोई भी विषय ऐसा नही हैं जो लोकगीतों के वर्ण्य विषय के अन्तर्गत न आता हो। वर्गीकरण के आधार पर इन्हें संस्कारों, रासनुभूतियों, सामाजिक क्रियाओं, रीतियों, त्यौहारों और जातियों (छन्दों गेयात्मकता) के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। गढ़वाली लोकगीत यहां के नृत्यों के आधार पर भी नामांकित किए गए हैं। जैसे - छोपती, तान्दी, थाड्यो, चौफुलों, झुमैलों आदि गढ़वाली नृत्यों के नाम है लेकिन उनके गीतों के भी इसी नाम से पुकारते हैं। विवाह के गीत, मांगल कहलाते है, 'संस्कार गीत' भी बहुप्रचलित है। देवी-दवताओं के गीत जागर या लामण, झूड़ा गीत के रुप में प्रसिद्ध हैं। मोहनलाल बाबुलकर ने इन्हें धार्मिक गीत, संस्कार गीत, वीरगाथा, प्रेमगीत, स्त्रियों के विरह गीत, नीति उपदेश तथा व्यवहारिक ज्ञान सम्बन्धित गीत और विविध गीत के रुप में विवेचित किया गया है। औजी वादक चैती या ऋतु गीत गाते हैं। यहां हम आपकी जानकारी के लिए संक्षिप्त में इन गीत रूपों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। ऋतुगीत का उदहारण है -

''उलर्या मैनों ऐगे खुदेड़ बगत,

बार रितु बौड़ी ऐन, बार फूल फूलेन।

सरापी जायान मां जी विधाता का घर

केक पाली होलु मांजी निरासू सी फूल

गौं की नौनी स्ये गीत बासन्ती गाली

जौकी बोई होली मैतुड़ा बुलाली''।

गढ़वाली पक्षी, तोता, हिलांस, कफ्फू, घुघती बसन्त के आगमन की सूचना देते हैं। उनके स्वरों से अचेतन मन में सिहरन सी उठती है। विहरणी स्त्री 'कफ्फू' पक्षी को अपने मैत (मायके) से आया पक्षी मानकर गीत गाती है-

बासलों कफ्फू मेरा मैत्यों कू मैती

कफू बासलो मेरा मैत्यों की तीर।

कफू बासलो नई रीति बौड़ली

कफू बासलो मेरी ब्वे सुणली

मैकू ताई, कलेऊ भेजली।

मेरा मैती सुणला ऊं खुद लगली।

'खुद' इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय होता है। कुमांऊनी में इसे 'नराई' कहते है। लोक साहित्य में हिलांस, कफ्फू, धुधती आदि पक्षी नारी उत्पीड़न के प्रतीक के रूप में लोक धारणा में घर किए हुए हैं। इनके जीवन में गढ़वाली नारी अपने ही अन्तर्मन की छाया पाती है। धुधती के विषय में एक जनश्रुति यह भी है कि उसकी विमाता (कही सास) ने उसे जब वह नारी थी मारा था। आज भी वह पक्षी बनकर के 'धुधती' वासूती (मां सोई है) पुकारती हुई अपनी मां को खोजती है।

गढ़वाली गीत प्रेम से भी लबालब भरे होते हैं। एक छोपती गीत प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूड़ी मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो,

छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेमगीतों के अन्तर्गत 'बाजूबन्द' में भी छोपती के समान ही संवादगीत होते हैं। अन्तर इतना है कि छोपती चौक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री- पुरुष के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाए जाते हैं। 'छूड़े' प्रेमगीत तो नहीं है पर उनमें अन्य विषयों के साथ प्रेम की अभिव्यक्ति भी होती है। मूलतः वे सूत्र रुप में गठित सूक्ति गीत कहे जा सकते है। इनमें कुछ गीत जीवन और जगत की क्षणभंगुरता पर आश्रित है। कुछ गीत भेड़ पालकों के जीवन पर आधारित है। कुछ प्रेम सम्बन्धी है और कुछ नीति, आदेश या उपदेश सम्बन्धी इनके नायक वे ही प्रेमी-प्रेमिका होते है जो जीवन में किसी पीड़ा को लेकर जी रहे है। कई गीत समायिक समस्याओं पर भी रचे जाते है। त्यौहारों के गीत, आन्दोलनों के गीत, हास्य-व्यंग्य गीत, बाल गीत आदि। स्वतन्त्रता आन्दोलनों के दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष पर गीत बने, अकाल, टिड्डी दल, गरीबी, बेरोजगारी गीतों के विषय बनते रहे है, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

13.3.2 गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण

मोहनलाल बाबुलकर का लोकगीतों का वर्गीकरण वैज्ञानिक है। संक्षेप में उनका वर्गीकरण देखिए -

संस्कारों के गीत	जन्म
	विवाह
	मृत्यु

देवी-देवताओं के स्तुति गीत	होली गीत
	नगेला गीत
	गंगा माई के गीत
	देवी के गीत
	भूमि पूजन के गीत
	कूर्म देवता के गीत
	हरियाली के गीत
	हनुमान पूजा गीत
	हील प्रस्तुति
	खितरपाल पूजन गीत
	अग्नि के गीत
खुदेड़ गीत	भाई के सम्बोधित गीत
	सास, ननद, जेठानी की निन्दा से सम्बन्धित गीत
	मां को सम्बोधित बेटी के गीत
	भादो और असूज, चैत के महीने गाए जाने वाले गीत
	फल-फूलों को सम्बोधित गीत
	मायके को सम्बोधित बेटी के गीत
विरह गीत	
सामूहिक गीत	थड्या, चौफुंला
तंत्र-मंत्र के गीत	रखौली
	समौण
	सैठाली
	नुखेल
	प्रभाव मोचक गीत
लघु गीत	बाल गीत (लोरियां)
	अक्कू-मक्कू
	अरगण-बरगण
	घुघती-वासूती
	नौनीकती वीस
वादियों के गीत	घौंघा
	भामा

यूँजी
छुमा
कुसुमाकोलिन
जीजा-साली
लसकमरी
डिबली भकम वम सरैला
गणेसी, हे यारि रिंजरा, गयेली आदि

एवं सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों पर आधारित गीत-

1. युद्धगीत एवं दानियों पर आधारित गीत।
2. नया जमाना।
3. नेता विषयक गीत।
4. आर्थिक संकट के गीत।
5. संक्रान्ति के गीत।
6. स्थानीय विषयों पर सम्बन्धित गीत।

13.3.3 गढ़वाली लोकगाथा गीतों की प्रमुख विशेषताएं -

लोकगाथा गीत के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। शब्दकोष के अनुसार- बैलेड वह स्फूर्तिदायक या रोचक कविता है, जिसको कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित होता है। इसी प्रकार प्रोफेसर किटरेज न बैलेड को ऐसा गीत कहा है- ''जिसमें कोई कहानी हो अथवा वह कहानी हो, जो गीत के माध्यम से व्यक्त की गई हो"। डॉ0 सत्येन्द्र लोकगाथा गीत में कथा और गेयता को अनिवार्य मानते है। कतिपय अन्य विद्वानों ने भी लोकगाथा गीत की परिभाषा में मौखिक परम्परा और अज्ञात स्वयिताओं को भी सम्मिलित किया है। डॉ0 दिनेश चन्द्र बलूनी के अनुसार, 'मानव सभ्यता के साथ-साथ नृत्यों, गीतों एवं गाथाओं का विकास हुआ होगा। जो मौखिक परम्परा के आधार पर श्रुतिरुप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते गये। मौखिक परम्परा के आधार पर ही ये लोक जीवन में फैले हुए हैं। अस्तु उनमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन का पूरा समय मिलता रहा है। इसलिए लोकगाथा गीतों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि लिपिबद्ध करने पर इनकी गति एवं प्रगति रुक जायेगी, क्योकि लोकगाथा गीतों की जीवनशक्ति उनकी मौखिक परम्परा में ही निहित है। यह भी देखने में आता है कि कतिपय लोकगाथा गीतों का आदान-प्रदान स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं किया जाता है, ऐसे लोकगायक अपनी विद्या को प्रायः निश्चित् शिष्य परम्परा को ही देना चाहते है। क्योंकि इनके पीछे धार्मिक भावना और पवित्रता से जुड़ी हुई भावना निहित रहती है। फलतः कई लोकगाथाएं

मंत्रों के समान अकाल-काल कवलित भी हो गई है। इस प्रकार लोकगाथा 'गी' लिखित और अलिखित गेय काव्य रचना है, जिसमें किसी लोक प्रिय आख्यान, घटना अथवा नायक के वर्णन के साथ-साथ ऐतिहासिक जो प्रायः विवादग्रस्त होती है'। उत्तराखण्ड गढ़वाल में लोकगाथा गीतों की एक समृद्ध परम्परा है। इन गाथा गीतों की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार है।

13.3.4 लोकगाथा गीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक- गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डॉ0 प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं''। गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है। ''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है'' ।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति - लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डॉ0 उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है-

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम''।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक- लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गये, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर

गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग- लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं- लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदहारणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे है-

रमोली - द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता' रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

6. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव- गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

7. संदिग्ध ऐतिहासिकता - गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन

उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

8. मौखिक परम्परा - लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं बल्कि श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डॉ0 गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डॉ0 प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

9. लोकरुचि के विषय - ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा गीतांे से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

10. विद्वता का अभाव - लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिये जाते हैं।

11. सामूहिकता - लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। ‘‘पंडों‘‘ ऐसा ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

12. निष्कर्ष - गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन 'गाथासप्तशती' आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर' और 'एडवर्ड' जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित है। कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड' प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता क साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

13.3.5 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गए्वाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे है। इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर

प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना' से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में ,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी' जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू' के भाई 'लूला गंगोला' के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी उसकी पत्नि और मां 'देवू' के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां - जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे - वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा' । वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत''।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां - शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल' की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी'' ?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा- वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास- गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गये मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

7. ‘चांचड़ी‘ लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं- पूर्व में अभी हमनें आपकों गढ़वाली के लोगाथात्मक गीतों की प्रकृति एवं विशेषताओं से परिचित कराया था, उसमें आपने बाजूबन्द, थड़िया, चौफुलस, तान्दी, छोपती आदि गीतों के बारे में जाना था। चांचडी़ के अन्तर्गत पूर्व में वर्णित सभी प्रकार के गीत, जिन्हें नृत्यगीत भी कहा जाता है आ जाते है। आपकों यह भी अच्छह तरह जान लेना चाहिए कि चांचड़ी के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रकार के गीत है। इन्हें नृत्यगीत भी कहा जा सकता है और नृत्यों के नाम भी वहीं है जो गीतों के नाम पर है। जैसे- बाजूबन्द लोकगीत भी है और लोकनृत्य भी, उसी प्रकार थाड़या या चौफुला गीत भी है तो नृत्य भी। इन सभी नृत्य या लोकगीतों को ‘चांचरी’ के नाम से पुकारा जाता है। चांचरी या चांचड़ी गीतों के विषय में नन्दकिशोर हटवाल का कहना है कि ‘‘मेरे विचार में ढ़ंकुड़ी, चांचरी, चांचड़ी, झोड़ा, थाड़या, झुमैला, दुस्का, जोड़ ज्वैड़, छोपती, तान्दी आदि ये सब नाम एक ही गीत नृत्य के लिए प्रचलित नाम है। जैसे- कई बार चांचरी नृत्य में प्रचलित विविध प्रकार के हस्तबन्धनों, पदसंचालनों, पदगति अथवा अन्य प्रकार के अलंकारों को अलग नाम से पहचानने या सम्बोधित किए जाते है। जैसे- कि कुमांऊ के कुछ इलाकों में चांचड़ी-झोड़ा जब तेज गति से होने लगता है तो उसे धसेल, धस्येला, धौंस्योला या दरी भी कहते है। हटवाल ने अनेक विद्वानों द्वारा वर्गीकृत किए गए लोकगीतों की तुलना करके अपना निर्णय दिया है कि इन विद्वानों ने भी

प्रकारान्तर इन लोकगीतों को एक ही वर्ग का माना है। जो चांचड़ी के अन्तर्गत आ जाते है। वे झुमैलों को संस्कृत के 'जम्मालिका' से निष्पन्न मानते हैं तथा महाकवि कालिदास के समय में भी ऐसे कुछ लोकगीत एवं लोकनृत्य कर प्रचलन था स्वीकार करते है। वे लिखते है चांचरी नृत्य का उल्लेख महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम नाटक में भी किया गया है। इसमें चर्चरी नृत्य का अर्थ गीत-खेल-क्रीड़ा और ताल देना बताया गया है। गढ़वाली में 'र' की ध्वनि 'ड़' में परिवर्तित हो जाने से चाचरी या चांचरी-चांचड़ी हो गई। गढ़वाली- कुमांऊनी में 'ज' की ध्वनि 'झ' में बदल जाती है। अतः जोड़ा का 'झोड़ा' शब्द नृत्यगीत के लिए व्यवद्गत होने लगा है। डॉ0 गोविन्द चातक के अनुसार, 'जो नृत्य अवकाश के अवसर पर आंगन (थाड्) में होते है उन्हें 'थाड्या' कहा जाता है। 'स्थल' या समतल भूमि में खेले जाने ये यह स्थाल्या ये बिगड़कर 'थाड्या' बना है। गढ़वाली में यही शब्द 'थाल' या 'थौल' के रुप में भी प्रयुक्त होता है और 'थाड्' के रुप में भी! डॉ0 चातक लिखते है, 'लोक आमोद-प्रमोद से सम्बन्धित नृत्य प्रायः सामाजिक नृत्यों के अन्तर्गत आते है। स्थान परिस्थितियों और काल के अन्तर के कारण अनेक नामों से पुकारे जाते है'। मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली गीतों का वर्गीकरण करते हुए थाड़या गीतों को सामूहिक गेय गीत वर्ग में रखा है, तथा 'सुमेलों' को खुदेड़ गीत माना है। डॉ0 पोखरियाल ने अपनी पुस्तक 'कुमांऊनी लोकगीत और लोकगाथाएं' पुस्तक में चांचरी और झोड़ा को दो पृथक-पृथक वर्ग में जिन गीतों के साथ रखा है वे भाव वर्ण्यविषय, टेक्निक आदि की दृष्टि से देखने में एक समान लगते है। अतः स्पष्ट है कि चांचड़ी, थाड्या, झोड़ा एक ही प्रकार का नृत्यगीत है। इनकी कुछ विशेषताएं निम्नवत् है-

8. चांचड़ी लोकगीतों की विशेषताएं-

1. टेक - इन उपरिवर्णित लोकगीतों (नृत्यों) में लोकगाथाओं और इतिहास पुराण का धाल-मेल है। चांचड़ी नृत्य गीतों में लोकगाथाओं को जिनमें 'जीतू बगड्वाल' पांडव, सिदुवा-विदुवा, सूर्जकौल, माधो सिंह भण्डारी क गाथाएं आती है में 'द्विभाई रम्बोला रम्मा छम्मा' या 'जीतू बगड्याला जीतू मारि झमाको' 'टेक' लगने से ये गाथा गीत गाने में सुन्दर तुकान्त और कर्णप्रिय लगते है। साथ ही नृत्य में पद विन्यास भी पद ध्वनि की सामूहिक थाप पर एक मधुर समां बांध देते है। टेक इन गीतों की एक विशेषता है, जो कि बार-बार दोहराई जाती है। जैसे-उपर दो टेक पंक्तियां उदहारणार्थ दी गई है।

2. पट्टदार शैली - लोकगीतकार पट्ट शैली के माध्यम से चांचड़ी गीतों की रचना करते है। इसे जोड़ मिलना भी कहते है। इस शैली में लोक रचनाकार तुक और छन्द मिलाने के लिए प्रथम पद को निरर्थक बनाते है जैसे-'हलीवो रुकमस डोट्याली' या 'कियो मेरो कले लछिमा' भांगुली को प्योण आदि को उदहारण नन्दकिशोर हटवाल ने दिये है। कई लोकगीतों में टेक और पट्टदार शैली दोनों की तकनीक एक साथ प्रयुक्त मिलती है। जैसे- 'सरभायों गढ़वल छो छम बल' या 'गणेशी जा गणेशी घौर'।

3. संवादात्मक शैली- गढ़वाली लोकनृत्य गीतों में संवादों और प्रश्नोत्तरों की एक विशेष शैली विकसित हुई है। जीजा-साली, देवर-भाभी, नायक-नायिका के गीत प्रायः संवाद या प्रश्नोत्तर शैली में मिलते है। लोकगाथाओं में लम्बे संवाद गीत मिलते है। सिदुवा-विदुवा का गीत इसका प्रमाण है। श्री नन्दकिशोर हटवाल के अनुसार- कभी-कभी एक की प्रश्न को बार-बार दोहराने और उत्तर देने में भी बार-बार पूर्व पंक्तियों के दोहराव के सज्ञथ महज एक नया शब्द जोड़ देने की तकनीक अपनाकर लम्बे-लम्बे गीत तैयार हो जाते है।

4. सम्बोधन शैली- का प्रयोग भी लोकगीत को रोचक बनाता है। चांचड़ी लोकगीत, करुणा, दुखः-सुख और वियोग-श्रृंगार के भाव गीतों में और अधिक द्रवणशीलता ले आते है। नायिका, धुधती, पहाड़ी, कुएड़ी आदि को देखकर पिताजी यां मां को सम्बोधित करके अपने मन के भावों को व्यक्त करती है- धार्मिक गाथा गीतों में भी सम्बोधन शैली की प्रचुरता मिलती है।

5. श्रृंगार रस की प्रचुरता- आधुनिक समय में बहुत से पुराने गीत आज भी अपनी ताजगी से लोकमानस का चित्त हरण कर लेते है। इन्हें सुनकर श्रोता भाव विभोर हो उठते है। जैसे- ''पोसतू का छुमा, मेरी भायानी बौ'' के बौल और उसकी टटकी लोकधुन, नवयुवक-युवतियों और रसिको को भाव विभोर कर देती है। आगे इस गीत का संक्षिप्तांश आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली एवं उसके हिन्दी अनुवाद सहित दिया जा रहा है- 'जीजा-साली के गीत' प्राचीन समय से ही ही गढ़वाली लोकमानस की रुचि के विषय रहे है और आज भी नई नई धुनों और गीतों की नई शैली तथा नृत्यनिर्देशन के सज्ञथ लिखे और प्रदर्शित किए जा रहे है। जैसे- सुप्रसिद्ध नृत्यगीत है- ''ग्वीरल फूल फुलिगे म्यारा भीना''। यह ऋतुगीत भी है। इसके बोल देखिए-

''ग्वीराल फूल फुलीगे म्यारा भीना,

मलू-बेड़ा फ्योंलडी फुलिगे भीना

झपन्यालि सकिनि फुलिगे भीना

धरसारी लगड़ी फुलिगे भीना

झूल थान कूंजू, फुलिगे भीना

गैरी गदिनी तुशरि फुलिगे भीना

डांडयू फुलिगे बुरांस, म्यारा भीना

डल फूलों बसन्त, बौड़िगे भीना

बसन्ती रंग मा, रंगैदे म्यारा भीना

ग्वीराल फूल फुलीगे, म्यारा भीना।''

अर्थात् हे जीजा जी! ग्वीराल के फूल खिल गए हैं। मालू, बेजू, फ्योंली खिल गए है। पत्तेदार सकिना फूल गया है। हे! जीजा जी! घर के नजदीक की सरसों फूल गई है, कुनजू फूल गया है। छोटी पहाड़ी नदी के किनारे की 'लुसरी' फूल गई है। वृक्षों में फूल आने लगे गए है। बुरांश की डालियां फूल गई है। जीजा जी! डालियों पर बसन्त फूल खिलाने आ गया है मुझे भी तुम बसन्ती रंग में रंग दो। जीज जी! ग्वीराल (कचनार) के वृक्षों पर फूल खिलने लग गए है।

गढ़वाल लोकगीतों में भी श्रृंगार रस अपनी प्रभूत मात्रा में प्राप्त होता है। गढ़वाल की प्राकृतिक छटा ही ऐसी ही कि यहां के युवाओं के हृदय में अपने आप श्रृंगार पनपनें लगता है और वह अपनी संमोहकता से नायक-नायिका को भाव-विभोर कर देता है। बड़े-बड़े शूरवीर (भड़) भी इसके सम्मोहन से बच नहीं पाते हैं- कहते है 'रुक्मा' माधोसिंह भण्डारी की प्रेमिका थी। कुछ लोगों का कहना है कि वह माधो सिंह की भौजाई (भाभी) थी। माधोसिंह भण्डारी पर आधारित गीत देखिए-

''कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुडे को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।''

अर्थात्- भण्डारी! कैसा है तेरा मलेथा ? ये रुकमा! तू मेरे मलेथा गांव में आ जा! रुकमा! मेरे मलेथा में भैसों का खरक है। गोरु के गले में बंधी घंटियों की धमण्धार (खनखनाहट) है। बकरियों के झुण्ड हैं। भण्डारी तेरा मलेथा कैसा है। रुकमा! मेरा मलेथा देखने में रमणीक है। उसमें चलती नहर हैं। गांव के नीचे खेत है। मेरे मलेथा गांव के ऊपर पनघट है। भण्डारी! तेरा मेरा मलेथा कैसा है ? रुकमा! मेरे मलेथा गांव में लहसन की क्यारियां हैं। पालक का बाड़िया है। मेरे मलेथा में सुन्दरियों की लचक हैं, पुरुषों की शान हैं। रुकमा, तू मेरा मलेथा आ जा।

9. धार्मिक गीत- बिनसर गढ़वाल का सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर है। इस मन्दिर पर आधारित धार्मिक गीत के बोले देखिए- इसमें देवी विन्सर टेकपद है-

विन्सर का डांडा देवी विन्सर।

ह्यूं कती आयूं च देवी विन्सर।

धुण्ड-धुण्डयों को ह्यूं च देवी विन्सर

त्येरी जातरा पूरी कलू विन्सर।

जांठी ट्एकी औंलू विन्सर

छाया रख्या माया देवी विन्सर

अर्थात् 'हे देवी! पहाड़ी पर विन्सर (महादेव) का मन्दिर है। हे देवी वहां बर्फ कितना गिरा है ? घुटनों तक बर्फ है। मैं तेरी यात्रा पूरी करूंगा विन्सर देवता। छड़ी टेककर आउंगा। उपनी छांव और प्यार रखना देवता। मैं तेरे दर्शन को आऊंगा विन्सर देवता'।

आपकी जानकारी के लिए अब हम एक और धार्मिक नृत्यगीत प्रस्तुत है। जिसका टेकपद है- 'झमाकों' यह गीत नन्दा भगवती पर आधारित है-

''सतवन्ती माता झम्मा को, मैणावन्ती माताझम्मा को।

मैणा की पुतरी झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरा का गणा झम्मा को, क्वे देश को राजा झम्मा को,

दक्षिण को राजा झम्मा को, तू दैवी न कारा झम्मा को

मैणावन्ती माता झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरां का मंगणा झम्मा को, क्वे देशों राजा झम्मा को,

उत्तराखण्ड को राजा झम्मा को, तू देणी न कारा झम्मा को,

एक हाथ त्रिशूला झम्मा को, एक हाथ डमरु झम्मा को

शंकर भगवाना झम्मा को, बणीगी भगवान झम्मा को

अर्थात्- सतवन्ती माता मैणावती माता को प्रणाम (झम्मा को निरर्थक पद) केवल पद पूर्ति के लिए तथा ताल मिलाने में सहयोगी वाक्य है। मैणा की पुत्री गौरा, गौरा के गणों को प्रणाम। दक्षिण के राजा (आए है) तू फलदाई न होना। गौरा का विवाह प्रस्ताव लेकर आए हैं फलदाई न होना। उत्तराखण्ड के राजा आए हैं उस पर अनुकूल होना। कैलाश के राजा आए हैं उन पर अनुकूल होना। भगवान शंकर की बारात सज रही है। उनके एक हाथ में त्रिशूल और एक हाथ में डमरु है। शंकर भगवान को दाहिनी होना। गौरा शंकर की जय हो। बभूतधारी जोगी ने अपना विकट रुप छोड़ दिया है। जा बेटी गौरा फ्यूंली खिल गई हैं भगवान ने सुन्दर रुप बनाया है। बारात आ गई है झम्मा को अर्थात् आनन्द आ गया हैं।

चन्द्रामती की लोकगाथा में लोक संगीत के बोल इस प्रकार होते हैं-

नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी,

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों नाक नथुली कां धाले बुवारी

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों सरि सिसफूल कां धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल, भेटुंली चढ़ायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों गात धाधरी का धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी।

अर्थात- चन्द्रामती चन्दन की चौकी में नाचों! मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू कैसे खेलूं ? अरी बहू! कल ही तो नाक की नथ लाया था वह कहां डाला ? मैं तो नन्दा के देवालय गई थी, मैंने भेंट चढ़ा दी। मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू ? अरी मैं नन्दा के मन्दिर में भेंट चढ़ा आई। चन्द्रामती! चन्दन की चौकी में नाच। अब मैं चन्दन की चौकी में कैसे करके नांचू ? मेरे पास धगुली नहीं है। अरी बहू कल ही तो धागुली लाई थी ? वह तो मैंने नन्दा जी के मन्दिर में चढ़ा दी है। अब मैं बिना (आभूषणों) के चन्दन की चौकी पर कैसे करके नांचू। हे चन्द्रामती! चन्दन की चौकी पर नाच ? इस गीत में स्त्री के सभी आभूषणों का वर्णन आता है।

10. झूल नगेलों- देवता (प्राचीन नागवंश के राजा रहे हैं) वे गढ़वाल में नाग देवता के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका लोकगाथा गीत देखिए-

झूल नगेलो आयो जसिलों देवता।

झूल नगेलो आयो रैती देंद जस,

झूल नगेलो आयो मुलक लगे घेउ,

झूल नगेलो आयो लसिया की धाती,

झूल नगेलो आयो बजीरा की गादी,

झूल नगेलो आयो तू मोतू का सिर,

झूल नगेलो आयो छै मैन का बालक,

झूल नगेलो आयो भौंकोर्यों का रुगाट,

झूल नगेलो आयो धाण्डयूं का धमणाट

झूल नगेलो आयो परचो बदौंद।

अर्थात- ''देवालय में नगेला देवता आया है- यशस्वी देवता। देवल में नगेला आया है, अपने भक्तों को यश देता है। देवालय में नगेला आया है देश भर में ख्याति हो गई है। लस्या की थाती में लजिश की देवभूमि में और मोतू के सिर में नगेला आया है। छः माह के बालक पर नगेला आया है। भौंकरियों की रुणआणट सुनकर, घंटों की घनघनाहट सुनकर देवालय में नगेला आया है। वह अपना परिचय देता है, जौं के चावल बनाता है, हरियाली उगाता है। देवालय में भैंस दूध देती है। क्वारे को ब्याह देता है। देवालय में नगेला (नाग देवता) आया है''।

इस प्रकार लोकगीत, गढ़वाली जनमानस की धार्मिकता, ओजस्विता, दानवीरता, कर्तव्यपरायणता, श्रृंगार-प्रेयता, प्रकृति प्रेम, विरह वेदना, और मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन है। जो कि अनाम लोकगाथा गीतकारों की अद्भुत करामाती प्रतिभा से उपजे है और समाज में व्याप्त है तथा लोक के मनोरंजन, तथा लोक व्यवहार के शिक्षक बनकर एक सभ्य आस्थावान समाज करा निर्माण करने के लिए अपनी विशिष्टता के कारण अजर-अमर है। लेकिन परम्परा से श्रुत होने के कारण, तथा वर्तमान में नए-नए संगीत प्रचार और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से परिवर्तन होने के कगार पर पहुंच रहे हैं। क्योकि पाश्चात्य संगीत का प्रभाव इन्हें विनष्ट कर देगा। यहीं लोकगाथा गीतों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न है।

13.5 सारांश

लोकगीत मन की रागात्मक प्रवृत्ति से उपजते है। इनमें मनुष्य और उसके समाज के हर्ष विषाद के छन्दबद्ध नमूनों के रुप में गीतधाराएं अनाम कवियों के कंठ स्वरों से निकलती है। गढ़वाली गीतों के नाम पर उनके गीतों के नाम भी पड़े होते है जैसे- थड्या, चौंफुला, लाली, झुमैंलों। जहां वे गीत है वहीं नृत्य भी है। ढोल वादक चैत के महीने में चैती गाते है। जिनमें विवाहिता स्त्री को पातीव्रत्य में रहने व अपने कुल की मर्यादा का आभास कराते है। ऋतु गीतों में खुदेड गीत, बसन्त ऋतु में गाये जाते है तथा चौमासे वर्षा ऋतु में। प्रणय गीतों में पति-पत्नी व प्रेमी-प्रेमिका के संयोग-वियोग के बिम्ब होते है। छोपती, तान्दी, थड्या, चौफुंले, झुमैलों, बाजूबन्द, झूड़े आदि चांचरी गीतों के अन्दर समाहित है। इन लोकगीतों की विशेषता एवं इनकी प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न है। जिनमें काफी कुछ अन्तर भी मिलता है। लोगगीत और लोकगाथा गीत दोनों अलग-अलग प्रकार की शैली रुपों एवं वर्ण्य विषयों को लेकर चलते है।

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ गए होंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते है और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?
2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?
3. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या है ?
4. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?
5. लोकगीतों के कथानक और उनकी विभिन्न शैलीयों का क्या आशय है।
6. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों कौन-कौन सी हैं।

13.6 शब्दावली

औजी (आवजी)	-	ढोल वादक
उदंकारी	-	पहाड़ की चोटियों पर अकस्मात दिखने वाला प्रकाश
चौंफुला	-	एक प्रकार की लोकगीत जिनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार फलों की प्राप्ति होती है।
झुमेलो	-	एक प्रकार की लोकगीत या लोकगीतों की अन्तिम कड़ी
पश्वा	-	गढ़वाल का एक देवता
धुंयाल	-	पूजा के समय उठने वाला धुआ अथवा पहाड़ की चोटियों पर प्रातः सूर्योदय के समय उठने वाला धुंआ

पंवाड़ा	-	गढ़वाल के वीर बहादुरों के गीत
पालसी	-	भेड़-बकरियों कर चरवाहा
पाखा	-	पहाड़ का एक भाग
भूम्याल	-	भूमि पाल, एक देवता विशेष
स्यूंसाठ	-	नदियों का स्वर्ग
हंसिया	-	रसिक

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

प्र0 1 का उ0 - संगीतात्मकता, जनभाषा का प्रयोग, मौखिक परम्परा, लिखित व अलिखित गेय काव्य

प्र0 2 का उ0- ‘‘कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुड़े को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।''

प्र0 4 का उ0 - लोकगाथा गीतों की चार प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. सतीत्व रक्षा की प्रवृत्ति,
2. जन्म और सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां,
3. सुन्दरियों को जीतकर लाने की प्रवृत्ति,
4. भड़ों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

प्र0 5 का उ0- झुमैंलों की संस्कृत में जम्भालिका कहते है। उदाहरण-

''ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों''।

प्र0 8 का उ0 - छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेम गीतों के अन्तर्गत बाजूबन्द में भी छोपती के समान ही संवाद गीत होते है। छोपती चौंक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री-पुरुषों के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाये जाते है। छोपती का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूडी़ मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
7. धुंयाल- अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद? देहरादून- संस्करण अगस्त 1983

13.5 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं बताओ।

प्रश्न- 2 गढ़वाली लोकगीतों के विकास एवं उसकी प्रवृत्तियों पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 14 गढ़वाली लोकगाथाएं - स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 गढ़वाली लोक गाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य
    14.3.1 गढ़वाली लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं
    14.3.2 गढ़वाली लोक गाथाओं की विशेषताएं
    14.3.3 मिथकों पर विश्वाश
    14.3.4 गढ़वाली लोक गाथाएं : कुछ अन्य प्रवृत्तियां
    14.3.5 गढ़वाली लोक गाथा और पावड़ा
14.4 जागर : एक लोकगाथा गायन पद्धति
    14.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं
    14.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं
    14.4.3 चन्द्रावली की वार्ता
14.5 सारांश
14.6 अभ्यास प्रश्न
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1. प्रस्तावना

लोकगाथाएं हमारे लोक साहित्य की धरोहर हैं। जो हमारे इतिहास, पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों तथा जीवन शैली का परिचय देती हैं। जुगल किशोर पटशाली के अनुसार, ''पूर्ववती सामाजिक संरचना, इतिहास मान्यताएं एवं मानसिकता को अपनी गठरी में बांधकर ये लोकगाथाएं हम तक पहुंचाती हैं। इन गाथाओं के मूल व उत्पत्ति के कारण जानने के लिए जब हम सुदूर अतीत की ओर झांकते हैं, तो हमारी बुद्धि व आँखें सृष्टि के प्रारम्भिक काल पर जाकर ही विराम लेती हैं''। लोकगाथा का दर्जा प्राप्त करने के लिए जिन प्रमुख बातों पर उन्हें खरा उतरना चाहिए वे निम्नलिखित हैं-

1. गाथा का काल 2. गाथा की विषय वस्तु 3. गाथा का लोक संगीत/लोक धुन 4. गाथानायक की समाज में पैंठ की गहराई 5. गाथा द्वारा श्रोताओं को दिये गए मानवीय मूल्य व समाज को दिया संदेश 6. गाथा द्वारा समाज अथवा लोकमानस में स्थापित किया गया महत्त्वपूर्ण आदर्श आदि,

लोकगाथा गायन भी जब जो चाहे जैसा करना चाहे इसकी छूट नहीं दी जाती है। लोकगाथा में हम किस महापुरुष की, किस योद्धा की, किस वीर की, किस देव तुल्य व्यक्ति की विरुदाबलि गाए इसका निर्णय भी लोक, सोच विचार कर करता है। इसके गायन के लिए एक निश्चित् नियम व प्रक्रिया में रहना अत्यावश्यक है। लोकगाथा गायन की पद्धति, उसके छन्द, लय-ताल, संवाद, प्रवचन, स्वरों को गाते समय उतार-चढ़ाव, वाद्य यन्त्र की धुन के साथ ताल-मेल, भाव और नाट्य की एकरुपता, नृत्य की संगतता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

गाथाओं के गायन की अलग-अलग शैलियां प्रचलित हैं जो कि भाषा और वर्ण्यविषय के कारण निम्नवत् अभिहित की जाती है। जैसे- तमिलनाडू की हरिकथा 'कलाक्षेपम्', आन्ध्र प्रदेश की 'बुर्राकथा' महाराष्ट्र और राजस्थान के 'पवाड़े', उत्तर प्रदेश में 'आल्हा' गोपीचन्द और पूरनमल के गाथागीत, छत्तीसगढ़ की रामायण और महाभारत (तीजनबाई की पाण्डुवानी) महाभारत गाथा और पंजाब का 'हीर-रांझा' ये सभी अत्यधिक प्रिय लोक गाथाओं की शैली और वर्ण्य विषय की सामग्री हैं।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान सकेंगे -

1. लोकगाथा किसे कहते हैं ?

2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है ?

3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं ?

4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है ?

5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है ?

6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं ?

7. लोकगाथाओं में प्रमुख लोकगाथाएं कौन सी हैं ? उनका लोक साहित्य, 'गढ़वाली भाषा' में हिन्दी अनुवाद देखकर आप सरलता से गढ़वाली भाषा की मधुरता से परिचित हो सकेंगे तथा उसमें प्रयुक्त प्रतीक, बिम्ब, उपमान योजना जैसे काव्य तत्वों का भी आभास पा सकेंगे।

14.3 गढ़वाली लोकगाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य

आंचलिकता के प्रभाव के कारण जो जिस अंचल की लोकगाथा होती हैं वह वहां की लोकधुन, लोक संस्कृति, लोक विश्वास, लोक रुढ़ियां, लोकोत्सव और लोकभाषा का ठाठ लिए होती हैं। लोकगाथाओं में क्षेत्र विशेष का भूगोल इतिहास और मान्यताएं भी जीवित रहती हैं। वे आँचलिकता को ओढ़ कर चलती है। लोकगाथाएं अपने संगीत तत्व को लोकवाद्यों, लोकगाथा गायकों और लोकमानस की श्रद्धान्वित भाव तरंगों से सरसब्ज बनाए रखती हैं। लोकगाथा गायन को लोकगाथाकार सृजता है और कभी लोकगाथा की धुनें, लोकगाथा गायन करने वाले गायक स्वयं भी तैयार करते हैं। अतः दोनों में अटूट सम्बन्ध बना रहता है। कोई साहित्यिक रचना तो लेखक की मौलिक रचना होती हैं। लेकिन लोकगाथाएं लोक की होती हैं लोक रचित रहती हैं। अतः उन पर व्यक्ति विशेष स्वयं रचयिता होने का दावा नहीं कर सकता है।

लोकगाथाओं में मूल वर्ण्य विषय एक होने पर भी उनकी गायन पद्धति, लोकधुनें, शैली, प्रस्तुतिकरण भिन्न-भिन्न हो सकते है। श्रोताओं की जो शैली, जो धुन जो पद्धति पसन्द आती हैं, वहीं भावी पीढ़ी के पास धरोहर के रूप में पहुंचा दी जाती हैं। डॉ0 अवस्थी के अनुसार- ''लोकगाथा लोकनाट्य, लोकगाथाएं मूल में तो एक ही है। मात्र शाखाएं अलग-अलग है। जो लोकगाथाएं अपने लोकतत्व, लोकसंगीत और पद्धति से निखरकर समाज में लोकप्रिय होती हैं, वे जीवित रहती है''। उत्तराखण्ड के विविध अंचलों में समयानुसार आज भी जो गाथाएं प्रचलन में है वे निम्नलिखित है- 1. अजुबा बफौल की गाथा 2. अजीत बौर की गाथा 3. ऐड़ी की गाथा 4. कत्यूरों की गाथा 5. कलबिष्ट की गाथा 6. उषा-अनिरुद्ध की गाथा 7. कालू भण्डारी की गाथा, कमुली रौतेली की गाथा 8. कृष्ण-रुक्मिणी गाथा 9. कालसिण गाथा 10. कृष्णावतार (भारत गाथा) 11. गोरिधना की गाथा 12. गौरा-माहेश्वर गाथा 13.

गंगानाथ की गाथा 15. गददेवी की गाथा 16. गुरु गोरखनाथ की गाथा 21. गढ़ू सुमरियाल कर गाथा 23. गोपीचन्द की गाथा 23. छुरमल की गाथा 20. जियाराणी की गाथा 21. जयमाला बौहरी की गाथा 23. जगदेव पंवार की गाथा 23. जीतू बगड़वाल की गाथा 24. तीलू रौतेली की गाथा 25. चौमू देवता की गाथा 26. झांकर सैम की गाथा 27. दुधा कंवल की गाथा 28. अनारी नैद की गाथा 29. धामयों-विरमद्यो की गाथा 30. नागमिल-भागमिल की गाथा 31. नन्दादेवी की गाथा 32.नागवंशी गाथाएं 33. नारसिंह की गाथा 34. नौलिंग देव की गाथा 35. निरावली जैंता की गाथा 36. पुरुखपन्त की गाथा 37. परियों की गाथा 38. पाण्डव गाथाएं 39. ज्यूंली की गाथा 40. बरमी कंवल कर गाथा 41. बफौल गाथा 42. विरमूसोन कर गाथा 43. विषभाट की गाथा 44. बाल गोरिया कर गाथा 45. बालोचन की गाथा 46. बाजुरी चैत की गाथा 47. भनरिया की गाथा 48. भोलानाथ की गाथा 49. भारतीचन्द की गाथा 50. भीमा कठैत की गाथा 51. भुम्याल गाथा 52. भर्तृहरि गाथा 53. भैरों गाथा 54. माधो सिंह (मलेथा) की गाथा 55. मोतियां सोन की गाथा 56. रणू रौत की गाथा 57. राजुला-मालूसाही की गाथा 58. रुक्मिणी चन्द्रावली गाथा 59. रामी-बौराणी की गाथा 60. रतूमहर-भगूमहर गाथा 61. रामअवतार गाथा 62. सकाराम कार्की की गाथा 63. स्यूंरा-बैरा बैक की गाथा 64. सिदुवा-विदुवा रमौल की गाथा 65. सूर्जकंवल की गाथा 66. सरुगंगा लली की गाथा 67. सम्याल हीत की गाथा 68. सैम की गाथा 69. शिवअवतार की गाथा 70. स्यूरांज-म्यूंराज बौर की गाथा 71. हंसकुंवरिगाथा 72. हरु की गाथा 73. हंसा-हिण्डवाण की गाथा आदि। श्री पेटशाली के अनुसार, यह ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में प्रचलित गायन परम्परा का मध्ययुग में बहुत विकास हुआ। दसवीं शताब्दी तक नाट्य कलकारों का एक निश्चित् वर्ग चारणों का था। ये चारण प्राचीन सूत्रों और कुशीलवों की परम्परा के माने जाते है। भारत के मध्यकाल में देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। ये राजा लोग सदा छोटी छोटी लड़ाइयों में लगे रहते थे। उनके दरबार में चारण (भाट) रहा करते थे जो कि इन राजाओं की युद्धवीरता, दानवीरता की विरुदावली बखान करते थे। आगे राजदरबार से यह परम्परा बाहर निकली और स्थानीय चौबारों, मेले-उत्सवों, शहर-गांवों के खुले मैदानों में प्रस्तुत की जाने लगी। इन्हीं चारणों के कारण रामायण-महाभारत की गाथा सामान्य जनता के बीच प्रचलन में आई और बाद में महाकाव्यों की विषय-वस्तु भी बनी। लोकगाथाएं निम्नवत् विभाजित की जा सकती हैं-

1. प्रेम-गाथाएं 2. वीर गाथाएं 3. पौराणिक गाथाएं 4. ऐतिहासिक गाथाएं 5. स्थानीय देन गाथाएं। यह वर्गीकरण श्री जुगल किशोर पेटशाली का है। हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', डॉ0 गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर और तारादत्त गैरोला ने भी अपनी-अपनी तरह से लोक गाथाओं के वर्गीकरण किए है, यह वर्गीकरण आगे प्रस्तुत किए जायेंगे। प्रसिद्ध प्रेम गाथाओं में ''राजुला मालूसाही'' ज्यादा लोकप्रिय है। इस पर बहुत काम हुआ है। यहां तक कि विदेशी व्यक्तियों (कोनाई माइजनर) ने भी इसका ध्वन्यालेखन का कार्य किया जिसके परिणाम स्वरुप यह 'गाथा गायन शैली' लोक धुन थोड़ा बहुत बच पाई है। आज संरक्षण के अभाव में अनेक लोकगाथाएं विस्मृति के गर्त में जा रही है। अतः उनका समय पर बचाव जरुरी है। इसके लिए आधुनिक तकनीकि संचार माध्यम हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते है। अतः आडियो-विडियों की मदद

लेकर आधुनिक नए वैज्ञानिक उपकरणों से इसके संग्रह और ध्वन्यकंन, गाथागायक शैली का संरक्षण किया जा सकता है। लोकगाथाओं में लोक का तत्कालीन परिवेश और इतिहास अपनी मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए, उसे नए वाद्यों और ध्वनियों से देने से वह अपनी मौलिकता खो देगा।

लोकधुनों, लोकविश्वासों और लोक पद्धति का, लोकगाथाओं के गायन-वादन औ संवाद प्रवचन में सदैव ध्यान रखना चाहिए। वर्तमान समय में गाथागायक उसे अपनी दृष्टि से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे है। इससे उनके मौलिक स्वरुप पर खरोंच आनी स्वाभाविक है। अतः बिना परिवर्तन के ज्यों का त्यों इन गाथाओं का गायन, वादन एवं अभिलेखन किया जाना चाहिए।

14.3.1 लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं-

लोक में प्रचलित गाथाएं 'लोकगाथा' कहलाती है। लोकगाथाओं को विद्वनों ने समुदायवाद, व्यक्तिवाद, जातिवाद, चारणवाद और व्यक्तिहीन व्यक्तिवाद में वर्गीकृत किया है। इन विद्वानों के आधार पर लोकगाथाओं का निर्माण व्यक्ति समाज एक विशिष्ट कलाकार, विविध जातियों, चारणों और भाटों द्वारा किया गया है। लेकिन आगे चलकर व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर ये गाथाएं जन साधारण की सम्पत्ति बन जाती है। प्रो0 कीट्ज ने लोकगाथाओं का जो वर्गीकरण किया है वह निम्नवत् है-

1. चारण गाथाएं- चारणों द्वारा गाए जाने के कारण इनकों चारण गाथा कहते हैं।
2. परम्परागत गाथाएं- परम्परागत गाथाएं चिरकाल से चली आ रही है। इनका प्रभाव आज तक चिरस्थाई हैं।

डॉ0 गूचर ने लोकगाथाओं के वर्गीकरण में निम्नवत् सोपान निर्धारित किए हैं-

1. प्राचीन गाथाएं- ये गाथाएं आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बन्धित है। इनका आधार वैदिक साहित्य से लेकर लोक साहित्य तक सर्वत्र रहा है। पृथ्वीसूक्त, और उषासूक्त में इन पौराणिक गाथाओं की निमित्ति देखी जा सकती है।
2. कौटुम्बिक गाथाएं - इनका सम्बन्ध कुटुम्ब से है।
3. आलौकिक गाथाएं - इन गाथाओं के अन्तर्गत जादू-टोना, परी-अप्सरा और अन्ध विश्वास समाहित हैं।

4. पौराणिक गाथाएं- प्राचीन आख्यान, जो प्राचीन भारतीय साहित्य के पुराण-वेद और उपनिषद् साहित्य में है उनसे सम्बन्धित गाथाएं पौराणिक गाथाएं है। जागर के अन्तर्गत देवपूजा, स्तुति और देव विरुदावलियां इसके अन्तर्गत आती है।

5. सीमान्त गाथाएं - सीमा प्रान्त स्थित लोगों की अभिकल्पना और सीमान्त युद्ध-संस्कृति, लोकपरम्परा पर आधारित गाथा को सीमान्त गाथाओं के अन्तर्गत परिगणित किया गया है।

6. नायक गाथाएं - ये गाथाएं व्यक्ति विशेष के चरित्र से अनुप्राणित होकर सृजी जाती है जैसे- सुल्ताना डाकू, मान सिंह, जोरावर सिंह, मोरो पिमन, राबिन हुड आदि नायकों की जीवन से सम्बन्धित गाथा नायक गाथा के अन्तर्गत आती है।

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय कृत वर्गीकरण -

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने गाथाओं को आकार तथा विषय के अनुसार विभाजित किया है। उन्होंने लघु तथा वृहद विषय के अनुसार इन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. प्रेमकथा गाथा
2. वीरकथात्मक गाथा
3. रोमांचक कथात्मक गाथा

डॉ0 सत्येन्द्र का वर्गीकरण-

1. विश्व निर्माण की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।
2. प्रकृति के इतिहास की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं तथा
3. मानवीय सभ्यता की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।

लोकगाथाओं का यह वर्गीकरण समग्रता को लेकर किया गया है यद्यपि यह देश-काल के अनुसार लोक और प्रादेशिक भाषाओं में व्यवहृत एवं प्रचलित भी हुआ है तथापि लोकगाथाओं के अन्य विभेद भी किए जा सकते हैं।

गढ़वाली लोकगाथाओं को डॉ गोविन्द चातक ने निम्नवत विभाजित किया है-

1. जागर वार्ता - इसके अन्तर्गत उन्होंने सभी धार्मिक लोकगाथाओं को अन्तर्निहित कर दिया है।
2. पवाड़ा - ये गढ़वाल में प्रचलित प्रबन्धात्मक वीर गीत है।
3. चैती - प्रेमाख्यान गीत।

डॉ गोविन्द चातक को आधार मानकर डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने लोकगाथाओं को दो भागों में बांटा है-

1. लौकिक गाथाएं 2. पौराणिक गाथाएं

1. लौकिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत पवाड़ा-वीर गाथाएं और प्रेमगाथाएं सभी प्रकार के प्रबन्ध गीत है।

2. पौराणिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत डॉ भट्ट ने कृष्ण लीलाओं सम्बन्धी स्थानीय देवताओं और पांडव सम्बन्धी गाथाओं को लिया है।

मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोकगाथाओं को मुख्यतः दो भागों में बांटा है-

1. जागर वार्ता - इनमें पौराणिक देवता, महाभारत के पात्र (पाण्डवों) तथा स्थानीय देवताओं की उपासनात्मक वीर गाथाएं है तथा

2. ऐतिहासिक व अतैतिहासिक वीर पुरुषों एवं स्थानीय पुरुषों के आख्यान पुनश्च बाबुलकर जी ने देवगाथा और लोकगाथा के निम्न विभाजन किए है।

1. देवगाथाएं (जागरवार्ता) के अन्तर्गत परिगणित की जाने वाली गाथाएं

    (क) कृष्ण चरित्र, रुक्मिणी-चन्द्रावाली, शिव-पार्वती, बैकुण्ठ चर्तुदशी की गाथाएं।

    (ख) निरंकार, गरुड़ासन, भैरों, नरसिंह, हन्त्या, आछरी, देवी विषयक गाथाएं।

    (ग) पाण्डव, भीम, नागलोक कथा, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, द्रोपदी, और कुन्ती अर्जुन गाथा

2. लोकगाथाएं-

(क) ऐतिहासिक पुरुषों पर आधारित लोकगाथाएं।

(ख) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक, एवं स्थानीय पुरुष सम्बन्धी।

(ग) वीरगाथाएं।

बाबुलकर जी ने देवगाथाओं को आकार एवं गायन पद्धति के आधार पर निम्नवत वर्गीकृत किया है-

देवगाथाएं

(क) राज पुरुषों सम्बन्धी गाथाएं

1. अजैपाल
2. राजा मान साह
3. मालू साही
4. ज्गदेव
5. राजा प्रीतम सिंह

(ख) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक स्थानीय पुरुषों की गाथाएं

1. कालू भण्डारी
2. कफ्फू चौहान
3. गढू सुम्याल
4. सुरजू कुंवर
5. बागा रौत
6. काली हरपाल
7. राजुला-मालूसाही
8. भाग देऊ
9. बरमी कौल
10. सोनू-विरभू
11. जीतू बगड़वाल
12. हंसा कुंवर
13. गंगू रमोला
14. विध्नी विजयपाल
15. रणू रैत
16. ब्रह्म देव
17. सुमेरु रौतेला
18. धाम देव
19. भानू भौंपेला
20. आशा रौत
21. हंसा-हिंडवाण

(ग) वीरगाथाएं

1. नौरंगी राजुला
2. पत्थर माला
3. तीलू रौतेली
4. रौतेली राणी पुर्हा
5. ध्यान माला
6. जोतर माला
7. चन्द्रावली
8. सुरमा
9. सरु कुमैण
10. बरुणा (भरणा)
11. अमरावती

निष्कर्षतः डॉ गोविन्द चातक, डॉ0 शैलेश, मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः सभी प्रचलित और उपलब्ध गढ़वाली लोकगाथाएं आ गई हैं । आपको यह ध्यान रखना है कि गढ़वाली लोकगाथाओं को 'पंवाड़ा' कहा जाता है। ये पद्यरुप में गाए जाने वाले गीत होते है। पवाड़ों में राजाओं, वीरभड़ों, वीरांगणाओं की गाथाएं आती हैं। गढ़वाल की वीर गाथाओं में सन् 688 से सन् 2300 तक के कतिपय गढ़देशीय राजपुरुष, गढ़वाली वीरांगणाएं एवं वीरपुरुष वीरगाथाओं के अन्तर्गत स्थान पाए है। मोहनलाल बाबुलकर के अनुसार ये वीरगाथा चरित्र गीत वीरपुरुषों और वीरांगणाओं की विरुदावलिया है। जो कि तेहरवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक रचे गये हैं।

इन लोक गाथाओं में अद्भुत पराक्रम, शक्ति, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और प्रेम की यातनाएं, त्याग, तपस्या, बल-बुद्धि कौशल का प्रदर्शन, राग-द्वेष, उलाहने और उलाहनों के लिए उत्सर्ग की भावना, युवा-युवतियों को पाने की होड़, खनखनाती तलवारों का वीभत्स नाच, मुण्डों के चौरे, खून के घट्ट, यौवनावस्था का एन्माद, अन्न और धन का उन्माद, शराब और वैश्याओं की रंगशालाओं की झांकिया, आलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन और लोकरीतियों एवं नीति का सत्य शिवं सुन्दरम सभी रुप इन्हीं गाथाओं में मिलता है। ये लम्बी ढौल (तर्ज) पर ऊंचे स्वर में गाए जाने वाली गाथाएं है। इन गीत गाथाओं में चरित्र वर्णन बोधगम्य भाषा में है तथ्ज्ञा स्थान विशेष की विशेषताओं का इनमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

14.3.2 गढ़वाली लोकगाथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोकगाथाओं की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् हैं -

1. अज्ञात रचयिता- गढ़वाली लोकगाथाओं के रचियता कौन है इसका पता नहीं लेता है। रचयिता का अज्ञात रहना भी इन गाथाओं की एक प्रभूत विशेषता है।
2. मूलपाठ का अभाव-गढ़वाली लोकगाथाएं विविध मूलक है अर्थात एक ही लोकगाथा विविध रुपों में उपलब्ध है। इनका कोइ एक प्रमाणिक मूलपाठ उपलब्ध नहीं है।

3. मौखिक परम्परा- गढ़वाली लोकगाथाएं परम्परा से मौचािक रुपों में चली आ रही है। इनमें कतिपय अब भी अलिखित या अप्रकाशित रुप में ही अस्तित्व में है। तथापि दो दशक से बहुत सा लोकगाथा साहित्य संकलित और प्रकाशित होता जा रहा है।
4. स्थानीय प्रभाव- इन गाथाओं पर स्थान विशेष की परिस्थितियों का प्रबल प्रभाव मिलता है। इसके कारण गाथाओं में पाठान्तर है।
5. लेकसंगीत और नृत्य की एक रुपता- लोकसंगीत और नृत्य इन लोकगाथाओं की विशिष्टता है। इनमें प्रायः संगीत तत्व और नृत्य एक जैसा मिलता है।
6. साधारण, सरल और प्रभावोत्पादक शैली- इनकी प्रस्तुति की शैली सरल, अटपटी, भोजपूण और प्रभावोत्पादक है।
7. व्यवहारिक भाषा- इनकी भाषा सरल और लोकमुंह लगी होती है। जो कि स्थानीय भाषा के प्रभाव को द्योतित करती है।
8. निर्देशन का अभाव- इनमें निर्देशन का अभाव है। उपदेशात्मक नही है।
9. लम्बा कथानक और विविध कथाओं का चयन- गढ़वाली लोकगाथाओं के कथानक लम्बे और अनेक उपगाथाओं को लिए हुए है। जिन्हें प्रासंगिक गाथा कहा जा सकता है लेकिन मुख्य (अधिकारिक गाथा) अन्त तक चलती रहती है।
10. मोहनलाल बाबुलकर ने इन गाथाओं के लोकगायकों अथवा लेखकों की यशलिप्सा से दूर बताया है। उनका कार्य, उद्देश्य केवल जनता का लोक रंजन करना है। यह मूलतः लोक के लिए लिखा लोक काव्य है।
11. अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि- इनमें अपनी अलौकिक शक्ति और सम्मोहन, रुपलावण्य से अप्सराएं (आंछरिया) जगत को मोहित करती दिखती है। वे सुन्दर पुरुष पर आसक्त होकर उसे हरण भी कर लेती है। स्त्रियों पर भी उनका आवेश चलता है। लेकिन कई बार ये अप्सराएं लोकगाथा गायकों की मदद करती भी दिखती है।
12. अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन - इन लोकगाथाओं के वर्णन प्रायः अतिशयोक्ति मंडित है। विशेष करके नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में तथा नायकों के पराक्रम (पौरुष) और देह सौष्ठव का वर्णन इनमें अतिरंजनापूर्ण है जो कि अस्वाभाविक लगता है।
13. इष्ट देव का सहायक होना- सभी वीरगाथाओं में इष्ट देव नायकों और नायिकाओं की सहायता करते है। उनका स्मरण करके वे अलौकिक कार्य कर जाते है। अनहोनी को होनी में बदल देते है।
14. गुरु तथा मां द्वारा समझाया जाना- इन लोकगाथाओं के पात्रों को उनके गुरु या माता द्वारा उपदेश दिया जाता है। अपनी सौगन्ध दी जाती है। उन्हें मार्ग सुझाया जाता है। कई गाथाओं में नायक-नायिकाओं को टोका भी गया है। गुरु द्वारा रोका जाना और विपत्ति से उबरने में सहायक होना भी वर्णित है।

15. स्थानों के वर्णन में अनियमितताएं- यात्राक्रम में स्थानों के नाम परस्पर विरोधी है तथा देश काल और भूगोल प्रायः अस्पष्ट और भ्रान्ति मूलक मिलता है। रण यात्रा का क्रम उल्टा-पुल्टा है। अतः ये गाथाएं ऐतिहासिक विसंगता भी उत्पन्न करती हैं।
16. टेकपदों की पुनरावृत्ति- गेय होने के कारण इन वीर गाथाओं में हर दूसरे पद के बाद, पहला पद दुहराना पड़ता है।
17. प्रलाप व प्रवाद की प्रवृत्ति- ये गाथाएं प्रायः प्रवाद-प्रलाप की स्थिति में गाथागायकों के द्वारा गाई जाती है। जिनमें चिल्लाने की प्रवृत्ति अधिक दिखती है।
18. लोक विश्वासों का अमिट प्रभाव- इन गाथाओं में स्थानीय रीति-रिवाज, नीति और लोकविश्वासों की अमिट छाप मिलती है। जो उनके जीवन का लोकतत्व है।
19. ऐतिहासिक पुरुष- इन गाथाओं में राजपुरुषों के चरित्र है तथा मल्ल और वीर्पुरुषों (भड़ों) का अतिशयोक्तिपूर्ण अतिरंजित वर्णन मिलता है।
20. स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधनता- युवक-युवतियों के प्रेम को पाने के लिए बलवती होड़ दिखाते है। नायकों कर शक्ति उनकी वीरता, देह सौष्ठव पर नारियां (युवतियां) आकर्षित दिखाई जाती है, यहां प्रेम की मुग्धावस्था कर वर्णन रहता है।
21. सशक्त स्त्री पात्र- सभी लोकगाथाओं में सशक्त चरित्रावली स्त्री ही नायिका के रुप में वर्णित रहती है। एसमें वीरत्व, साहस, और स्त्रीजनोचित प्रेम मार्धुय का भी अद्भुत सामंजस्य मिलता है। ये वीरांगणाएं या साहसी प्रेमी महिलाएं लोकगाथाओं की नायिका होती है।

निष्कर्षतः गढ़वाल लोकगाथाओं में लोकतत्व की प्रधानता रहती है। सावर की विद्या, बोक्साडी जाप, पंजाबी जुगटी, हाथताल छुरी, खुरासानी चीरा, स्फटिक मुंदरा, नौपुरी को बांस, पांसा, अमृत की तुम्बी, कानूं को मंतर, है सदा ज्यूंदाल, काली को जाप, बागभरी आसन आदि तांत्रिक और मांत्रिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले वीरगाथा के नायक, उनके गुरु तथा सहयोगी नायिकाएं एक विचित्र सम्मोहन तथा कीमियागीरी (कौतुक) की सृष्टि करते है। वीरगाथा नायकों का चरित्र नायिक निरुपण और युद्ध कौशल तथा दृश्य बिम्ब, एकानेक वीरगाथाकालीन प्रबन्ध काव्यों की पृष्ठभूमि सी तैयार करते है।

सम्भवतः मध्यकाल की स्थिति का जब कि मुगल आक्रमण जोरों पर थे, और उनके बाद राजस्थानी भड़ों की युद्धवीरता, श्रृंगार प्रियता जो कि पद्मावत आदि में वर्णित है। या रासो काव्यों में विद्यमान है उसका प्रभाव भी गढ़वाली वीरगाथा के अज्ञान लेखकों पर पड़ा है। राजुला मालूसाही की गाथा, पद्मावत महाकाव्य की इतिहास गाथा से कम रोचक नहीं है। ये गढ़वाली लोकगाथाएं कल्पना और इतिहास तत्व को एक साथ लेकर सृजी गई है। इनका ‘रसात्मक पक्ष‘ तथा संगीत तत्व प्रबल आवेगमय है। ‘फिंतासी‘ भी यहीं कही-कही अपना रंग दिखाती है। संक्षेप में लोकतत्व के साथ इतिहास गाथा का समेकित रुप पाठकों को इन लोकगाथाओं को पढ़ने और सुनने तथा इन पर चिन्तन-मनन करने के लिए उत्साहित करता है।

14.3.3 मिथकों पर विश्वास-

गढ़वाली लोकगाथाओं की एक प्रवृत्ति मिथकों पर विश्वास भी है। जैसे- सृष्टि उत्पत्ति के विषय में गढ़वाली लोकगाथाओं में 'निरंकार' और 'सोनी गरुड़' की प्रख्यात गाथा लोक प्रसिद्ध है। इस गाथा में निरंकार से सोनी गरुड़ की उत्पत्ति की बात बताई गई है। सब ही शिव को भी सृष्टि की उत्पत्ति का श्रेय दिया गया है। गढ़वाल में निरंकार के गीतों में यह श्रेय गुसांई को दिया गया है। गुसांई शब्द गढ़वाल में नाथपंथी जोगियों के लिए प्रयुक्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी जिन गाथाओं में जिस सृष्टि की बात की गई है उसके गीज वेदों में हिरण्यगर्भ अंड की अवधारणा में निहित है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में भी हिरण्य अंड की चर्चा मिलती है। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में भी ''अंडे कपाले रजत च सुपर्ण चामवत यद्यद् जात एयं पृथिनी यत् सुवर्ण सा द्यौ'' के रुप में अंड से ब्राह्माण्ड की उत्पत्ति मानी गई है। लिंड्ग पुराण और मार्कण्डेय पुराण के अनुसार - पुरुष और प्रकृति के सम्मिलन का पूर्ण रुप अंड ही है। ब्रह्म या चैतन्य पुरुष ही अंड के रुप में समस्त प्राणियों का आदिकर्ता है। अब आप पुराण कथा और गढ़वाली गाथा में सृष्टि उत्पत्ति कथा का अन्तर देखों। गढ़वाली लोकगाथाओं (वार्ताओं) में सृष्टि उत्पत्ति में गरुड़ और गरुड़ी को माध्यम बनाया गया है। इसके लिए जागर वार्ता में 'कद्रु और विनता' वाली गाथा गाई जाती है जो कि गरुड़ और नागों में हुए संघर्ष की झांकी प्रस्तुत करती है। गरुड़ा शक्तिशाली थे अन्त में वें विजयी हुए और विष्णु के वाहन बने। समुद्र मंथन से निकले अमृत कुम्भ को देवता और राक्षसों की सुरक्षा से उठाकर भागने वाले महापराक्रमी गरुड़ ही थे। गाथा में गरुड़ के रोने से उसके आँसू गरुड़ी पी जाती है और उसके गर्भठहर जाता है। जब प्रसव का समय आता है तब गरुड़ के पंखों के उपर गरुड़ी अपना अंड प्रसव कर देती है लेकिन उसके पंखों से नीचे लुढ़ककर फूट जाता है जिससे समुद्रों सहित पृथ्वी और आकाश की उत्पत्ति हो जाती है। आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली में लिखित यह सृष्टि उत्पत्ति गाथा जागर लोकवार्ता में इस प्रकार है, जिसका इस गाथा में अन्त में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे आप गाथा को समझ सकें-

हे भगवान, कद्रु का नाग ह्वेना, विनता का गरुड़!

कद्रू-विनता दुई होली सौत्

सौतिया डाह बल कनी हांदी

क्या-क्या नी सोचौंदी क्या-क्या नी करौंदी ?

14.3.4 गढ़वाली लोकगाथाएं कुछ अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिनव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं,

अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ‘‘जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा‘‘ यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है। कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। ‘दो की जाई और एक की जाई होना’ अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली ‘दो पुत्रों की माता’ होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ- विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है ‘यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू सुमरियाल की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते है सा स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिये, लहू के घराट चला दिये। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया। लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली,

ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। ''धौला उड्यारी'' का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगढ़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालूसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे' ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-कहीं 'मर्दो' 'महाराज' सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा' जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये

इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिये एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555-1765 महीपत शाह (1584-1610) और फतेहशाह (1671-2165) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती को उन्होंने इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने ‘आवजी‘, ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

14.3.5 गढ़वाली लोकगाथा और पंवाड़ा

कालान्तर में लोकगाथा गायन की एक भिन्न पद्धति है। पवाड़ा गढ़वाली लोक गाथा श्रृंगार और प्रेम से युक्त होने पर भी करुण रस और वीर रस से भरी पड़ी है। वीरगाथाओं का दूसरा नाम ‘पवाड़ा‘ भी है। हिन्दी साहित्य में आपने वीरगाथा काल, रीतिकाल, भक्तिकाल, आधुनिक काल का साहित्य पढ़ा होगा। गढ़वाल के राजाओं और वीर भड़ों की शौर्य पूर्ण गाथाएं यहां पवाड़ा कही जाती है। डॉ0 गोविन्द चातक का कथन है कि ‘‘पवाड़ा शब्द थोड़े से अर्थ परिवर्तन के साथ ब्रज, मराठी, गुजराती, राजस्थानी में ‘पाबूजी‘ के पवाड़े सुप्रसिद्ध है। विद्याविलास चरित पवाड़ा जिसे आचार्य हीरानन्द सूरी ने 1428 ई0 में रचा था, इसे पहली बार पवाड़े की संज्ञा दी गई थी। इसका पंवार राजाओं से डॉ0 गोविन्द चातक कोई सम्बन्ध नही मानते है। पवाड़ों में किवदंती और स्थानीय लोकोक्तियां लोकधारणा का समावेश रहता है। अधिकांश गढ़वाली पवाड़े मध्य काल में रचे गए है। अनेक गढ़वाली लोकोत्तियां अपने में इतिहास की छाया लिए है। गढ़रनरेश स्वयं शूर होते थे और वीरों को जागीर आदि देकर उन्हें सम्मानित भी करते थे। इन वीरों या भड़ों (भटो) को वेतन दिया जाता था। ये राजाओं के रक्षक, स्वामिभक्त और विश्वसनीय होते थे। ये भड़ मल्ल या माल कहलाते थे। इनमें आपस में रणकुशलता और वीरता दिखाने की होड़ लगी रहती थी। सर्वप्रथम इन छोटी-छोटी गढ़ियों, ठकुराईयों को विजित कर जो कि उस समय बावन के लगभग थी उनकों अजयपाल ने जीतकर अपने एकछत्र शासन की नींव डाली थी। फलतः उसे सीमा विस्तार के लिए तिब्बत, सिरमौर, कुमांऊ तथा मुगल साम्राज्य से युद्ध करना पड़ा। गढ़वाल नरेश, मानशाह, दुलाराम शाह, महीपत शाह मेदनी शाह और फतेहशाह

को अपने राज्यकाल में डेढ़ दौ सालों तक बाहरी शक्तियों से युद्धरत रहना पड़ा था। कफ्फू चौहान (1500-1548) अजयपाल का प्रतिद्वन्दी राजा था वह उपूगढ़ का गढ़पति था। कफ्फू चौहान की गाथा अनुश्रुति के रूप में प्राप्त है। कफ्फू चौहान के बारे में प्रसिद्ध है कि वह बड़ा हठीला, स्वाभिमान नवजवान था। जब उसने राजा अजयपाल की अधीनता स्वीकार नहीं की तब अजयपाल ये उसका भारी संघर्ष हुआ। इस आक्रमण में कफ्फू की सारी सेना मारी गई। कहते हैं जब कफ्फू चौहान के पकड़े जाने और उसकी सेना के मारे जाने की खबर उपूगढ़ में पहुंची तो उसकी माता और पत्नी ने किले में आग जलाकर उसमें अपने को भस्म कर दिया था। कफ्फू चौहान को अजयपाल ने जब अपने चरणों में सिर न झुकाने पर उसके सिर को ऐसा झटका दिया कि उसका सिर अजयपाल के मुख से टकरा गया। कुछ लोगों का कहना है कि कफ्फू चौहान का सिर उछलकर गंगा में गिर पड़ा था। उपूगढ़ के गढ़पति कफ्फू चौहान की वीरगाथा के समान ही लोक में भानू धमादा विध्नी विजयपाल, काली हरपाल, बागा रावत, अजवावंपा, सौणू-विस्मू, ब्रह्म और विरमा डोटियाली, स्यूंराज-म्यूंराज आदि की कई वीरगाथाएं लुप्तप्रायः होती जा रही है। इनमें कुछ को तारादत्त गैरोला और ओकेले ने ''हिमालयन फोकलोर'' में संकलित किया है। किन्तु अब वे केवल पुस्तक में है। लोक में सुनने में नहीं आती। जो गाथाएं काल कवलित होने से बच पाई है और लोकपरम्परा में जीवित है। वें है- लोदी रिखोला की गाथा, माधो सिंह, गढ़ू-सुमरियाल, सूर्ज कुंवर, ब्रह्मकुंवर, जयदेव पंवार, कालू भण्डारी, रणू-झंकरु, हरि हिण्डवाण, तीलू रौतेली और सुप्या रौत की गाथा प्रमुख है। अब आगे हम लोदी रिखौला की गाथा के साथ माधोसिंह, रणू रौत, सुप्या रौत, कालू भण्डारी की लोकगाथा का गढ़वाली मूल पाठ एवं उसका हिन्दी अनुवाद आपके अध्ययन के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे, अभी हम आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली लोकगाथा की 'जागर' विधा पर प्रकाश डाल रहे है ताकि आप इस विधा को भली-भांति जान सकें।

14.4 जागर- एक लोकगाथा गायन पद्धति

जागर शब्द संस्कृत की जागृ (जाग्रत) करना धातु से बना है। इसका अर्थ है - जागरण अर्थात जागना। महाकवि कालिदास ने रघुवंश और महाभारत में भी जागर-जागृत (जाग्रत) शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'तम् जाग्रतो दूरभुदेति देवम्' आदि। गढ़वाल में देवताओं की नृत्यमयी पूजा, वाद्यवादन को घड़ियाला कहते है। जिसमें डमरु, थाली आदि वाद्यों को एक विशेष पद्धति में बजाया जाता है। इसमें गायन, वादन-पूजन करने वाला पुरोहित 'जागरी' कहलाता है। जिस व्यक्ति पर देवतस अवतरित होता है उस देववाहन या माध्यम को कही 'पस्वा' कहीं 'धामी' आदि कहा जाता है। 'पस्वा' या 'धामी' गांव का ही कोई ऐसा व्यक्ति जिसमें दैवी शक्ति की ग्राहयता होती है। जिस व्यक्ति के सिर पर देवता आता है, घड़ियाला लगाते हुये जब जागरी पुरोहित दैवी शक्ति का आह्वान करता है तो उसमें कम्पन्न होता है जो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, जब कम्पन्न चरम सीमा पर पहुंच जाता है तो वह 'हव्' ध्वनि उच्चरित करता हुआ, उठकर नाचने लगता है। यह 'हव्' शब्द सम्भवत (आह्वान स्वीकार किया) का द्योतक है। थाली और डमरु का उत्तेजित स्वर, पुजारी का आह्वान गीत और रात्रि के सूने प्रहर, कुल मिलाकर ऐसा

वातावरण उपस्थित करते है कि 'पश्वा' कांपने लगता है जो इस बात का प्रमाण होता है कि उस पर आहूत (बुलाए) गए देवता की शक्ति अवतरित हो गई है। डॉ0 गोविन्द चातक के अनुसार- इन गीतों को जागर कहने के पीछे एक तर्क यह भी है कि इनमें देवशक्ति को जाग्रत करने के लिए आह्वान होता है। इसीलिए इनका प्रारम्भ जागने जगाने के उद्बोधन से होता है। ''हरि हरिद्वार जाग, बद्री-केदार जाग, धौली पयाल जाग, भूमि कर भूम्याल जाग, छेम का छेतरपाल जाग'' आदि भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए इस प्रकार के मिलते-जुलते उद्बोधन से जागर का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है और देवता प्रकट होने के लिए बुलाया जाता है जैसे- ''प्रकट ह्वे जान, प्रकट ह्वे जान पांच भई पंडऊ। प्रकट ह्वे जान कोन्ती माता.......'' ऐसे आह्वान से जब दैवी शक्ति 'पश्वा' पर प्रकट होती है तब उसकी लीलागान करते हुए नचाया जाता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र में यह विश्वास किया जाता है कि नृत्य से देवता प्रसन्न होते है। नृत्य ही गढ़वाल में पूजा-रुप है। किसी के सिर पर देवता का अवतरित होना और उसको नचवाना सम्भवतः समग्र भारत में पाया जाता है। सम्भवत यह परम्परा पुराकाल में यक्ष-गर्न्धव और किन्नरों में प्रचलित रही होगी। गढ़वाल में जागर पूजा का महत्त्व नृत्य समारोह और लीलागायन में ही नहीं बहुत कुछ रोग निवारण के लिए किए गए आश्वासनों में भी है। लोक 'पश्वा' को अक्षत देकर प्ररून पूछते है- जिन्हें बार-बार उछालता हुआ उत्तर देता है और आधि-व्याधि के निवारण के लिए उपाय सुझाता है। कुछ 'पश्वा' या पुछारे यही काम करते है। वे अनुष्ठान का अवसर न होने पर भी प्रश्नों के उत्तर देते है। उन्हें 'वाकी' अथवा 'वाक्या' कहते हैं क्योकि वे वाक् बोलते हैं। देवताओं को नचाने के लिए आयोजित समारोह के जारता (देवयात्रा) मंडाण आदि कहकर पुकारा जाता है। पांडवों की जात को 'पंडवार्त' और देवी की जात को 'अठवाड' कहते हैं। किसी व्यक्ति के घर में आयोजित ऐसे समारोह को घड़ियालों का नाम दिया जाता है। आदिम मानव ने ब्राह्माण्ड की ऐसी शक्तियों को जागर द्वारा अवतरित करने में विश्वास किया, यह कल्पना करने में एसे देर नहीं लगी कि दैवी शक्ति किसी प्रतीक में अवतरित हो सकती है। इसी भावना के अनुरुप वृक्षों, पर्वतों, मूर्तियों आदि को उसने प्रतीक का स्थान दिया और स्वयं मानव को भी 'पश्वा' के रुप में एक प्रतीक माना जाने लगा जिससे दैवी शक्ति के अवतरण की अवधारणा को प्रश्रय मिला। डॉ0 मदन चन्द्र भट्ट का कथन है कि, "ब्रह्मा के बाद प्रजापति बने। रुद्र ऋषि ने कैलाश में अपना आश्रम बनाकर नेपाल के पशुपति नाथ से लेकर वाल्हीक तक धर्म का प्रचार किया।। इसी रुद्र ऋषि ने ताण्डव की परम्परा शुरु की जिसमें नृत्य के माध्यम से मानव शरीर में पवित्र आत्माओं का अवतरण कराया जा सकता था। ये वैदिककालीन रुद्र ही पुराणों में 'शिव' नाम से प्रसिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है यह ताण्डव नृत्यगीत ही जागर के रुप में प्रचलन में आया है। डमरु में यदि प्रचण्डता को साथ लेकर एकाकार होकर एक ही स्वर-ताल में बजकर कम्पन्न उत्पन्न कर देते है"।

14.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं

किसी युग के जातीय वीरों यहां तक कि भूतों- रण में मारे गए योद्धओं (रण भूतों) आछरियों तक को भी जागर में नचाया जाता है। लेकिन आश्चर्य है कि जहां पाण्डव, जीतू

बगड्वाल को यह गौरव मिला, वहीं राम, शिव आदि इस पद्धति से अवतरित किए जाने में उपेक्षित रहे है। सभी स्थानीय देवताओं को जागर में नाचने और मनुष्यों द्वारा आवाहित करने का सुअवसर मिलता है, इनमें नगेलों, घंटाकर्ण, खितरपाल, विनसर, कैलावीर, भैरव, नरसिंह, हीत, देवी, हनुमान आदि उल्लेखनीय है। किन्तु उनके सम्बन्ध में न लम्बे कथा गीत प्रचलित है और न वे जागरी पुरोहित द्वारा थाली, डमरु के घड़ियाले पर गाए जाते है। इनमें ढोली आवजी, ढ़ोल-दमामा बजाते हुए बीच-बीच में देवता का विरुद गाते है। सब कुछ होते हुए भी उन्हें जागर के अन्तर्गत नहीं लिया जाता।

डॉ0 चातक का कथन है कि ''देवता दिन और रात चार पहरों में नाचता है। लेकिन रात में विशेष आयोजन होते है। इन चार प्रहरों में देवता रात भर नहीं नाचता और न जागरी निरन्तर गा पाता है। फलतः बीच के समय में था तो युवक नाचने बैठ जाता है। फलतः बीच के समय में या तो युवक नाचने बैठ जाते है या फिर दर्शकों में से कोई व्यक्ति उठकर कानों में हाथ डालकर लम्बे स्वर में देवताओं सम्बन्धी कोई प्रसंग सुनाने लगता है जिसे वार्ता कहा जाता है। वार्ता सुनाने वाले के प्राथमिक बोल इस प्रकार होते है''

''हे ढोली मैं निद्रा में खोया था.....तूने ढ़ोल के शब्द और नगाड़े की गूंज से मुझे बुलाया है। मैं नदियों से बहते, शिखरों से लुढ़कते हुए यहां आया हूं। आज तू अपने वाद्य से मुझे फूल सा खिला दे, भौंरे सा उड़ा दे। ढ़ोली ढोल बजाता है, लोग नाचते है और बीच-बीच में कोई कथिक (कथा कहने वाला) राम, शिव, पांडव अथवा किसी पौराणिक चरित्र की वार्ता सुनाने लगता है। वार्ताएं अनेक है। जागर वार्ता के अन्तर्गत नागराजा, कृष्ण के जागर, ब्रह्मकौंल (कुवंर के जागर), सूरज कौंल, चन्द्रावली हरण, कुसुमाकोलिन और सूजू की सुनारी की वार्ताएं दी गई है। गंगू रमोला और सिदुवा-विदुवा की वार्ता, नागराजा कृष्ण के ही जागर के अंश है। सिदुवा-विदुवा तो पश्वा के सिर पर भी आते है और उन्हें कृष्ण के साथ-साथ नचाया जाता है। पाण्डवों के मंडाण को यद्यपि पंडवार्ता (पाण्डव वार्ता) कहा जाता है। किन्तु वे व्यक्तियों पर आधारित होते है, ढ़ोल दमामों के साथ नचाएं जाते है। सीता हरण, 'कद्रू-विनीता संवाद', निरंकार वार्ताएं है परन्तु नन्दा भगवती और गोरील, गोल्ल/गोरिया को नृत्यमयी पूजा दी जाती है।

14.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं

डॉ0 गोविन्द चातक अपनी पुस्तक गढ़वाली लोकगाथाओं में गाथाओं की लोकप्रियता के विषय में लिखते है। कि 'गढ़वाल में कृष्ण का जागर सबसे अधिक लोकप्रिय है'। वहां उन्हें 'नागर्जा' या नागराजा कहा जाता है। एक जागर में उन्हें नागवंशी भी कहा गया है और अन्य में नागकन्या से विवाह करते दिखाया गया है। कलिया नाग का दमन और खाण्डव दाह की प्रेरणा देने वाले कृष्ण नागराजा कैसे कहलाएं, सम्भवतः इसके पीछे नाग प्रभुत्व रहा हो स्वयं उनकी लीला भूमि मथुरा में प्रचलित नागों की कन्याओं के नायक कृष्ण है। जब वासुदेव बालक कृष्ण को मथुरा से गोकुल ले जा रहे थे तो नदी के उफान में शेषनाग ने उनकी सहायता की थी। उनके भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। कृष्ण को भी शेषशाची विष्णु का अवतार

माना गया। मथुरा के मन्दिरों के उत्खनन से अनेक नाग मूर्तियां मिली है। मथुरा अंचल के लोग नागपूजा के बहाने कृष्ण की ही स्मरण पूजन करते है। गढ़वाल में नागों के गढ़ थे, उरगम, और नागपुर पट्टियां ही नही दशौली और पैनखण्डा में उनका अधिपत्य था, ऐट किन्सन ने हिमालयन गजेटियर में नामों के 61 मन्दिर गिनाएं है इनमें शेषनाग, वासुकी नाग, भकेल नाग, मंगल नाग, बेनी नाग, फेनी नाग, काली नाग, धौला नाग, कर्कोटिक नाग, स्यूड़ियां नाग आदि कई नागों की पूजा होती है। रमोली के सेम-मुखेन में नागराजा कृष्ण की पूजा होती है। इस क्षेत्र में गंगू रमोला की गाथा जुड़ी है। गंगा जी को नागनां जननी (नागों की माता) कहा गया है। गाथा के अनुसार वासुकी नाग की पत्नी विमला के दूधिया कौंल, वरमी कौंल, सूरज कौंल, धर्म कौंल, नीम कौंल, फूल कौंल, जत कौंल और सतकौंत नौं नाग पुत्र थे। गीतों में उसे 'जियावे नागीण' अर्थात् नागों की माता कहा गया है। उसके पुत्रों सुरजू कौंल, सौर ब्रह्मी कौंल से कृष्ण की बड़ी मित्रता थी वे कृष्ण को बडा भाई मानती थे और उन्हें ही उन्होंने 'जोत्रमाला' अथवा 'ध्यानमाला' नामक सुन्दरी को ले आने का संदेश दिया था।

मोतीमाला ध्यानमाला अथवा जोत्रमाला नाग जाति की कन्याएं बताई गई है। लेकिन कुसुमा कोलिन और सूजू की सुनारी निम्नवर्ण की रमणियां है। कृष्ण से उनका सम्बन्ध कृष्ण के परकीया प्रेम नही बल्कि कृष्ण के समत्व भाव दिखाने के प्रयोजन से जोड़ा गया है। कुसुमा कोलिन की वार्ता में कृष्ण स्नान करते हुए उएसकी टूटी लट पर मुग्ध हो जाते है और उसके पैरों के निशान चिन्हते हुये उसके घर तक पहुंच जाते है। उस समय कुसुमा कोलिन का पति इन्द्र को दुशाला बुनकर देने गया था, जैसे ही वह अपने घर पहुंचता है मुर्गा कृष्ण को जगाने के लिए बांग देता है, और वह हल्दीके बाड़े में छिप जाते है। इस वार्ता में मुर्गे की सुन्दर कलगी होने, और हल्दी के मंगल कार्यो में प्रयुक्त होने की प्रतिष्ठा को आधार प्रदान किया गया है। इस गाथा पर कबीर पंथ का प्रभाव है। गाथा में कृष्ण की सभा में कबीर, कमाल और दादू को बैठा वर्णित किया गया है। गंगू रमोला और कृष्ण सम्बन्धी गाथा में गंगू के पुत्रों सिदुवा-विदुवा को गोरखनाथ की बोक्साड़ी विद्या में पारंगत कहा गया है। सुरजूकंवर की गाथा में सिदुवा इसी प्रकार क चमत्कार करता हुआ दिखाया गया है। गढ़वाल के नाथ पंथियों में भी कृष्ण को अपने साथ लपेटा है। एक गाथा में चन्द्रावली से कृष्ण की एक बेटी होती है जिसका नाम कृष्णावती है। कृष्ण ने चन्द्रावती से पैदा हुई अपनी बेटी को गुरु गोरखनाथ से ब्याह दिया। कृष्णावती योग के प्रति अरुचि होने से अपने भाग्य को कोसती है। इन लोकगाथाओं का कोइ ऐतिहासिक सिर-पैर नहीं है। ये पूर्णतः कल्पित है। गाथाकार ने कृष्ण का गोरखपंथ से सम्बन्ध जोड़ने के लिए या किसी गढ़वाल के नाथपन्थी लोकमानस ने गाथा में उसे अमर कर दिया है। कृष्ण के साथ कबीर, रैदास, गोरख का इन गाथाओं में जुड़ना गढ़वाल के लोकमानस के मन की एक धार्मिक सद्भाव की धन्य झांकी मिलती है।

कृष्ण की किसी नागकन्या के प्रति आसक्ति की ये गाथाएं नागों और यादवों के सम्बन्ध को प्रकट करती है। गंगू के पुत्र सिदुवा-विदुवा कृष्ण के मित्र थे। एक गाथा के अनुसार सूरजकौंल की बहिन सूरजी से सिदुवा का विवाह हुआ था। कुमांऊ की रमोला गाथा में कहा गया है कि

कृष्ण की छोटी बहिन विजोरा उससे ब्याही थी। गढ़वाली लोक गीतों में भी सिदुवा को कृष्ण ‘भेना‘ (बहिनोई) कहकर पुकारते है। नागराजा कृष्ण के जागर में पौराणिक वृत्त ही दुहराया हुआ मिलता है। इसमें कृष्ण के जन्म, गोचरण, कंदुक क्रीड़ा, कालियादमन, चीरहरण, गोवर्धन धारण, रास, गोपी विरह आदि विषय ज्यों त्यों वर्णित होते है।

14.4.3 चन्द्रावती की वार्ता

इसमें कृष्ण का चन्द्रावती के लिए प्रेम और उसकी के छल का प्रयोग वर्णित मिलता है। इस वार्ता में रुक्मिणी और चन्द्रावली को बहिन बताया गया है। कृष्ण चन्द्रावली के रुप की प्रशंसा युक्ति सुझाती है पर चन्द्रावली बच जाती है। अन्ततः रुक्मिणी बताती है तुम मेरा रुप धारण करों, कहो कि तुम्हारे जीजा (कृष्ण) का देहान्त हो गया है। आंसू बहाते उससे आश्रय मांगना। गाथा में वर्णन है कि कृष्ण रुक्मिणी का वेश बनाकर सो रहे थे तो चन्द्रावली को संशय हुआ। उसने भी रुप बदल दिया पर अन्त में कृष्ण ने उसे पकड़ लिया। ब्रज और बुन्दोली में चन्द्रावली छलन की गाथा मिलती है। गढ़वाली वार्ता में मौलिकता इस बात में है कि कृष्ण को चन्द्रावली के हरण की प्रेरणा और तरकीब रुक्मिणी ने बताई है। बुन्देली गाथा में कृष्ण उसे दही बेचते हुये देखते है और उसके रुप पर मोहित हो जाते है और उसे छलने का विचार स्वयं करते है। गढ़वाली लोकवार्ता में कृष्ण चन्द्रावली को छलने के लिए अनेक रुप धारण करते है लेकिन हर बार पकड़े जाते है। चन्द्रावली उन्हें पहचान जाती है। कृष्ण की रसिकता की ऐसी वार्ताएं गढ़वाल में प्रचलित है। जिनका आधार पौराणिक नहीं है। इन लोककथाओं (वार्ताओं) में मोतीमाला, जोत्रमाला के अपहरण के लिए कृष्ण सीधे सामने नहीं आते है। किन्तु ‘सूजू की सुनारी’ तथा ‘कुसुमा कोलिन’ में कृष्ण साक्षात् रुप के प्रति ही आकर्षित नहीं होते बल्कि उन्हें पाने के लिए प्रयत्न करत हुये भी वर्णित है।

14.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान गए होंगे कि -

1. लोकगाथा किसे कहते हैं .
2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है
3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं .
4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है .
5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है .
6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं .

14.6 शब्दावली

भेना	-	बहनोई
कुसुमाकोलिन	-	अन्त्यज जाति की एक रुपवती स्त्री
सिदुवा-विदुवा	-	गंगू रमोला पुत्र
अठवाड़	-	देवी पूजन की पद्धति
वार्ता	-	दर्शकों के बीच से कोई जानकार व्यक्ति उठकर अपने दोनों कानों में उंगली डालकर लम्बे स्वर में जब देवताओं की गाथा का कोई प्रसंग सुनाने लगता है उसे वार्ता कहते है।
वाक्या	-	लोक में इसे 'पुच्छेर' भी कहते है। यह वाक् सिद्ध व्यक्ति होता है जो लोक द्वारा पूछे गये रहस्यमय प्रश्नों के उत्तर देता है। 'वाक्' बोलने से इन्हें वाक्या कहते है। ये व्यक्ति भूत, और भविष्य तथा वर्तमान के विषय में बताते है तथा आपदा से बचने के उपाय सुझाते है।
जागरी	-	गायनपूर्वक जागर वाता लगाने तथा डौर-थाली वादन करने में दक्ष व्यक्ति जागरी कहलाता है।
मण्डाण	-	देवपूजा में देवनृत्य देखने व वार्ता सुनने के लिए आए हुए भक्तों (देवता के आराधकों) का हुजूम। जो नियमानुसार शान्त चित्त से एक स्थान पर विधिवत् बैठे रहते है। जिनमें देवताओं के पश्वा (जिन पर देवता आकर्षित होते है) भी बैठे रहते है। उसे मण्डाण कहते है। सम्भवतः मन्दिर स्थान शब्द के अपभ्रंश हो जाने के मण्डाण (मन्दिर स्थान-मन्दिर थाण = मण्डाण) बना है। अधिकांश देवयतनों (देव मन्दिरों) के चौतरों या आंगन अथावा कमरों में ही मण्डाण लगवाते है।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य - डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना - मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य - डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकगाथा से आप क्या समझते है ? लोकगाथा और लोककथा में अन्तर बताओं।

2. गढ़वाली लोकगाथाओं पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 15 गढ़वाली लोककथाएं - स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 गढ़वाली लोक कथाएं : स्वरूप एवं साहित्य
 15.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद
 15.3.2 गढ़वाली लोक कथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां
 15.3.3 गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प
 15.3.4 गढ़वाली लोक कथाओं में शिल्प एवं संवेदना
 15.3.5 गढ़वाली लोककथाओं की विशेषताएं
15.4 सारांश
15.5 अभ्यास प्रश्न
15.6 शब्दावली
15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
15.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

'कथा' शब्द संस्कृत की कथ् धातु से कथा रूप में निष्पन्न हुआ है। जैसे-हिन्दी में (कह) से कहानी बनी है। कथ् का तात्पर्य है - किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी पहलू का रोचक और मनोरंजन वर्णन करना। परन्तु इधर वर्तमान में कथा शब्द का अर्थ संकोच हो गया है। कथावाचक द्वारा धार्मिक उद्देश्यों से श्रोताओं को सुनाई जाने वाली कथा के रूप में इसका अर्थ रूढ़ होता जा रहा है। लोक की भाषा अर्थात् बोली में परम्परा से चली आती हुई मौखिक रूप में प्रचलित कहानी लोककथा है। अंग्रेजी में लोककथा के लिए 'फोक टेल' शब्द का प्रयोग होता है। डॉ0 देवसिंह पोखरियाल लोक कथाओं में लोकमानस की सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, राग-विराग, आस्था-आकांक्षा आदि मानवीय भावनाओं की प्रधानता स्वीकारते है। उनका कथन है कि लोककथाओं में शब्दाडम्बरों की अपेक्षा भाव सा कथ्य की प्रधानता रहती है और लोकसाहित्य का उत्कृष्ट रूप लोककथाओं में ही देखने को मिलता है। इनमें वर्णन की लघुता और स्वाभाविकता, प्रेम की अभिन्न पुट, अश्लील श्रृंगार का अभाव, मानव की मूल प्रवृत्तियों से साहचर्य, आशावादिता, उपदेशात्मक, मंगल भावना, सुखान्तता

(हास्य-रोमांच) आलौकितता तथा औत्सुक्य की भावना रहती है। मांगल गीतों की तरह गढ़वाल के लोकमानस में लोक कथाएं भी लोकप्रिय हैं। आज भी गढ़वाल के बूढ़े लोग चौपालों में बैठकर अपने (नातियों या छोटे नौनिहालों) को लोक कथाएं सुनाकर उनका मनोरंजन करते देखे जा सकते हैं। लोककथाओं का उत्स अर्थात जन्मस्रोत वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में ढूंढा और देखा जा सकता है। लोक-कथाओं की प्राचीन पुस्तकें पंचतन्त्र, हितापदेश आदि है। पालि में बौद्ध कथा साहित्य की लोक कथाओं को 'जातक' कहा जाता है। नीतिकथाओं के रूप में भी लोक को ही उपदेश देने का प्रयास है। संस्कृत, बौद्ध और जैन कथा साहित्य में लोकमानस की ही अभिव्यक्ति हुई है। पाली की तरह अपभ्रंश साहित्य में भी लोककथाओं की बहुलता है। 'पउम चरिउ' इसका उदहारण है। संस्कृत में लोकमानस की अभिव्यक्ति कराने वाली लोक कथाओं की भरमार है। 'वृहतकथा' पैशाची में जिसे 'बढ्ढकथा' कहा जाता है संस्कृत में वृहतकथा, वृहतकथामंजरी और कथा सरित सागर के नाम से मिलती है। 'बेतालपंचविशतिका' में पच्चीस कहानियां है जिसका हिन्दी अनुवाद 'बेताल पच्चीसी' के रूप में मिलता है। वे भी तत्कालीन लोककथाओं के ही रूप है। 'शुकसप्तति' में सत्तर कथाएं हैं।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो सकेगा कि

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है ?
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती है ? इनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है ?
3. इनका कितना पुराना साहित्य है और उसका वर्तमान स्वरूप क्या है ?
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है ?
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है। ?

15.3 गढ़वाली लोककथाएं - स्वरूप एवं साहित्य

गढ़वाल के लोक मानस पर इन कथाओं का प्रभाव पड़ा तो है लेकिन बहुत कम। गढ़वाली का कथा साहित्य यहां की आदिम जाति के विश्वासों, यक्ष, आंछरी (अप्सरा), कृष्ण, नागदेवता और पाण्डवों, पिशाचों, दानवों तथा आत्माओं से सम्बन्धित तथा यहां के शासकों से जुड़ी है। यहां की पशु-पक्षी कथाओं पर भी हितोपदेश, पंचतन्त्र का प्रभाव अधिक नही है। वे यहां की प्रकृति और लोक के मिथकों पर सृजी प्रतीत होती है। यही गढ़वाली लोककथा की अन्य भारतीय लोककथाओं से भिन्नता है। यहां अतिशयोक्ति या अतिक्रान्त प्रयोग वीरों की

कथाओं में उनके शौर्य के रूप वर्णन में देखा जा सकता है। गढ़वाली कथाओं का भी हमारे साहित्य में वही आदर है जो लोकगाथाओं या लोकगीतों का है। अतः प्रचुर मात्रा में लोककथाएं सृजी गई है। गढ़वाल में लोककथा के लिए कथा-कहानी और बारता इन तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। डॉ0 चातक के अनुसार, 'बारता मुख्यतः देवी-देवताओं की पौराणिक कथाओं के कहते है'। कथा काल्पनिक मानी जाती है और कानी (कहानी) जीवन कर वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध होती है। गढ़वाली में 'कथणों' धातु का अर्थ झूठ बनाना अथवा कल्पना करना होता है। वैसे कथा देवताओं की भी हो सकती है किन्तु बारता (वार्ता) में बात का भाव प्रधान होता है और कथातत्व गौंण कथा-कहानी और वार्ता (बारता) सुनने सुनाने को दो रूप हो सकते है। एक तो कथाएं की जाती है। इनके पीछे कोई धार्मिक प्रेरणाएं होती है और वे अनुष्ठान के रूप में की जाती है। सत्यनारायण की कथा, भागवत की कथा, महाभारत, रामायण की कथाएं इसके उदाहरण है।

इनका लोकगाथाओं से इस प्रसंग में सीधा सम्बन्ध नहीं है क्योकि ये पढ़कर सुनाई जाती है और जन साधारण उनके प्रति कथा का भाव नही रखता। वास्तविक कथाएं तो वे होती है जो बड़ी-बूढ़ियां विश्राम के क्षणों में बच्चों को सुनाया करती है या स्वयं पशु चराते हुए, परस्पर सुनते सुनाते है। वार्ता केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायः रात्रि ही उसके लिए उपयुक्त होती है। रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थी। इस अवस्था में वार्ता का ज्ञाता कोई भी व्यक्ति समूह के बीच से उठ खड़ा होता है और दोनों कानों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ देता है। वार्ता के आमुख के रूप में वह ढोल बजाने वाते 'औजी' को सम्बोधित करता है। गढ़वाल में देवी-देवताओं की वार्ताओं के समान अनिष्टकारिणी शक्तियों (भूत-आछरी) का मनौती के लिए नृत्य के साथ जो गीत गाए जाते है उनमें कथा का अंश बहुत होता है और उनकों रांसों कहा जाता है। गोविन्द चातक सम्भावना करते है कि कहीं यह शब्द रासो से मिलाजुला भाव लिए न हो, वैसे बोलचाल में रासो का अर्थ कथा ही होता है। गढ़वाली कानी (कहानी) का अथ मनोरंजन से है। कहानी प्रायः गद्य में ही होती है। कथाएं भी अधिकांशतः गद्य के माध्यम से सार्वजनिक की जाती है । गीत के रूप में जागर, पवाड़े, चैती आदि अनेक कथा गीति अथवा गीत कथाएं मिलती है। गढ़वाली लोकगाथाओं का शिल्प भी बड़ा सुगढ़ है। वे कथासंवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक विवरण के लिए उनमें अधिक स्थान नहीं होता। पात्रों का चरित्र-चित्रण घटनाओं के आधार पर के अल कहानीकार या वाचक के मुख से होता है। मानव इन लोक कथाओं में अपने सब गुण-दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उसमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते है। वे अपनी सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते है। प्रेम की अश्लीलता अभिव्यक्ति इन लोककथाओं में नही मिलती हैं।

वीरगाथाओं के नायक भड़ होते हैं। वे ऐतिहासिक चरित्र होते हैं। कुमांऊ और गढ़वाल, सिरमौर पर दिल्ली के बादशाहों के अनेक आक्रमण हुए हैं। माधो सिंह भण्डारी, लोदी रिखोला, कफ्फू चौहान, भानू, रणूरौत आदि की गाथाएं तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिवेश एवं

घटनाओं को इन कथाओं से संकेतिक करती है। इनमें श्रृंगार और प्रेम के प्रसंग जुड़े होते है। मालू राजुला इसी कोटि की कथा है। भड़ों की स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा करती मिलती है।

देवी-देवताओं, परियों, भूतों, राक्षसों, चमत्कारों तथा आलौकिक शक्तियों की कथाएं आदिम मानव के भावों (मिथकों) अर्थात विश्वासों की इन्हीं कथाओं में आज तक जीवित हैं। प्रागैतिहासिक काल की अनेक सांस्कृतिक बातें जैसे- राक्षसों की कन्याओं से विवाह, नाग और हूण कन्याओं पर भड़ों की आसक्ति, उनका रूपवती होना , यक्षों का पिशाचों की दैवीय शक्तियों से युक्त होना आदि विश्वास के आधार पर गढ़वाली लोकमानस आज भी उन्हें पूज रहा है और उनकी लोककथाओं को अपने समाज में जीवित रखकर बांच रहा है।

15.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद (वर्गीकरण)

डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' के अनुसार गढ़वाल में मुख्यतः जो लोककथाएं प्रचलित है उनके दस प्रकार हैं-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. पशु-पक्षियों की कथाएं
3. भूत-प्रेत और जग्सो (यक्षों-राक्षसों) की कथाएं
4. परियो (मात्रियों और आछरियों) की कथाएं
5. वीर बहादुरों की कथाएं
6. हास्य कथाएं
7. राजा, रानियों और राजकुमारो-राजकुमारियों की कथाएं
8. जीव-जन्तुओं की कथाएं
9. तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना की कथाएं

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' में गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण, यहां की कथाओं की उपयोगिता और उनके विषयों के आधार पर निम्नवत् किया है-

1. देवकथाएं
2. कथा

3. व्रत कथा
4. उपदेशात्मक कथाएं
5. पक्षियों की कथाएं
6. पशुओं की कथाएं
7. ज्ञान की कथाएं
8. मनोरंजन की कथाएं
9. भूतों की कथाएं
10. परियों की कथाएं
11. समाधान मूलक कथाएं
12. अन्य कथाएं

यहां ज्ञातव्य है कि डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' और मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः एकरूपता है, बाबुलकर जी ने राजा-रानी और राजकुमार-राजकुमारियों की कहानियों का तथा तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना वाली लोककथाओं, व हास्य लोककथाओं को अपने वर्गीकरण में छोड़ दिया है। अब डॉ0 गोविन्द चातक द्वारा किए गए गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण को देखिए -

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. परियों, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य तथा उत्साहवर्धक कथाएं
3. वीर कथाएं
4. प्रेम गाथाएं
5. पशु-पक्षियों की कथाएं
6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं
7. कारण-निर्देशक कथाएं
8. लोकोक्ति मूलक कथाएं
9. हास्य (मौर्ख्य) कथाएं

10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं

11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं

12. बाल कथाएं

सर्वप्रथम तारादत्त गैरोला ने गढ़वाली लोक कथाओं का विभाजन इस प्रकार किया था-

1. वीर गाथाएं

2. परियों की कथाएं

3. पशु-पक्षियों की कथाएं

4. जादू-टोना की कथाएं

बाद में डॉ0 चातक ने इन्हें युक्ति संगत न मानते हुए तारादत्त गैरोला के विभाजन को और भी बुद्धिगत करके लोककथाओं की 12 भागों में विभाजन प्रस्तुत किया तथा वार्ता और कानी (कहानी) का अन्तर भी स्पष्ट किया। उन्होंने अधिकांश देवकथाएं एवं वीर गाथाएं प्रायः वार्ता के अन्तर्गत परिगणित की है। निष्कर्षतः इन चारों विद्वानों तारादत्त गैरोला, डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', मोहनलाल बाबुलकर और डॉ0 गोविन्द चातक के द्वारा कृत गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण में निम्न लोक कथाएं प्रमुखता में परिगणित की गई है।

1. वीरपुरुषों की कथाएं 2. प्रणय सम्बन्धी कथाएं 3. भूत-प्रेत, यक्षों की कथाएं 4. पशु-पक्षियों पर आधारित 5. आछरियों पर आधारित 6. राजा-रानियों, राजकुमारों से सम्बन्धित 7. हास्यानुप्रणित लोककथाएं, बाल कथाएं, नीतिकथाएं और देवी-देवताओं पर आधारित कथाएं।

15.3.2 गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण के बाद अब आपको गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों की जानकारी पाना अत्यावश्यक है। अतः हम सर्वप्रथम विद्वान लेखक मोहनलाल बाबुलकर द्वारा बताई गई गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों का अवलोकन करेंगे। बाबुलकर जी ने 43 प्रवृत्तियों का उल्लेख अपनी पुस्तक गढ़वाल लोकसाहित्य की प्रस्तावना में किया है। ये प्रवृत्तियों अग्रांकित है- 1. कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास 2. प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना 3. मन्त्रबल से शरीरान्तरण की प्रवृत्ति 4. शरीर छोड़ प्राणों की दूसरे जीव में स्थिति 5. चमत्कारी गुण 6. पशु-पक्षियों की भाषा 7. सहानुभूति और सहायता 8. भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास 9. धर्म साक्षी 10. प्रकृति की सहानुभूति 11. जादू द्वारा अनहोनी बातें 12. स्त्री पात्रों की सदृश्यता 13. पुरुषों की अपने आपकों नायिकाओं को सौपंने की प्रवृत्ति 14. पछताने की प्रवृत्ति 15. समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति 16. व्रत रखने की प्रवृत्ति 17. प्रेम की प्रधानता 18. स्वप्नावस्था में

देखी राजकुमारी को नापे की होड़ 19. सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं 20. बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना 21. सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना 22. सास-बहू का झगड़ा 23. पुरुष बलि 24. भूत-प्रेतों की बाहुल्यता 25. जादू की सहायता से दुश्मनों को परास्त करना 26. छोटी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना 27. रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोड़ा सा सर्प निकालना 28. स्त्री का पुरुष से प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश 29. स्त्रियों का पति की मांसभक्षी से फायदा उठाना 30. जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- स्याल का विवाह बाधीण से 31. विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली, और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति 32. उपदेशात्मक के साथ मनोरंजकता की प्रवृत्ति 33. लोककथाओं में तीन सौ से, चार हजार रूपये, सात भाई एक बहिन, सात समुन्दर, सात परियां तात्पर्य है कि सात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति। 34. मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है। 35. राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति 36. राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झड़ना और दुख में कोयले झाड़ना 37. आदमी का कड़ावा में पकना, झझर छूने पर जीवित होना 38. निल्लाद तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना 39. आत्मिक असन्तोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति 40. पंखों को जलाकर एवं मूंछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना 41. राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति 42. पशु-पक्षियों का कथानायकों एवं नायिकाओं का सहायक होना 43. स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुषों द्वरार मां के दूध का वास्ता देकर कठिन कार्यों पर विजय प्राप्त करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति का पाया जाना।

मोहनलाल बाबुलकर जी ने गढ़वाली लोककथाओं की जो 43 प्रवृत्तियां बताई है भिन्न-भिन्न गढ़ववाली लोककथाओं की अर्न्तवस्तु के अनुसार निर्धारित की गई है। डॉ0 हरिदत्त भट्ट ‘शैलेश’ का गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में कहना है कि ‘‘गढ़वाली लोककथाओं में गढ़-जनजीवन के चिर-परिचित रूप चित्र मिलते हैं । इनमें युग-युग की भाव धाराओं, सामाजिक भाव-कल्पनाओं तथा सांस्कृतिक गीत विधियों का यथार्थ निरूपण मिलता है। समाज की विभिन्न समस्याओं की सुन्दर व्याख्या और मानव के सुख-दुःख की जीवन रूप मिलता है। उनके द्वारा प्रदर्शित गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां है-

(क) शाप का प्रचुर प्रयोग- प्राचीन साहित्य की तरह इन लोककथाओं में भी शाप का प्रचुर प्रयोग मिलता है। शाप के कारण मनुष्य का पशु-पक्षी, पत्थर, बेल, पेड़, सांप, चूहा, बिल्ली आदि बन जाना, चेहरा विकृत होना, अंग-भंग होना, इन सबके पर्याप्त उदहारण इन लोक कथाओं में मिलते है।

(ख) कर्मानुसार फल- अपने-अपने कर्मो के अनुसार फल पाना, यह भी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। ‘सरण दादू पाणी दे’ कथा में लड़की को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। प्यासे बैल की तरह वह भी जीवन भर चिड़िया के रूप में पानी के लिए तरसती रहती है। ‘गुरु और चेला’ लोककथा में अपने गुरु को धोखा देने के कारण चेले को अपनी जान गंवानी पड़ती है। ‘सियार और भगवान’ कर कथा में सियार को अपनी करनी का फल मौत मिलती है।

(ग) मनुष्यों का पशु-पक्षियों की और पशु-पक्षियों को मनुष्यो की भाषा समझना - कई गढ़वाली लोककथाओं में मनुष्य-सियार, चूहा, बाघ, हिरन, रीछ, कौआ आदि से बात करता है। पंचतन्त्र और कथा सरितसागर की कथाओं का इन लोककथाओं पर पर्याप्त प्रभाव मिलता है। 'सियार और रीछ' की कथा में सियार गांव वालों को भैंस के मारने के विषय में बताता है तब गांव वाले सियार के कथनानुसार जंगल चले जाते है। 'भट्ट कुटक' कथा में पति चिड़िया बनी हुई और चिड़िया की तरह बोलती अपनी पत्नी की भाषा समझता है।

(घ) तन्त्र-मन्त्र और जादू टोने कर प्रयोग - 'मार-मार सोटा, बांध-बांध डोर' में मन्त्र के प्रभाव से रस्सी दुश्मन को बांध देती है और डन्डा पीटने लग जाता है। तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से प्राणियों की झील बन जाना, पत्थर के रूप में बदल जाना, 'राजकुमारियों और जग्सै नौनि' कथा में राजकुमारी का अपनी तलवार से सात परियों को मारना बताया गया है। सात परियां सुन्दर, झील-बाग, सुहावना मौसम, सोने का सिंहासन, मोतियों के पेड़ और जेवरों के फल-फूल के रूप में बदल जाती है। छोटी सी डिबिया में सौ मन भोजन तैयार होना, छोटी सी हंडियां में छत्तीस प्रकार के बावन व्यंजन पकना, जलती आग में कूद जाना, उफनती नदी-नालों को पार करना, दुर्गम चोटियों पर चढ़ना, पक्षियों की भांति उड़ना, रूप बदलना, यह सब तन्त्र-मन्त्र और जादू टोनों से आदमी के बाएं हाथ का खेल हो जाता है।

(ड़) प्राणों की अन्यत्र स्थिति- जग्सौं (राक्षसों) के प्राण सात समुद्र पर ऊँचे पेड़ पर लटके पिंजरे के अन्दर बन्द तोते के रूप में मिलते है। तोते का गला घोटनें से राक्षस का गला घुट जाता है, टांगे तोड़ने से राक्षस की टांगे टूट जाती है। इसी प्रकार के प्राण मैना के किसी पत्थर की मूर्ति में, किसी पेड़ में मिलते है।

(च) भूत-प्रेतों की भयभीत कर देने वाली घटनाओं का चित्रण- भुतहे मकान में रात में भूतों का नाच और हल्ला-गुल्ला करना, मकान में रहने वालों का बेहोश होकर मर जाना, भूतों की अनोखी करामातें जैसे- आदमियों का पीछा करना, कभी-कभी स्त्रियों का सहायता करना, रूपया-पैसा देना, सौ-सौ गज की दूरी पर चीज उठाना, पहरा देना आदि बातों का उल्लेख मिलता है।

(छ) प्रेम, रूप और सौन्दर्य कर अद्भुत वर्णन - सौन्दर्य के वशीभूत होकर पुरुष परियों और यात्रियों को अपना जीवन समर्पित कर देता है। प्रेम के प्रभाव से सब कुछ करने को तैयार रहता है, इसी प्रकार राजकुमारियां, अप्सराएं और रानियां भी प्रेम और रूप के वशीभूत होकर सब कुछ करने को तैयार रहती है।

(ज) मनुष्यों और पशुओं की बलि - माधो सिंह की लोककथा में माधो सिंह को सपना आता है कि जब वह अपने लड़के का बलि चढ़ाएगा, तभी नहर में पानी आ सकेगा। इस बात को ज बवह दुःखी होकर अपनी स्त्री को सुनाता है तो किसी प्रकार मां-बाप की बात, बेटा सुन लेता है और तब वह बलि चढ़ाने के लिए जोर देता है। बलि चढ़ने पर नहर में पानी आ जाता है।

अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए बकरों और भैसों की बलि चढ़ाकर देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का गढ़वाल के प्रायः सभी गावों में प्रचलन है।

(झ) पशु-पक्षियों का सहायक होना - इन कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य के सहायक के रूप में उसकी मदद करते है। जैसे-कौआ द्वारा खतरे की सूचना पाना, हंसों द्वारा पंखों पर बिठाकर सात समुन्दर पार कराना, नेवते द्वारा सांप के टुकड़े-टुकड़े किए जाना आदि घटनाओं से यह प्रवृत्ति मिलती है कि ये सब मनुष्य की सहायता के लिए सदा तत्पर रहते है।

गढ़वाली लोककथा में इनके अतिरिक्त हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' जी ने 8 और प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है -

1. ईश्वर-धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास
2. सास का बहू पर घोर अत्याचार
3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार
4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप
5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन
6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति
7. सपनों की अजीब सृष्टि
8. स्त्रियों में सतीत्व की रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति

इस इकाई का अध्ययन करके आप, गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों, तथा उनके स्वरूप और साहित्य से अवगत हो चुके है। आगे आपकों गढ़वाली लोककथाओं की शैली और शिल्प से अवगत होना है। अतः आपकों अब शैली और शिल्प की जानकारी दी जा रही है।

15.3.3 गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प

शैली अंग्रेली शब्द 'स्टाइल' का हिन्दी रूपान्तरण है। भारतीस विद्वान शैली शब्द के मूल में 'शील' रूप को मानते है। शकटायन के उणादि सूत्र में इसे शा (शीड़) धातु में लक् प्रत्यय के योग से बना मानते है। जिसका अर्थ विद्वानों ने स्वभाव से लिया है। यास्क के निरुक्त में 'शील' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'अभ्यासे भूयां समर्थ मन्यते। यथा अद्ये दर्शनीया, अद्ये दर्शनीया इति', 'तत् परुच्छेपस्य शीलम' अर्थात इस प्रकार के कथन वाली यह परुच्छेप ऋषि की शैली है। आचार्य पंतजलि ने भी महाभाष्य में शैली शब्द का प्रयोग किया है। 'एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते। 'ग्यारहवीं सदी में उत्पन्न प्रदीपकार 'कैयट' ने 'शीले स्वभावे भावा

वृत्तिः शैली' कहा तथा अमरकोष में शैली कर परिभाषा दी है, 'शुचौ तु चरिते शीलम्'। जो कि स्वभाव को इंगित करता है। संस्कृत काव्य शास्त्र में शैली के लिए रीति शब्द प्रयुक्त किया गया है। आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' विशिष्ट पद रचना रीति सूत्र में काव्य की आत्मा (पद रचना अर्थात रीति) को माना है। रीति का भाव शैली में आ गया है। भले ही रीति शब्द से केवल रचना वैशिष्ट्य भी समाहित रहता था। पाश्चात्य् समीक्षक शीरों के अनुसार, 'शैली व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है' यह परिभाषा, शैली के पूर्व वर्णित 'शुचों तु चरिते शीलम्, शीले स्वभावे भावा वृत्ति' आदि सूत्रों की पुष्टि करती है। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार, 'शैली विशेष भाषिक संरचना है'। अब 'शिल्प' क्या है ? इस पर विचार करते है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से होता है। इसीलिए किसी साहित्यिक कृति की शिल्प विधि का पता लगाने के लिए हमें एसकी रचना में काम आने वाली विभिन्न विधियों और रीतियों की ओर ध्यान देना पड़ता है, लेकिन शैली का सम्बन्ध अभिव्यक्ति या रूप रचना की प्रक्रिया से न होकर अभिव्यक्ति के प्रकार विशिष्ट से होता है। अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते है- बाह्य और आन्तरिक। बाह्य का सम्बन्ध केवल रूप रचना से होता है अर्थात् दृष्टि इस ओर रहती है कि विषय-वस्तु की किस रूप में संयोजना की गई है। आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत मनोभावों का विश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व, कुंठाएं, संवेग तथा वृत्यात्मकता का अधिकांशः निरूपण करना पड़ता है क्योकि यह पक्ष व्यक्तित्व का भी खुलासा करता है। शैली के अन्तर्गत अन्तः प्रेरणाओं, अन्तर्द्वन्द्वों, मनोभावों का विश्लेषण करना होता है। इसमें मूलतः भाव पक्ष का विवेचन किया जाता है और शिल्प में कला पक्ष समाहित रहता है। निष्कर्षतः शैली आत्मनिष्ठ होती है अर्थात शैली में किसी व्यक्ति की अदा, भंगिमा, रुझान तथा रुचि का पता चलता है। इस अर्थ में रीति शब्द जिसकी आप पहले विवेचना देख चुके है उसमें यह व्यापकता नहीं है।

रीति तो परिपाटी, पंथ, चलन या परम्परागत लेखन अथवा रचनागत वैशिष्ट्य की बोधक होती है जबकि शैली से लेखक के व्यक्तित्व की भी पहचान की जा सकती है। गढ़वाली लोक साहित्य में कथागत शिल्प, काव्यगत शिल्प, नाटक-कहानियों का शिल्प भिन्न-भिन्न है और शैली भी भिन्न-भिन्न है। पवाड़े और जागर, पंडवार्ता की शैली अलग है। लोकगीतों में श्रृंगार और करुणा से युक्त वर्णानात्मक शिल्प की प्रचुरता है। अब हम आपसे गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प के विषय में चर्चा करेंगे।

15.3.4 गढ़वाली लोककथाओं में शिल्प एवं संवेदना

डॉ0 गोविन्द चातक का कथन है कि, 'जहां तक गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प का प्रश्न है, वे सीधी प्रारम्भ होती हैं। पारिचारिक परिचय उनमें मुख्य रूप से आता है। सात भाई, सात रानी, सात कुत्ते, सात बिल्ली। इस प्रकार संख्या में सात को प्रायः प्रयुक्त किसा जाता है। कथा संवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक वर्णन के लिए उसमें अधिक स्थान नहीं होता। रूप, स्थान आदि का चित्र उतारने के लिए, पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी घटनाओं का आधार केवल कथक (कथा करने वाले) के मुख से होता है। मानव वहां अपने गुण-दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उनमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते है वे अपनी सहज

प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते है। प्रेम की अश्लील अभिव्यक्ति लोककथाओं में नहीं मिलती। केवल भाषा के सांकेतिक रूप से मर्यादा की रक्षा की जाती है। बीच में ऐसी घटनाएं प्रायः आ जाती है जो आलौकिक होती है। किन्तु वे उत्सुकता को जागरित करने में समर्थ होती है। कथा का अन्त प्रायः सुखान्त होता है और साथ ही उसके साथ नीति वाक्य सम्बद्ध होता है। गढ़वली लोककथाओं के अन्तर्गत वीरगाथाओं का अध्ययन लुप्त इतिहास की श्रृंखला को जोड़ने और उसे पुनःस्मरण कराने का काय करता है।

गढ़वाली लोककथा साहित्य में कहीं नाटकीय संवाद शैली भी दिखती है। जैसे- उदाहरण के लिए यहां हम 'मूर्ख की कथा' का हिन्दी रूपान्तरण दे रहे है-

''.......इतने में मूर्ख की ससुराल आ गई। उसकी सास ने उससे पूछा-'तुम राजी-खुशी हो' ? मूर्ख बोला 'हाँ'

'क्या मेरी लड़की ठीक है' ?

वह बोला 'ना'

क्या वह बीमार है ? उसने जवाब दिया 'हाँ'

क्या वह ठीक नहीं हो रही है ?

उसने कहा 'ना'

क्या वह मर गई है ?

मूर्ख बोला 'हाँ'।

मूर्ख की बात सुनकर घर मे सब रोने लगे, जब कि उसकी स्त्री घर में राजी-खुशी थी''।

इसी तरह लोककथाओं में कहीं मुहावरों का प्रयोग तो कहीं काव्यात्मक भाषा, और बिम्ब तथा प्रतीकों के माध्यम से कथा को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का विधान देखने में आता है। यही कारण है कि वर्णात्मक, मनोविश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व और मानवीय संवेदनाओं से गढ़वाली लोककथा साहित्य ओत-प्रोत है। रहस्य, रोमान्च और हिन्दी के अयारी कथा साहित्य की हल्की प्रतिछाया भी यहां के लोककथा साहित्य पर पड़ी दिखती है।

संस्कृत के पंचतन्त्र और हितोपदेश के प्रभाव और शैली शिल्प को भी गढ़वली लोक कथाकारों ने अपनी शैली में ढालने का प्रयास किया है। काव्य बिम्ब 'इमेज' भी इन कथाओं में यत्र-तत्र झलक जाती है। क्योकि पुराने कथाकारों ने जब लोक में इन लोककथाओं को सृजा या लिखा होगा तब अपनी अनुभूति को तीव्रता देने के लिए उन्होंने भाव और ऐन्द्रिय बिम्बों को भी अपनी कहानी में स्थान दिया होगा। प्रतीकों की भी ये लोककथाकार कैसे अवहेलना कर सकते है। अतः सियार, बाघ, बकरी, आंछरी आदि तब प्रतीक के रूप में इन लोककथाकारों के

साहित्य में स्वतः ही अवतरित हुई होगी और अपनी भाषा को व संवेदन को अर्थ देने के लिए उन्हें काव्य बिम्बों और प्रतीकों की मदद लेनी पड़ी होगी। इन्हीं से उनका शिल्प और उनकी शैली सज्जित हुई होगी। कथागत पात्रों के उपदेशों व सन्देशों को लोक तक पहुंचाने में वे सफल रहे होंगे। क्योकि लोककथाओं में यह अनगढ़पन भी लोक को अभिव्यक्ति देता है। यदि इस अनगढ़पन (ग्राम्यत्व) को शिल्प का सहारा दे दिया जाए तो अब भी कथा साहित्य को यथार्थ और कल्पना के पंखों पर उड़ान भरने के लिए तैयार किया जा सकता है।

15.3.5 गढ़वाली लोक कथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोककथाओं में गढ़वाल का लोकमानस बोलता है, उनमें उसक संवेदना और अनुभूतियां बोलती है, यहां के आदिम विश्वास (मिथ) तथा समाज बोलता है। इन कथाओं में लोगों के भावात्मक पक्ष के साथ-साथ उनकी सामाजिक स्थिति, रीति रिवाज और मर्यादाओं का परिचय मिलता है। इनमें कुछ लोककथाएं संवेदना के स्तर पर अत्यधिक उच्चकोटि की है। कुड गढ़वाली लोककथाएं ससुराल के जीवन कर यातनाएं और मायके में विषमता के अन्यायों का बड़ा मार्मिक चित्रण करती है। भाई-बहिन के एक दूसरे के लिए किए गए त्याग, पत्नी का सतीत्व और यौन सम्बन्धों पद इन कथाओं से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनमें उत्पाथित चचरित्र समाज की बद्ध धारणाओं की ओर संकेत करते है। प्रायः चरित्र व्यक्तिगत कम और वर्गगत अधिक है। ननद और भाभी परस्पर प्रतिद्वन्दी और ईर्ष्यालु दिखाई देती है। भाई-बहिन का स्नेह, आदर्शरूप में इन लोककथाओं में आया है। जैसे- सदेई भाई के दर्शन के लिए पुत्रों की बलि तक दे देती है। इन लोककथाओं मे मां का रूप अन्यमतम है। प्रायः सास-बहू के झगड़े का कारण पुत्र पत्नी का पक्ष लेते मिलते है, किन्तु माता फिर भी स्नेह को नहीं छोड़ती। मां की यह ममता एक कथा में बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त की गई है। एक पुत्र पत्नी के कारण अपनी माता को मार देता है और रात को उसे गाड़ने के लिए ले जाता है। गड्ढा खोदकर मां को उसमें रखने लगता है तभी भयंकर वर्षा होने का आभास होता है। माता का शव गड्ढे से बोल उठता है- ‘‘हे आकाश! अभी न बरस, मेरे बेटे करे घर जाने दे, तब बरसना’’। माता का यह रूप लोककथाओं में अनेक प्रकार से आया है। विमाता (सौतेली मां) बहुत अन्यायी और आततायी मिलती है। सौतिया डाह के अनेक प्रसंग षडयन्त्रों से भरे पड़े है। पत्नी के रूप में नारी को साध्वी और पतिव्रता दिखाया गया है किन्तु पुरुष सदैव ईर्ष्यालु लगता है। सरु और फ्यूंली रौतेली की कथाएं प्रेम के ईष्या समन्वित अवसान को चित्रित करती है। स्त्रियां पति के साथ सती होती इखाई गई है और विपत्ति में उनके साथ सत से औलोकिक घटनाएं घटित होती होने का उल्लेचा हुए है। चन्द्रावती के सत से उंगली से ही दूध निकलने लगता है और पांच दिन का बालक कुछ ही दिन में युवक हो जाता है। इन गढ़वाली लोककथाओं में मृत पतियों को सत से जिलाने के अनेक उदहारण मिलते है। मातृत्व को प्रतिष्ठित माना गया है। प्रेम-प्रसंगों में कन्याएं बड़ी साहसी होती है। वे अपने परिवार की चिन्ता न कर प्रेमी का अनुसरण करती है। राक्षस कन्याएं तो अपने मानव प्रेमियों को अपने पिताओं को मारने की युक्तियां तक सुझाती है जिससे वे उनके सथ जा सके। ये कथाएं हिडिम्बा और बक जैसी कथा से प्रभावित है। हिडिम्बा भीम से प्रेम करती है और अपने भाई हिडिम्ब को

मारने की युक्ति भीम को बताती है। गढ़वाल और जौनसार क्षेत्र में पाण्डवों से प्रभावित सांस्कृतिक एकता मिलती है। यही कारण है कि गढ़वाली लोककथाओं पर पाण्डवों पर घटित हुई कतिपय घटनाओं का वर्णात्मक प्रतिछाया प्राप्त होती है। पाण्डवों की तरह महादेव-पार्वती का उल्लेख गढ़वाल की लोककथाओं में बहुत आया है, उनका निवास किसी पेड़ पर बताया गया है। किसी को विपत्ति में देखकर पार्वती द्रवित हो जाती है। इस कथा के द्वारा नारी की उदारता बताई है। महादेव दया तो कर देते है किन्तु पार्वती की इस दरियादिली करने के लिए गुरु गोरखनाथ की बोक्साडी विद्या (यक्ष विद्या-यक्षिणी) का उल्लेख आया है। महादेव और पार्वती के समान ही गुरु गोरखनाथ भी पात्र की भांति गढ़वाल की लोककथाओं में आए है। चमत्कारों के लिए भूत और अप्सराएं भी उल्लेखनीय है। प्रायः इनकों अनिष्टकारी माना जाता है। किन्तु वे कहीं मानव का हित करते भी मिलते है। पशुओं में शेर, हाथी, लोमड़ी, सियार, भालू, चूहा, और पक्षियों में टिहीवा, कौआ, फाख्ता, कोयल, तीतर विशेष चरित्र है। बिल्ली, चूहा, कौआ, लोमड़ी को बड़ा चतुर माना गया है। चूहा महत्वाकांक्षी और मनुष्य के सहायक के रूप में आया है। बकरी की दुर्बलता और छिपकली का आलस्य प्रसिद्ध है। शेर को गढ़वाल की लोककथाओं में मूर्ख सिद्ध किया गया है। उसकों गीदड़ मूर्ख बना जाता है, यह हितोपदेश और पन्च-तन्त्र की गढ़वाल की इस लोककथा पर पड़ी छाप है।

गढ़वाली लोक कथाओं का साहित्य

(क) फुलदे राणि - एक बुढ़िया को एक नोन्याल छयो वे अपणि ब्बै मु बोले, ब्वै ई तरह हम भूखा कब तक रौला। मैं कखि परदेश जौलो। वैकी ब्वैन बोले कि परदेश जाईक अब ल्योंदि तू फुलदे राणि। कीक जांदी कखि यख अपनी कोणों त छैच मरण। वे लड़का न पूछे कख छ मां वा फुलदे राणि ? अरि कनि छ वा। मां न बोले बेटा, एक राजा की लड़की छ। वा बड़ी खूबसूरत छ। लेकिन आदमियों की गन्ध समझदी। लड़का न बोले अच्छो मां, मैं परदेश जांदू। मां का समझोण-बुझोण पर भी वैन एक भी नि मनी, चल दिने। चलदो-चलदो वे सणी कई दिन बीति गैन। भूको-प्यासों।

एक दिन रास्ता मा वे सणि चार जोगी आपस मा झगड़ा कर्दा मिलेन। वैन पूछेन - 'भाई तुम क्योंकु छया झगड़ना' ? जोंग्योन बोले ' हम चार गुरुभाई छवां, हमारा गुरु को देहांत होये, अर अब गददी का खातिर झगड़ा पड़िगे। एक बोलदों मैं बैठुलो, दूसरों बोलदो मैं। ये वास्ता तुम यो फैसला किरया'। लड़का न बोले- 'तुम अपणी-अपणी सिद्धि का मन्त्र बता। तब मैं तोलो, जैकों ज्यादा ताकतवर मन्त्र होलो, ओ गददी का मालिक होलो'। पहलो जोगी बोलदो। 'भाई, मन्त्र बतौण लायक त नी छ, पर जब तुम पंच बणाया, तब बोलण ही पड़दी'। एक ने बोले 'मेरा मन्त्र छः- चल मेरी उडण खटोली देश' ! दूसरा न बोलों-'पक-पक' डिबिया भोजन अर सोर करीछि भात'। तीसर न बोलेः 'मार सोटा बांध दो पूड़ी'। चौथन बोलेः-' झड दो खंता सोने चांदी' ।

लड़का न मन्त्र याद करियाले और बोले-'चल मेरी उडण खटोली, फुलदे राणी का देश' लड़का एकदम फुलदे राणी का देश पहुंच गये अर जोगी खौल्या देखण लेग्या। लड़का शहर मा पंहुच्यों।

वैन सबसे पहलि 'झड खन्ता' पढ़े, वख मू काफी रुपया झडि गैन। कपड़ा-लत्ता बणाइन लड़का त अब राजाओं की तरह सीजे। काफी रात मा वैन अपणी खटोली याद करे अर फुलदे राणी का महल मा गये, राणी का कमरा मा गये। वैन राणि पर द्वी चपत लगाई। हे तरह ओ काफी दिन चपत मारदो रये। वा लड़की कमजोर बणिगे। एक दिन राजा ने पूछे कि बेटी तु किले सुखणील छे। वीन सारी बात राजा का पास लगाये। राजा न सोचे आज रात मैं भी देखिल्यू, भोल गोलि से मारे जालो। फिर रात लड़का आये और वीकी पलंग सहित उड उईक ल्हीगे। आखिर वी सणी अपण देश ल्ही जान्दो अर अपणी राणी बणोदो।

(ख) देवी-देवताओ पर आधारित लोककथाएं- गंगू रमौला-

टिहरी गढ़वाल की गात है। रमोली गढ़ में गंगू नामक एक प्रसिद्ध जागीरदार था। कुबेर उसका खजांची था और अन्नपूर्णा उसके भण्डार की देखरेख करने वाली थी। इतनी धन-दौलत होते हुए भी वह बहुत परेशान सा रहता था। एक सौ वर्ष की अवस्था में बूढ़ा शरीर, किन्तु सन्तान एक भी नही। रानी मीनावती के बार-बार कहने पर भी गंगू को देवी-देवताओं पर भी कोई विश्वास नहीं जमा। उसे अपनेपन का अभिमान था। जीवन में कभी किसी के लिए आदर प्रदर्शित करना उसने कभी सीखा ही नही था। भयंकरता में वह चरम सीमा को पार कर चुका था। अपनी प्रजा की भेड़-बकरियों को जबरदस्ती लूट-खासोट क रवह खाया करता था। यहां तक कि अविवाहित लड़कियों और बांझ भैसों पर भी उसने कर लगा दिया था। लोग उसका नाम सुनते ही कांपने लगते थे। उसके आतंक से सभी दुखी थे। किन्तु कोई चारा न था।

जब कृष्ण को पता लगा तो उन्होंने असके पास सन्देश भेजे और अपनी बात मनवाने के लिए जोर डाला किन्तु गंगू टस से मस न हुआ। अन्त में कृष्ण को द्वारिका छोड़कर ब्राह्मण का वेश बनाकर रमोली हाट जाना पड़ा। गंगू अपनी भेड़-बकरियों को लेकर हरियाली गया हुआ था। हरियाली एक ऐसा चरागाह था जहां नाना प्रकार की औषधियां और जड़ी-बूटियां थी। मीनावती तथा दूसरे लोगों ने जब ब्राह्मण का दिव्य रुप देखा तो सब हैरान रह गए। बाप-रे-बाप ऐसा सौन्दर्य ? रानी के पूछने पर कृष्ण ने बताया कि वह उनका खानदानी ज्योतिषी है और इस समय गंगू की जन्मपत्री देखने आया है कि उसके भाग्य में पुत्र है या नही। ब्राह्मण ने जल्दी-जल्दी गंगू के ग्रह देखे, कुछ कहा और फिर अचानक अन्तर्धान हो गया। गंगू जब घर लौटा तो उसकी रानी ने ब्राह्मण की बात सुनाई, किन्तु गंगू ने अपनी रानी को बुरा-भला कहा और ज्योतिषी की बात पर कोई विश्वास नही किया। कुछ देर बाद ही उसकी पीठ में भंयकर दर्द होने लगा। देखते ही देखते उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई और सारे अनाज को चीटियाँ चट कर गई। उसकी भेड़-बकरियां एक-एक कर मरने लगी और सारी फसल सूख कर समाप्त हो गई। गंगू ने अपने दुर्भाग्य और अकाल ताण्डव के बारे में अपनी रानी से पूछा कि इसका क्या कारण हो सकता है। रानी ने बताया कि इसका ब्राह्मण का कोप ही हो सकता है।

गंगू का सारा परिवार त्राहि-त्राहि कर रहा थाख् लेकिन उसकी हठ ज्यों की त्यों थी कुछ दिन बाद गंगू ने विचित्र स्वप्न देखा। कृष्ण ने गंगू को काल्या पहाड़ की चोटी पर आने को कहा। गंगू ने

कृष्ण से पूछा कि 'तुम कौन हो' ? मैं तुम्हारा ईष्ट देवता हूं, कृष्ण ने उत्तर दिया। 'यदि तुम वारणी सीमा में मेरा एक मन्दिर बनवा दोगे तो तुम्हारी सारी धन-दौलत वैसी की वैसी मिल जायेगी' किन्तु गंगू को इस पर विश्वास न हुआ। कहने लगा कि शायद तुम लोगों ने सुना होगा कि मेरी सम्पत्ति समाप्त हो गई। मैं तुम पर तब विश्वास करुंगा जब तुम हिडिम्बा नाम की डायन को मारोगे। कृष्ण ने अपनी मुरली बजाई। मुरली की तानसुनते ही हिडिम्बा दौड़ी-दौड़ी कृष्ण के पास आई और सुन्दर-स्वस्थ कृष्ण को देखकर कहने लगी कि 'ओह, मैं कितने दिन से भूखी थी आज अच्छे मौके पर मुझे खाना मिला'। कृष्ण ने कहा 'पहले हम दोनों अपनी-अपनी ताकत दिखाएं। सामने यह झूला है बारी-बारी से एक दूसरे को झुलाए। देखें कौन ज्यादा झुला सकता है ?। हिडिम्बा तैयार हो गई। पहले कृष्ण झूले पर बैठे। हिडिम्बा ने अपना पूरा जोर लगाया किन्तु वह झूले को हिला तक सकी। अब हिडिम्बा के बैठने की बारी थी। जैसे ही वह झूले पर बैठी, कृष्ण ने उसे इतना उपर उठा दिया कि वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उस समय सारा रमोली गढ़ कांप उठा। जैसे कोई भयंकर भूकम्प आ गया हो। यह देख गंगू ने दो गूंगे कृष्ण के पास भेजे कि देखों की क्या हुआ ?

गूंगे कृष्ण के पास पहुंचते ही बोलने लगे और लौटकर गंगू के पास आये तो उन्होंने सारी कहानी सुनाई फिर भी गंगू को विश्वास नही हुआ। अन्त में कृष्ण स्वयं साधु का वेश बनाकर गंगू के यहां गये और खाने के लिए दूध-दही मांगा। गंगू ने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया किन्तु मीनावती ने उन्हें खूब दूध-दही खिलाया। साधु ने मीनावती को आर्शीवाद दिया और गंगू को कोढ़ी हो जाने का शाप दिया। कोढ़ी हो जाने पर गंगू टस-से-मस नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। जब गंगू पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ तब कृष्ण स्वयं नाग का रुप धारण कर उसकी बिस्तर पर बैठ गए। गंगू चालाक था, उसको नाग का कुछ आभास सा हो गया और वह उस रात चुपचाप बाहर बैठा रहा। अन्त में कृष्ण ने रमोली गढ़ के पानी के सारे स्रोत सुखा दिये। कहीं पानी की एक बूंद भी नहीं रही। पशु-पक्षी सब प्यास के मारे मरते जा रह थे। गंगू गंगा का पानी पीने गया लेकिन वह खून में बदल गया। अब गंगू भी कुछ परेशान सा हो गया। लौटने पर उसने अपनी रानी से पूछा। रानी ने कहा कि किसी पंडित से पूछ लो कि यह सब क्यूं हो रहा है! कोई चारा न था। गंगू ने ज्योतिषियों से पूछा। उन्होंने बताया कि कृष्ण नाराज हो गये है। उनकों मनाने के लिए तुम्हें भूखा-प्यासा रहना होगा। गंगू ने द्वारिका के लिए प्रस्थान किया और वहां पहुंचकर भगवान के चरणों में पड़ गया। कृष्ण ने उसे क्षमा कर 'सद्या' और 'सेम' में मन्दिर बनाने को कहा। गंगू ने सेम में मन्दिर बनवाया, किन्तु मन्दिर पूरा होते ही धरती में समा गया। अब गंगू ने अपने सारे इलाके में जगह-जगह कृष्ण के मन्दिर बनवाए। थोड़े ही दिनों में उसकी सारी खोई सम्पत्ति वापस मिल गई। वह ठीक हो गया और श्रीकृष्ण की कृपा से उसके 'सिदवा' और 'विदवा' दो पुत्र भी हो गये।

15.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि -

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है ।
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती है इनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है ।
3. गढ़वाली लोक साहित्य कितना पुराना है तथा उसका वर्तमान स्वरूप क्या है ।
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है ।
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है।

15.7 शब्दावली

रमौली गढ़	-	उत्तराखण्ड के टिहरी जनपद में है। यहां श्रीकृष्ण का सेम-मुखेम नामक प्रख्यात मन्दिर है। प्राचीन साहित्य में इसे रमणक द्वीप भी कहा गया है।
खरसाली	-	यह स्थान उत्तराखण्ड में यमुनोत्री मार्ग पर है।
साबर की विद्या	-	सम्मोहन की विद्या।
कन्दूणियें	-	कान
खुरसानी चीरा	-	कनफट
पंद्यारा	-	पानी की धारा

15.8 अभ्यास प्रश्न

1. लोककथा से क्या तात्पर्य है ? गढ़वाली लोक कथाओं में किसी एक गढ़वाली लोककथा को हिन्दी भाषा में लिखों।
2. गढ़वाली लोककथाओं की कोई तीन प्रमुख प्रवृत्ति बताइएं।

3. शिल्प से आप क्या समझते है ? शिल्प और शैली में अन्तर बताइए।

4. 'मूर्ख की कथा' के संवाद गढ़वाली में लिखिए।

5. तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का जो विभाजन किया है उसका उल्लेख कीजिए।

6. डॉ0 चातक द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथा का वर्गीकरण क्या है ?

7. निम्न लिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए- बारता, जातककथाएं, सरगदादू पाणि दे, तन्त्र-मन्त्र और जादू टोना वाली कोई एक गढ़वाली लोककथा का सारांश।

8. निम्नलिखित पुस्तकों के लेखकों के नाम बताइये-

    (क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना

    (ख) उत्तराखण्ड की लोक कथाएं

    (ग) गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य

    (घ) गढ़वाली लोक कथाएं

    (ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य

    (च) गढ़वाली लोकगीत विविधा

9. डॉ0 हरिदत्त भट्ट द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां कौन सी है ? क्रमश उल्लेख करों।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-2 का उत्तर- गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख तीन प्रवृत्तियां है-

(क) कर्मभोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास

(ख) प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना

(ग) पछताने की प्रवृत्ति

प्रश्न-3 का उत्तर- शिल्प के अन्तर्गत कला पक्ष समाहित रहता है। यह कथा की या काव्य की बाह्य रूप रचना का कार्य करता है। अन्तरंग तत्व शैली है। शैली के अन्तर्गत जहां अन्तःप्रेरणाओं, अर्न्तद्वन्द्वों और मनोभावों का विवेचन किया जाता है वहीं शिल्प के अन्तर्गत कथ्यसंवादों की रोचकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता और अलंकृत वाक्य विन्यास आता है। शिल्प अपनी विशेषता लिए रहता है। जैसे- गढ़वाली लोककथाओं में सात भाई, सात समुन्द्र,

सात कुत्ते, सात बिल्ली। यह सात शब्द (अंक) शिल्प विशेष या (रुढ़ि परम्परा निर्वाह) के कारण प्रयुक्त करना होता है। हम आपको पहले भी निंदृष्ट कर चुके है कि अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते है- एक आन्तरिक, दूसरा बाह्य। यह आन्तरिक पक्ष शैली है और बाह्य पक्ष शिल्प, जिसे सामान्यतः भाषा में आप कला पक्ष कहते है। यही शैली और शिल्प में अन्तर है।

प्रश्न-4 का उत्तर 'मूर्ख की कथा' गढ़वाली भाषा में-

एकदा एक मूरख अपण ससुराल पैट। चलदा-चलदा वे कु ससुराल दिखैण बौढ़िग्या। उ खुश ह्वे ग्या, सासुजी तैं मिलण का बाद सासुल पूछ- हे बाबा तुम राजि खुशी छौ ?

मूरखल ब्वाल- 'हाँ' सासू।

सासुल पूछ-क्य मोरि नौनि खूब च ?

बैल-ब्वाल 'ना'

क्य व विभार चा ?

वैल जबाप द्या- 'हाँ'

क्य व ठीक नि हूणी चा ?

मूर्ख ल ब्वाल- 'ना'

अरे वय व मोरि ग्याई ?

वैल ब्वाल- 'हाँ'

जबकि घरमा वे कि औरत ठीक-ठाक छाई।

प्रश्न-5 का उत्तर- तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का निम्न विभाजन स्वीकार किया है-

1. वीर गाथाएं
2. परियों की कथाएं
3. पशु-पक्षियों की कथाएं 4. जादू-टोना की कथाएं

प्रश्न-6 का उत्तर- डॉ0 गोविन्द चातक के द्वारा किया गया गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

1. देवी-देवताओं की कथाएं

2. परियो, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य व उत्साहवर्धक कथाएं

3. वीरगाथाएं

4. प्रेम कथाएं

5. पशु-पक्षियों की कथाएं

6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं

7. कारण-निर्देशन की कथाएं

8. लोकोक्ति मूलक कथाएं

9. हास्य (मौर्ख्य) कर कथाएं

10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं

11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं

12. बाल कथाएं

प्रश्न-8 के उत्तर-

(क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना-मोहनलाल बाबुलकर

(ख) उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक

(ग) गढ़वाली भाषा औा उसका साहित्य- डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

(घ) गढ़वाली लोक कथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक

(ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव और विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला

(च) गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ0 गोविन्द चातक

प्रश्न-9 का उत्तर- डॉ0 हरिदत्त भट्ट उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं।

1. ईश्वर, धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास।

2. सास का बहू पर घोर अत्याचार।

3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार

4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप।

5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन।

6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति।

7. सपनों की अजीब सृष्टि।

8. स्त्रियों में सतीत्व रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति।

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डॉ0 हरिदत्त भट्ट ‘शैलेश‘, प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

7. धुंयाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद, देहरादून, संस्करण अगस्त 1983

15.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोककथाओ से आप क्या समझते हैं? गढ़वाली लोक कथाओं के स्वरूप पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 16 गढ़वाली लोक साहित्यः अन्य प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
    19.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
    19.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां
16.4 सारांश
16.5 अभ्यास प्रश्न
16.6 शब्दावली
16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
16.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य अब लगातार अनुसंधान और विवेचना का विषय बनता जा रहा है। उत्तराखण्ड भाषा संस्थान की स्थापना के बाद उत्तराखण्डी साहित्य का प्रकाशन एवं उस पर विचार चर्चा और शोध समीक्षण का कार्य लगातार चल रहा है। नए लेखक नई तरह से लोक साहित्य पर अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। अन्य प्रान्तीय भाषाओं (लोक भाषाओं) का तुलनात्मक अध्ययन भी जोरों पर है। भाषिक तत्वों तथा लोकतत्वों और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से भी लोक साहित्य की विवेचना की जाने लगी है। अब लोक गाथा, लोक गीत, और लोक में व्याप्त मिथक (लोक विश्वास) पर नए मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विश्लेषण करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस प्रकार के अध्ययन से गढ़वाल क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत, उसके प्रभाव और विकास का पता चलता है। गढ़वाली लोक साहित्य की प्रवृत्तियां का पूर्व के पाठों और इकाईयों में भी दिक् दर्शन किया जा चुका है।

16.2 उद्देश्य

इस उन्नीसवीं इकाई का विधिवत् अध्ययन करने के बाद आप गढ़वाली लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाली निम्नलिखित प्रमुख साहित्यिक विधाओं की अन्य प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे जैसे-

1. खण्डकाव्य एवं महाकाव्य की अधुनातन नूतन प्रवृत्तियां क्या है ?
2. गीतिकाव्य एवं संवाद काव्यों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेगें
3. नाटक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां, तथा पुराने नाटक साहित्य की प्रवृत्तियों में मूलभूत अन्तर की पहचान कर सकेंगे।
4. कथा (कहानी) की अन्य प्रवृत्तियां पहचान सकेंगे।
5. लोकगीत एवं गाथागीतों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेंगे।
6. प्राचीन लोक साहित्य विशेषकर आधुनिक काव्य में कलापक्ष एवं भाव पक्ष में हुए परिवर्तन को जान सकेंगे।

16.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

19.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोक साहित्य की विधाओं की पृथक-पृथक प्रवृत्तियों का आप पूर्व में भी अध्ययन कर चुके है। गढ़वाली लोक साहित्य की कुछ अन्य प्रवृत्तियां निम्नवत हैं-

1. काव्य तत्वों में रस की प्रधानता जैसे- गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ो) में वीर, श्रृंगार और करुणा तथा अद्भुत रस की प्रमुखता है। रणू रौत का पवाड़ा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

वीर रस - राजा को आदेस् पैक रौत चलीगे, माल की दूण कुई माल बोदा-

ये तैं चुखनी चुण्डला आंगूली मारला। तब छेत्री को हंकार चढ़े रौत,

मारे तैन मछुली-सी उफाट, छोड़े उड़ाल तरवार।

तैन मुण्डू का चौंरा लगैन, तैन खूनन घट्ट रिंगैन मरदो,

तै माई मर्द का चेलान मरदो। सी केला सी कच्यैन, गोदड़ा सी फाडीन।

बैरी को नी रखं एक, ऋणना को-सी शेष।

श्रृंगार रस - झंकरु होतो मातो उदमातो, राणियों को रौसियों होलो वो, फूलू को हौसिया

रणू रौत की बौराणी भिमला पर, वैकी लगी छै आंखी।

रणू तै जुद्ध मा जायूं सुणीक, वो चली आये भिमला का पास।

करुण रस- करुण रस का यह निम्नोक्त उदाहरण कालू भण्डारी के पवाड़े से उद्धृत किया जा रहा है।

रोये बराये तब राणी ध्यानमाला, भटके जने ऊखडुं सी माछी।

मैं क तैं पायूं सोहाग हरचें, मैंक तैं मांगी भीख खतेण

कनो मैंक तैं मांगी तई दैव रुठे ? रखे दैणी जंगा पर वींन कालू को सिर

बाई जांग पर धरे वो रुपू गैंगसारो। रौंदी बरांदी चढ़े चिता ऐंच

सती होई गये तब ध्यानमाला!

2. मानवीकरण की प्रवृत्ति- हाथी, शेर, गीदड़ भी मनुष्य जैसे बोलते और आचरण करते दिखाए गए हैं।

3. अलंकार- रुपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा ‘अबोध बन्धु’ की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

4. नए प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति - आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौसिया-गीत' में बसगल्या न्यार, पोडमा को पाणी, धार मा को बथौं, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौडू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा- परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना- परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है।

5. हिन्दी साहित्य के अनुसरण की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य हिन्दी साहित्य से प्रभावित हुआ है। पवाड़ों में और गढ़वाली वीरगाथाओं में हिन्दी का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी वीरगाथा काव्य के कवियों ने राजाओं की वंशावलियों और युद्धों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। तो गढ़वाली पवाड़ों में भी लोक नायकों/भड़ों की वीरता का लोमहर्षक वर्णन मिलता है। जगदेव पंवार, गढू सुम्याल, सूरिजनाग, कालू भण्डारी, रिखोला लोदी, माधो सिंह भण्डारी, तीलू रौतेली आदि अनेक पवाड़ों के गाथा तत्व हिन्दी वीरगाथाओं से मिलते है। गढ़वाली की प्रणय गाथाओं/जीतू बगड़वाल, फ्यूंली रौतेली, राजुला मालूसाही, गजू मलारी आदि में हिन्दी प्रेम आख्यान परम्परा की प्रवृत्ति दिखाई दे

पुरानी गढ़वाली लोक गीत कर बानगी बदली सी प्रतीत होने लगी है। यह उर्दू गीति विद्या की भी प्रभाव मानी जा सकती है।

6. प्रकृति चेतना और पर्यावरणीय चिन्ताओं के वर्णन की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य के कवियों ने प्राकृतिक वनस्पतियों एवं रमणीय स्थलों की सुरक्षा, नदियों की पवित्रता बनाए रखने और प्राकृतिक संसाधानो के बेतहाशा दोहन का कविता लिख करके विरोध जताया है। कवि भजन सिंह 'सिंह' ने सिंह सतसई में पंचायती न वृक्षारोपण कविताओं में सरकारी नियंत्रण का विरोध जतलाया है। कवि हीरालाल उनियाल, सायर सुरेन्द्र (चिन्मय सायर), और गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी की कविताओं में पर्यावरणीय चिन्ताएं दृष्टिगत होती है। नरेन्द्र सिंह नेगी के डाल्यूना काटा, डांड्यू की विपदा, जिदेरी घसेरी, डाली रोया, गंगाजी और डाम का खातिर गीतों में प्रकृति वेदना तथा जन पीड़ाओं और समस्याओं के स्वर सार्वजनिक होते है। उनके डाम का खातिर गीत पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध भी लगाया गया था।। इस गीत का एक बन्ध आपके अध्ययन हेतु उद्धृत किया गया है-

अबारी दा तू लम्बी छुटटी लेकी ऐई, ऐगी बगत आखीर

टीरी डूबण लग्यूं छ बेटा, डाम का खातिर।

गीतकार नरेन्द सिंह नेगी के गीत श्रोता और पाठकों के मन में आह्लादक बिन्दु प्रस्तुत करते है। उनके गीत बसन्त ऐगे में प्रकृति के मानवीकरण के साथ-साथ जीवन के उल्लास का सजीव चित्रण निम्नवत् किया गया है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,

बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा

ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,

बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।

मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,

गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार

आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती

उलया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार

सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे

बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

अर्थात - बसन्त रुणक-झुणक की अदा के साथ गीत गाता आ रहा है। वह डांडा की सारियों में ठुमक-ठुमक का गोल मटोल गुदगुदे पैरों से चलकर आ रहा है, गांव के लिपे-पुते साफ-सुथरे घर द्वार में असन्त पहुंच गया है। वह सुन्दरियों के गोरे मुखों और लाल गालों पर छा गया है। उनकी आंखों से बसन्ती सपने टपकने लगे है। उल्लसित हृदयों में प्यार उमड़ आया है। बसन्त नव कोमल किशोरियों के नाक कानों को गोदकर सिणके और सूत के रुप में विराजमान है। प्रकृति को आधार बनाकर गिरीश सुन्दरियाल ने भी अनेक गीतों की रचना की है। उनके प्रसिद्ध प्रयाण गीत में प्रकृति का सौन्दर्य निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है-

झल-उज्यालों झप- अंध्यारों कब तै रैंण सारै-सार,

चल भुला अब मार फाल क्या जग्वल्दी उदंकार।

बाटो यो क्वी सौंगू नी द तू भी इतना जाणि ले

जिन्दगी छ खड़ि उकाल यीं उकाल ताणि ले

जिन्दगी की असलियत तैं धार पैंछी देखि ले

यीं तरफ छ दुःख अथाह अर वीं तरफ सुख जाणि ले।

नये प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करने वाले दूसरे प्रमुख कवि चिन्मय सायर है। उनकी कविताओं का शिल्प कथन भंगिमा, और प्रतीक अन्य कवियों से भिन्न है। सायर के काव्य की कृछ प्रतीक प्रस्तुत किए जा रहे है।

- ☐ मेरि कविता/निल्ल-चिल्ल भ्यटग्यां दुखों की/नौणी शिलाजीत
- ☐ मेरि कविता/सड़की तीर/खड़ु सिगनल
- ☐ बिन फूलौं फल नी हूंद/पर तू ह्वेगे/तिमला फूल
- ☐ बेथ भी जिन्दगी/हाथ भर दुःख

कमेड़ा आखर कविता संग्रह की रचियता बीना बेंजवाल की रचनाओं में पर्वतीय पारी के प्रतीक बांजा-पुंगड़ा (पर्वतीय कृषि की उपेक्षा का प्रतीक), भमाण पाखा (जीवन के नीरस दिन), माला-पोथी (अबोध बालिका का प्रतीक) और कुंगला पंखुड़ (कोमलइ भावनाओं का प्रतीक) है। दैसत काव्य के रचियता अबोध बन्धु की कविताएं प्रतीकात्मक है। जिसमें कवि ने राजनीतिक षडयन्त्र, शोषण और काले कारनामों वाले नेताओं के द्वारा संचालित लोकतन्त्र का मखौल प्रतीकात्मक भाषा में किया है। एक उदाहरण दृष्ट्व्य है -

हे सर्प-पुत्र ! असल संपैणी का बच्चा

हे तड़कौण्यां डंड्वाक ! कंठ जहर की कुटरी वाला।

औ ये सिंहासन मा बिराज, हम पर राज चलौ

हम पीढ्यूंक का गुलाम त्यारा ताबेदार छवां

हां हम लूला-लंगड़ा, काणा, पड़मुताड़ छवां

उजर नि करदा, सेवा धर्म निभाणां जणदां

पैलि कखड़ी की राली रज्जा का नौ की

बणी रओ या मरजाद हमारा गौं की।

7. गढ़वाली और हिन्दी मिश्रित भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति- गढ़वाली के महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल की कविताओं में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इससे उनकी हास्य-व्यग्ंय रचनाएं और अधिक पैनी और धारदार बन गई है। डंडरियाल जी की कबि पाड़ नि जौं कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही है-

छिन दीवा का सौं कबि पाड़ नि जौं,

मैं तो कांड्यों के बीच उलझ जाऊंगी।

कबि उकलि उबैं, कबि उंधरि उदैं

मेरि खुट्टि रड़ैगी लगड़ जाऊंगी।

अर्थात - मुझे दीवा-देवी की सौगन्ध है मैं कभी भी पहाड़ में नही जाऊंगी। यदि गई तो मैं वहां उगे कांटों के बीच में फंस जाउंगी। उस पहाड़ में तो कभी ऊपर और कभी नीचे चलना पड़ता है। यदि कहीं मेरे पैर फिसल गये तो मैं गिर जाऊंगी।

8. गढ़वाली लोकगाथाएं अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिनव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ‘‘जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा’’ यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है।

कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। ‘‘दो की जाई और एक की जाई होना’’ अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली ‘‘दो पुत्रों की माता’’ होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ - विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है ‘‘यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होंगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू सुमरियाल की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी

प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते है सा स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिये, लहू के घराट चला दिये। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया। लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली, ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। 'धौला उड्यारी' का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगड़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालुसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे' ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-

कहीं 'मर्दो' 'महाराज' सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा' जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिये एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555 -1765) महीपत शाह (1584 -1610) और फतेहशाह (1671-1765) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती को उन्होंने इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने 'आवजी', ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

19.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक - गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डॉ0 प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं'' गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का

अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है। ''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है''।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति- लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डॉ0 उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है -

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम''।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक - लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गये, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग - लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं - लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदहारणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे है-

6. रमोली - द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता' रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

7. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव - गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

8. संदिग्ध ऐतिहासिकता - गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

9. मौखिक परम्परा - लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं बल्कि श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा

है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डॉ0 गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डॉ0 प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

10. लोकरुचि के विषय - ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा गीतांे से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

11. विद्वता का अभाव - लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिये जाते हैं।

12. सामूहिकता - लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। ''पंडों'' ऐसा ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

निष्कर्ष:- गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन गाथासप्तशति आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है

कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर' और ' एडवर्ड' जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित है। कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड' प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता क साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

10. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गएवाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे है। इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना' से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में

,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी' जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू' के भाई 'लूला गंगोला' के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी उसकी पत्नि और मां 'देवू' के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां - जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे- वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा'। वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां - शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल' की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी'' ?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा - वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास - गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन

के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गये मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

11. डॉ0 मोहनलाल बाबुलकर द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की 43 प्रवृत्तियां निम्नवत् हैं।

- ☐ कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास।
- ☐ प्राणों को अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना।
- ☐ मन्त्र बल से शरीरन्तरण की प्रवृत्ति।
- ☐ शरीर छोड़कर प्राणों को दूसरे जीव में स्थिति।
- ☐ चमत्कारी गुण।
- ☐ पशु-पक्षियों की भाषा।
- ☐ सहानुभूति और सहायता।
- ☐ भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास।
- ☐ धर्म साक्षी।
- ☐ प्रकृति की सहानुभूति
- ☐ जादू द्वारा अनहोनी बाते।
- ☐ स्त्री पात्रों की सहृदता।
- ☐ पुरुषों की अपने आपको नायिकाओं को अपने आप को सौंपने की प्रवृत्ति।
- ☐ पछताने की प्रवृत्ति।
- ☐ समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति।

- व्रत रखने की प्रवृत्ति।
- प्रेम की प्रधानता।
- स्वप्नावस्था में देखी राजकुमारी को पाने की होड़।
- सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं।
- बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना।
- सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना।
- सास-बहू का झगड़ा।
- पुरुष बलि
- भूत-प्रेतों की बहुलता।
- जादू की सहायता से दुश्मन को परास्त करना।
- छोटी सी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना।
- रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोटा या सर्प निकलना।
- स्त्री का पर पुरुष ये प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश।
- स्त्रियों का पति की नासमझी से फायदा उठाना।
- जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- ‘स्याल का विवाह‘ बाधीन से।
- विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति।
- उपदेशात्मक के सङ्ग्थ मनोरंजकता की प्रवृत्ति।
- लोककथाओं में तीन सौ से चार हजार रूपये, सात भाई, एक बहिन, सात समुद्र, सात परियां, तात्पर्य कि रात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति।
- मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है।
- राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति।
- राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झरना और दुख में कोयले झरना।
- आदमी का कड़ावे में पकना, झझर छूने पर जीवित होना।

- ☐ निल्लाह तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना।
- ☐ आत्मिक असंतोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति।
- ☐ पंखों को जलाकर एवं मूछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना।
- ☐ राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति।
- ☐ पशु-पक्षियों का कथानायकों एव ंनायिकाओं का सहायक होना।
- ☐ स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुष द्वारा मां के दूध का वास्ता देकर युद्ध में जाना।

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य प्रवृत्तियां भी गढ़वाली लोक साहित्य में देखने में आती है।

- ☐ गढ़वाली में नारी केन्द्रित लोक साहित्य है।
- ☐ लोक जीवन का आंखों देखा यथार्थ चित्रण मिलता है।
- ☐ धार्मिक आस्था, जादू-टोने में विश्वास प्रबल है।
- ☐ गढ़वाली भाषा की मूल प्रकृति की रक्षा की गई है। गढ़वाली लोककाव्य में लोकतत्व पूर्ण प्राण-प्रतिष्ठा के साथ विराजमान है।
- ☐ पुराने और नए साहित्य में भारी अन्तर आता जा रहा है। नया लोक साहित्य नई प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है। इनमें शिल्प और शैली की दृष्टि से भी अन्तर आ गया है। हिन्दी गद्यात्मक काव्य विद्या और कथा के प्रभाव से गढ़वाली साहित्य समाजोपयोगी, व्यवहारिक साहित्य का अनुगमनकर्ता बनता नजर आ रहा है।
- ☐ वर्तमान लोक साहित्य में आक्रोश की प्रवृत्ति लोक साहित्य में घर करती नजर आती है। समस्याओं पर केन्द्रित, लोक की दृष्टि को पहचान कर नए रचनाकार नव लेखन कर रहे हैं। इनके लेखन में जनता की भाषा है। जनता के विचार है और जनाक्रोश हैं।
- ☐ परिवर्तन की इच्छा, वर्तमान लोक साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।
- ☐ वर्तमान लोक साहित्य में यथार्थ का नग्न चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है।
- ☐ कविता (लोक काव्य) में अलंकृत पद् विन्यास, नए छन्द, गीति युक्त लयात्मक पदबन्ध विशेषकर (गजल, गीत) आदि में रुचि बढ़ती जा रही है।

निष्कर्षतः गढ़वाली कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में हिन्दी साहित्य की नई प्रवृत्तियों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है। प्रारम्भिक गढ़वाली साहित्य में संस्कृत शब्दों की

बहुलता थी। अब धीरे-धीरे हिन्दी शब्दों का प्रचलन गढ़वाली साहित्य में बढ़ता जा रहा है। गढ़वाली भाषा ने इन शब्दों को अपने अनुरुप ढालने और युगान रुप उसे भाषित विस्तार देने के प्रयास किए है। संस्कृत छन्दों के अलावा मौलिक छन्द विधान कवियों के द्वारा अपनाया जा रहा है। कवि भोला दत्त देवरानी तथा कन्हैयालाल डंडरियाल में बिम्ब ग्रहण की प्रतिभा अधिक है। काव्य रुपों की दृष्टि से गढ़वाली में आरम्भ से ही काव्य रचना की प्रवृत्ति अधिक है। अब तक केवल दो काव्यों भूम्याल तथा नागरजा को महाकाव्यों के रुप में स्वीकार किया गया है। गढ़वाली में कुछ कवियों में लम्बी मुक्तक कविताएं लिखी है। जिनका अब प्रचलन बन्द हो चुका है। इस सदी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित होने वाले प्रमुख मुक्तक काव्य इस प्रकार है- सिंह सतसई (भजन सिंह 'सिंह'), रमछोल (चन्द्र सिंह राही), कपाली की छमोट (महावीर प्रसाद गैरोला), ढांगा से साक्षात्कार (नेत्रसिंह असवाल), मेरो ब्वाडा (पूरण पन्त पथिक), कुयेड़ी (कन्हैयालाल डंडरियाल), खुचकण्डी एवं गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर (नरेन्द्र सिंह नेगी), दिख्यां दिन तप्यां घाम एवं हैंसदा फूल खिलदा पात (ललित केशवान), कांठयों मा औण से पैलि (देवेन्द्र प्रसाद जोशी), दैसत (अबोधबन्धु बहुगुणा), कमेड़ा आखर (बीना बेंजवाल), तिमला फूल एवं पशीनिक खुशबू (चिन्मय सायर), ये गुठ्यार (रघुबीर सिंह अयाल), बेदि मा का बचन (महेश तिवाड़ी), रामदेई (नित्यानन्द मैठानी), शैलोदस तथा कणखिला (अबोध बन्धु बहुगुणा), इलमतु दादा (जयानन्द खुगशाल), रैबार (प्रेमलाल शास्त्री) आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली मुक्तक काव्य है। जो कि नवीनतम प्रवृत्तियों को आत्मसात किए हुए हैं।

16. 4 सारांश

गढ़वाली लोक साहित्य के काव्य तत्वों में रस की प्रधानता हैं। उसके काव्य, नाटक, उपन्यास, कथाएं, और गाथाएं और अन्य सभी विधाएं श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत तथा हास्य रस से ओत-प्रोत है। वर्णनों में मानवीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। वीर भड़ों और सुन्दरियों के सौन्दर्य वर्णन में अलंकारों की चकाचौंध दिखाई देती है। जादू-टोने तथा मिथ का घाल-मेल यहां के लोक साहित्य में सर्वत्र मिलता है। शैली और शिल्प की दृष्टि ये प्राचीन गढ़वाली लोक साहित्य में एकरुपता दिखाई देती है। इनमें जनता की भाषा, विश्वास और मान्यताओं का अनुरक्षण का भाव समाहित है। सम्प्रति हिन्दी, संस्कृत और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में रचे आधुनिक लोक साहित्य का प्रभाव भी गढ़वाली लोक साहित्य पर पड़ रहा है।

16. 5 शब्दावली

सेरा - सिंचित खेत

फूलदेई - गढ़वाल-कुमांउ का प्रसिद्ध त्यौहार है। फूल संक्राति के अवसर पर कुंवारी कन्याएं सुबह-सुबह उठकर गृहद्वारों पर फूल चढ़ाती हुई कल्याण कामना के गीत गाती है,

उच्याणा	-	प्रायः देवता से कोप से बचने के लिए मुर्गा, मेढ़ा या बकरा इस आश्वासन के साथ बलि के लिए रख दिया जाता था कि देवता की पूजा बाद में कर दी जायेगी जिसमें उन्हें चढ़ा दिया जायेगा। प्रायः उसे नियत करते समय उसके उपर संकल्प के साथ अक्षत घुमा दिये जाते थे।
छूड़े	-	एक प्रकार के गीत है जो रबाई क्षेत्र में प्रचलित है। इनमें गहन चिन्तन और काव्य तत्वों के दर्शन होते है।
बाजूबन्द	-	एक प्रकार का तात्कालिक गीत है। जिसमें स्त्री-पुरूष का प्रेम संवाद प्रमुख होता है। बाजूबन्द के कई रूप सम्भव है। बहुत कुछ तो दो व्यक्तियों के सम्बन्धों, स्थितियों, सहमति-असहमति, निन्दा-स्तुति आदि कई बातों पर बाजूबन्द गीतों के संवाद निर्भर करते है।,
पाखा	-	पर्वत का एक हिस्सा।
भूम्याल	-	भूमि का देवता।

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य - डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना - मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य - डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा - डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

16.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक गाथाओं की अन्य प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
2. लोकगाथा गीतों की कोई दो प्रमुख प्रवृत्तियां बताओ ।
3. गढ़वाली लोकगीत की प्रमुख प्रवृत्तियां क्या है ?

इकाई 17 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

17.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्त्व और सौन्दर्यानुभूति

17.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

17.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य की विधाएं

17.4 सारांश

17.5 अभ्यास प्रश्न

17.6 शब्दावली

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य भारत के अन्य प्रादेशिक/आंचलिक लोक साहित्यों की अपेक्षा समृद्ध और विकासशील स्वभाव वाला साहित्य है। इसका कारण इसकी प्राचीन (पौराणिक विरासत) और हिमालयी वातावरण में समस्त भारत के लोगों की युग-युग से आस्था तथा यहां बसने की आत्मीय (अभिलाषा) भी प्रमुख है। यही कारण है यहां के लोक साहित्य में धर्म सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव और करुणा तथा मैत्री के साथ, प्रेम और युद्धवीरता तथा त्याग के अनेक उदहारण मिलते है। यहां के लोक साहित्य में सभी धर्मो के पति प्रेम और सद्भाव के कारण, उसके अन्दर कबीर, दादू, नानक, मोहम्मद, गोरखनाथ, राम-कृष्ण, मीरा और रैदास को समान भाव से साहित्य में स्थान मिला है। प्राचीन लोक साहित्य में 'कृष्ण' और पाण्डव प्रभूत मात्रा में वर्णित है। मन्दा भगवती, राजराजेश्वरी होने के कारण यहां के लोक साहित्य की आधेय और आधार है, वह देवी के रुप में लोक साहित्य की प्रत्येक विधा में स्थान पाए है।

काव्य, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य और लोकगीतों में हिमालयी प्रकृति, देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और नर तथा राक्षस भी आदर के साथ साहित्य में स्थान पाए दिखते है। यहां के पशु-पक्षी और वृक्ष लताएं भी मानव के सहचर है। वे यहां के लोक के अविच्छित अंग है। उन्हें यहां के लोकमानस से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता है।

इसके मौखिक साहित्य में ढोल सागर अनेक अश्रुत जागर गाथाएं, पवाड़े, विरुद आज भी अपने संग्रहकर्ताओं की बाट जोह रहे हैं। इन कलाओं को बहुत कुछ मात्रा में कुछ पुरखों ने अपनी पोथियों में लिखकर सुरक्षित किया तो कुछ को परम्परा से आवजी और पुरोहितों ने अपनी वाणी से रटकर सुरक्षित कर रखा है।

17.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरुप एवं समस्याएं', नामक इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप गढ़वाली लोक साहित्य से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे-

1. गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप कौन सा है ?
2. इसके अन्दर लोक साहित्य की किन-किन विधाओं में कार्य हो रहा है ?
3. परम्परागत लेखन और वर्तमानकालीन नए लेखन में किन-किन बातों में मूलभूत अन्तर आ रहा है ?
4. गढ़वाली लोक साहित्य के आगे वर्तमान में क्या-क्या चुनौतियां आड़े आ रही है ?

5. गढ़वाली में रचित प्रमुख महाकाव्य-खण्डकाव्य, गीति और मुक्तक काव्य कौन-कौन से है ?

17.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

गढ़वाली लोक साहित्य की खोज के लिए अंग्रेज सर्वेक्षकों विलयम कुक व गिर्यसन आदि के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मध्य पहाड़ी बागली पर एटकिन्सन के द्वारा किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यहां के साहित्य को लिपिबद्ध करने और उसकी समग्र जानकारी एकत्र करके पुनः उसकी समीक्षा टीका करके फिर शोधपूर्ण विवेचना के साथ प्रकाशित करने वाले विद्वानों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। इन विद्वानों में तारादत्त गैरोला, पादरी मिस्टर ओकले, आत्माराम गैरोला, यमुनादत्त वैष्णव, गोविन्द प्रसाद घिल्ड़ियाल, शिवनारायण बिष्ट, भजन सिंह 'सिंह', डॉ0 गोविन्द चातक, डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल और महावीर प्रसाद लखेड़ा अग्रगण्य है। इन विद्वानों के प्रयास से इनकी पुस्तकों से गढ़वाली लोक साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की जानकारी मिलती है।

गढ़वाली लोक साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गये है। सर्वप्रथम डॉ0 नन्द किशोर ढौडियाल ने जागर गीतों पर शोध प्रस्तुत किये तदनन्तर डॉ0 प्रयाग जोशी ने पहली बार कुमाऊं और गढ़वाल की लोक गाथाएं संशिल्ष्ट विवेचन प्रस्तुतत किया। उन्होंने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डॉ0 उमाशंकर 'सतीश' ने जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुतत किया, मोहनलाल बाबुलकर ने पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली जौनपुरी (जौनसारी) के लोक साहित्य एवं कला पर पहली विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ पंथ और गढ़वाल तथा बुद्धिराम बडोनी ने गढ़वाल के लोक काव्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी श्रृंखला में 'गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' विषय पर श्रीमती आनन्दी जोशी ने तथा गढ़वाल के साहित्य-संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव तथा चन्द्रशेखर बडोला ने गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय कार्य करके गढ़वाली लोक काव्य साहित्य को जीवन्तता प्रदान की है।

गढ़वाली लोकभाषा में आज विविध विद्याओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाल पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबन्ध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। इनका पुराना साहित्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है। पद्य विद्या में 1822 से 1900 तक संस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। गीत और कविता के पुराने लेखकों में तोताकृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती प्रसाद निर्मोही, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, मनोहर उनियाल 'श्रीमन', सदानन्द जखमोला 'सन्तत', विशालमणि शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कहानी और निबन्ध लेखकों में डॉ0 गोविन्द चातक, डॉ0 महावीर प्रसाद गैरोला, मोहनलाल नेगी, प्रेमलाल भट्ट, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल प्रसिद्ध है। नाटक विद्या के क्षेत्र में पुरुषोत्तम डोभाल, सुदामा प्रसाद 'प्रेमी' ललितमोहन थपल्याल, स्वरुप ढौड़ियाल, कन्हैयालाल डंडरियाल, अबोध बन्धु

बहुगुणा, नित्यानन्द मैठानी और गोविन्द चातक उल्लेखनीय है। गढ़वाली लोक साहित्य के अन्य हस्ताक्षरों में जीत सिंह नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, गिरिधारी प्रसाद 'कंकाल', ललित केशव, उमाशंकर 'सतीश', शेर सिंह 'गढ़देशी' और जीवानन्द श्रीपाल का नाम आदर के साथ लिया जाता है। गढ़वाली गद्य साहित्य में व्यंग्य लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर नरेन्द्र कठैत साहित्य पथ पर एक मील के पत्थर सिद्ध हो रहे है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक परिदृश्य बदला, आधी सदी से भी अधिक के इस समयान्तराल में गढ़वाली काव्य ने बहुआयामी विस्तार पाया और गढ़वाली साहित्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस काल खण्ड में सैकड़ों काव्य कृतियां प्रकाश में आई, कला की दृष्टि से नौबत 1953 चक्रधर बहुगुणाः तिड़का (1956), रणभंजण (1963), पार्वती (1966), धोल (1977), भूम्याल (1977), एवं दैसत (1996) सभी अबोध बन्धु बहुगुणा चित्र काव्य एवं रोन्देडु (1995), अश्रुमाला (1958) एवं दुदुभिः डिमडिम (1965) श्रीधर जमलोकी नवांण (1956) एवं फुर घिडुडी (1957) गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'। ढांगा से साक्षात्कार (1988), नेत्र सिंह असवाल, पसीन की खुशबू (1989) एवं तिमला फूल (1977) चिन्मय सायर। कॉढ़्यो मा औण से पैलि (1994), देवेन्द्र प्रसाद जोशीः खुचकण्डी (1991) एवं 'गाष्यूं की गंगा स्याण्यू का समोदर' (1999) नरेन्द्र सिंह नेगी। कमेड़ा आखर (1996) वीना बेंजवाल गढ़वाली काव्य की स्वातन्त्रयोत्तर उल्लेखनीय काव्य कृतियां है। इस काल खण्ड में विभिन्न कवियों के संयुक्त कविता संकलन भी खूब छपे है जिनमें 'फ्यूंली' (1953), मौल्यार (1963), छम घंुघरु बाजला (1964), खुंदेड़ गीत सागर (1964) रॅत रैबार (1963), बुरांस (1965) 'छैं' (1980) और गंगा जमुना का मैत बटि (1978) प्रमुख है। इनके अतिरिक्त 'बाहुली', हिडबांस, मैती, बुग्याल, बुरांस, चिट्ठी पत्री और धादा (1978) प्रमुख गढ़वाली पत्र-पत्रिकाएं है। जिन्होंने गढ़वाली काव्य साहित्य को दिशा प्रदान करने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिदृश्य बदल जाने पर कविता की भाव-भूमि भी बदल गई, तिड़का, फ्यूंली की तथा रौन्देडु सामाजिक बदलाव के काव्य है। डॉ0 कोटनाला का मत है कि इसके आगे अधिक गहरी पैठ बनाकर समाजवाद काव्य चेतना के जन पक्षीय संघर्ष को कविता में परिणत करने का प्रयास किया गया। भूम्याल लोकतान्त्रिक, सामाजिक मूल्यों का काव्य है। इसी समाजवादी दृष्टिकोण से रचित, अज्वाल, धैं, एक ढांगा की आत्मकथा, ढांगा से साक्षात्कार, कमेडा आखर, कॉठ्यो मा ओण से पौलि, तिमला फूल आदि जनसंघर्षी रचनाएं हैं।

पर्यावरणीय चिन्ताओं ने कवियों को सदैव उद्वेलित किया है। प्रकृति के साक्षात्कार से युक्त स्वतन्त्रयोत्तर रचनाओं में सदानन्द जखमोला का रैबार, गढ़गुणत्याली उल्लेखनीय है। पहली पीढ़ी के कवियों के सभी गढ़वाली काव्य रसानुभूति के काव्य है। इसमें श्रृंगार की कोमल भावनाएं और गढ़वाली भाषा का सौष्ठव चरम पर पहुंचा है। दूसरी पीढ़ी के कवियों में गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' तथा जीत सिंह नेगी प्रेम के कवि रहे है। जब नरेन्द्र सिंह नेगी को प्रेम गीतों के अतिरिक्त प्रकृति और आन्दोलन के गीत लिखने में अधिक सफलता मिली है। उनके काव्यों में साहित्यिक का पुट भी देखने में आता है। उनकी कृति 'खुचकण्डी' इस दृष्टि से पढ़नीय है। नरेन्द्र

सिंह नेगी के साथ ही छन्द विधान को दुरुस्त करने में चक्रधर बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने नए छन्दों का भी सृजन किया है। शिल्प की दृष्टि से भी नए-नए प्रयोग कन्हैयालाल डंडरियाल की अँजवाल और अबोध बन्धु बहुगुणा के काव्यों में सर्वत्र दिखते है। अँजवाल ने तो इतना नवीन शिल्प अपनाया कि वह वर्तमान के कई कवियों का वर्ण्य और अभिव्यक्ति की शैली ही बन बैठा है। डॉ जगदम्बा प्रसाद कोटनाला ने दो टूक शब्दों में हिन्दी काव्य शिल्प के प्रधान को निम्नवत् अभिव्यक्त किया है-

'लोकधर्मी काव्य कला को छोड़कर हिन्दी काव्य शिल्प ने गढ़वाली काव्य शिल्प को अत्यधिक प्रभावित किया है'। गढ़वाली छन्द मुक्त काव्य शिल्प ने जैसे हिन्दी की नई कविता के शिल्प को अपना लिया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर काव्य साहित्य समाजवादी विचार धारा और प्रयोगधर्मी काव्य कला से अनुप्राणित हुआ है।

महाकाव्य - अब तक गढ़वाली में दो ही महाकाव्य प्रकाश में आ सके हैं। अबोध बन्धु बहुगुणा द्वारा रचित 'भूम्याल' जिसे 'हिमालय कला संगम' ने सन् 1977 में प्रकाशित किया तथा दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा रचित 'नागरजा' चार भागों में प्रकाशित हैं। नागरजा भाग 1 व 2 को गढ़वाली साहित्य परिषद्-कानपुर ने सन् 1993 ई0 में तथा 2000 ई0 में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया तथा भाग 3 व 4 को कवि के पुत्र हरिकृष्ण डंडरियाल ने ब्रज मोहन सिंह राणा के सहयोग से सन् 2009 में प्रकाशित कराया। इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त तीसरा महाकाव्य अभी देखने में नहीं आया है। गढ़वाल में विष्णु को नागरजा तथा नरसिंह दोनों रूपों में सर्वत्र पूजा जाता है। जबकि शिव को निरंकार के रुप में पूजते है। गढ़वाल की टिहरी जनपद के सेम-मुखेम में नागरजा का मन्दिर है तथा सभी गढ़वाली उसकी तीर्थ यात्रा करते है। किंवदन्ती है कि सेम-मुखेम का नागरजा का मन्दिर गंगू रमोला ने बनवाया था। नागरजा प्रबन्धकाव्य गणेश् और ब्रह्मा की वन्दना से आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड, रज, पुरुष, काल, महत्त्व, अहंकार, आकाश, शब्द, वायु, तेज, प्रकाश, गन्ध, भूमण्डल, पंचभूत देवता, ब्रह्मा-विष्णु, आदि के वर्णन के साथ प्रथम उपखण्ड समाप्त होता है। उपखण्ड दो तथा तीन में शिव-सती तथा शिव-पार्वती प्रसंगों में ही कवि का वास्तविक कवित्व मुखर हुआ है। कविवर डंडरियाल ने शिव और सती के कथानक को गढ़वाली लोक जीवन के अनुरुप वर्णित किया है। इस काव्य में शिव नन्दी बैल को चुगाते है तो सती गाय के लिए घास लाती है। यक्ष, किन्नर और गुहय्क गढ़वाली परिधान पहनकर दक्ष यज्ञ में जाते है। सती के दक्ष यज्ञ में भस्म होने पर दक्ष को शिवद्रोह और अहंकार का निर्मम फल मिलता है। उनके क्रोध को देखकर सब रुद्र की वन्दना करते है कि-

हे दयामय दीनबन्धु, पाप का भांडा छवां।

जीव हम बन्धन मंगा, प्रभु कर्म का खांडम छवां।।

संसार थैं सन्मार्ग दीणौ तुम ये लीला करदवा।

निर्विकारी शंभु तुम संताप जगती हरदवा।।

दैणो ह्वेजा ईश्वर, हे भूमि भूम्याल

गौबन्द मुख मा तृण ल्हे, भेंट धरी अग्याल।।

अर्थात- हे दयामय दीनबन्धु ईश्वर! हम पाप के भांडे है। हम जीव कर्म के बन्धनों में फंसे है। संसार को सन्मार्ग देने के लिए तुम यह लीला रचते हो। हे निर्विकारी शम्भु! तुम जगत के सन्तापहारी हो। हे भूमि के भूम्याल अब प्रसन्न हो जाओ। हम गोबन्द (अति सरल, निष्कपट) होकर तृण मुख में लेकर तेरी अग्याल (पूजान्न) भेंट लेके खडे है।

इस महाकाव्य में कवि भगवती जगदम्बा की आराधना निम्नवत् करता है-

तू ब्वे छैं हम लड़िक छवां, अंदालि लगी ग्यों तेरी।

खुचिलि पकड़ि ल्हे खुद लगीं, मं◌ुडलि मलासी मेरी।।

अन्तर प्रेम पछयाणि की प्रकट ह्वाय भवानि।

आदिशक्ति मां भगवती, सेवा हमारी मानि।।

अर्थात - तू मां है हम तेरे पुत्र हैं। तू हमें अपनी गोद में लेकर हमारे सिर पर अपना हाथ फेरकर अपना आर्शीवाद दें। शिव लीला के वर्णन में कवि ने श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीभत्स, आदि रसों का समुचित प्रयोग किया है।

नागरजा भाग-2 में नागरजा कृष्ण की लीला का भक्तिमय वर्णन है। इस सर्ग में कवि ने कंगालियां भाट (एक पात्र) की अवतारणा की है। जो कुंठाओं, कुवृत्तियों, व्यभिचार और स्वार्थ सिद्धि के लिए छद्मवेशी धार्मिक कर समाज को भ्रष्ट कर देता है। इस सर्ग में भगवान कृष्ण कंगाली भाट को नटखट सुंदरी बनकर ज्ञान, कला और सौन्दर्य के बल पर मोहित कर उसे जगत कल्याण का सन्देश देते है। कवि ने एक कल्पित पात्र कंठी दादा के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, तप-त्याग, सगुण-निर्गुण आदि दार्शनिक शंकाओं का विवेकपूर्ण ढंग से कंठी दादा के माध्यम से समाधान कराया है।

निष्कर्षतः इस काव्य की शैली अलंकृत और सरस है। इसमें ठेठ गढ़वाली शब्दों का ठाठ देखने में आता है। महाकाव्य के सभी लक्षण नागरजा में प्राप्त होते हैं। नागरजा में गीतिका, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया, भुजंग प्रयात, उपजाति, इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, ताटंक, दोहा, चौपाई आदि छन्दों को प्रयुक्त किया गया है।

‘भूम्याल’ खण्डकाव्य - भूम्याल का प्रकाशन सन् 1977 में हुआ। इसमें भूमि, उलार, दन्दोल, मिलन, कर्म, विरह, औळ, ममता, विहार, परिणय, दुन्द, रोपणी, विलाप, थर्प, जलेथा और उपसंहार कुल 16 सर्ग है। काव्य का नायक लोकप्रसिद्ध उद्दात्त वीर भड़ जीतू बगड़वाल है तथा

नायिका भरणा है। काव्य का मुख्य संदेश सामजवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रतिस्थापना है। इसमें अनेक मौलिक छन्दों का सृजन किया गया है।

17.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्व और सौन्दर्यानुभूति

गढ़वाली काव्य, रसतत्व की प्रधानता के कारण अलग पहचाने जाते है। श्रृंगार, वीर, हास्य, करुण और अद्भुत इन रसों की गढ़वाली कविता में सर्वत्र स्थिति देखी जा सकती है। वीरगाथाएं यदि श्रृंगार, करुणा और वीर रस से भरी है तो लोककथाएं, अद्भुत रस और अन्य रसों की अनुगामिनी है। लोकगीतों में सर्वत्र श्रृंगार और प्रकृति चित्रण, करुण रस तथा सामाजिक जीवन के चित्र (बिम्ब) मिलते है। अलंकारों का प्रयोग कविवर श्रीयाल की अन्याक्षरी कविता में अधिक दिखता है। डंडरियाल जी का 'नागराजा' भी अलंकृत काव्य है। अन्य कवियों में नरेन्द्र सिंह नेगी, को छोडकर प्रायः काव्यालंकारों के प्रति मोह नहीं दिखाई देता है।

उन्होंने रस को ही प्रधानता दी है। भजन सिंह 'सिंह' और उनके युग के कवि सामाजिक समस्याओं के चित्रण में अधिक सफल हुए है। स्वातन्त्रयोत्तर प्रगतिवादी चेतना भी इन काव्यों की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही है। देश भक्ति, वीरता, त्याग और सुधार की भावना, सिंह युग के कवियों की काव्यागत विशेषता हैं। उदाहरणार्थ -

फ्रान्स की भूमि जो खून से लाल च,

उख लिख्यों खून से नाम गढ़वाल च,

रैंद चिन्ता बड़ी तै बड़ा नाम की,

काम को फिक्र रैंद न ईनाम की।

भाषिक प्रयोग में नवीनता - हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के कवियों ने बेहिचक किया है। उनमें गढ़वाली शब्दों के प्रयोग की अपनी बानगी तो है ही जैसे- चोली, छैला, डूडो, फाला, धौली, बसगाल, फ्योंली, जिकुड़ी, गैल्या, दुवारो, ज्यू का कालू आदि। शब्दराशि का बाहुल्य गढ़वाली कविता की अपनी अभिव्यक्ति को अपना सा बनाने में सहायक हुई है। अपने शब्दों (ब्वे की बोली) की अपनी मिठास अलग ही होती है।

प्रकृति चित्रण - गढ़वाली कविता एवं उसका काव्य साहित्य प्रकृति चित्रण के बिना अधूरा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण ही गढ़वाली काव्य साहित्य की एक विशिष्ट पहचान है। हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण, छायावादी प्रभाव की देन माना जात है। भले ही उससे पहले भी प्रकृति चित्रण को कविता के प्रमुख अंग के रुप में स्वीकारा जा चुका था। एक गढ़वाली कविता में श्रृंगार से भरे नारी के सौन्दर्य को दर्शाता काव्य को निम्न देखिए -

''अक्षत उंदकार चुलखियों मा,

रतव्योणी मा प्रेम की भारि भूखी,

जख रोज ही स्वप्न शरीर धारी,

क्वारी तरुणि स्याणी परी दिखेंदन।

काव्यालंकार- रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा ‘अबोध बन्धु‘ की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

1. नए प्रतीकों के प्रयोग- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौंसिया उमर' गीत में बसगल्या न्यार, पोड मा को पाणी, धार मा को बथौं, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौडू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा - परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना-परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है। प्रतीक की दृष्टि से कवि गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' एवं अबोध बन्धु बहुगुणा प्रमुख कवि है। अन्य कवियों में गोविन्द चातक व श्रीधर जमलोकी उल्लेखनीय है। कवि कंकाल के गीत संग्रह नवाण की तुम द्यबता और अमर स्वर आदि कविताएं प्रतीकात्मक है। इस काव्य में बांसुरी जीवन की आती-जाती सांसांे का प्रतीक

है। भोर का तारा रतव्योण्यां जन्म का, फूलो का रस, रंग व गन्ध जीवन के विभिन्न सुख-उल्लासों की प्रतीक, जेठ की दुपहरी, जवानी अथवा जीवन की क्रियाशीलता का प्रतीक एवं खलिहान में बैलों के फेरे जन्म-मृत्यु के प्रतीक के रुप में प्रयुक्त मिलते है। उदाहरण प्रस्तुत है-

बजणी छ बांसुळी, धार मा देखा रतव्योण्यां ऐगे

भांति-भांति का रस, रंग लैगे, फूलों मा गन्ध रसधार फलू मा भरणी छ बांसुळी।।

जीवन मिट जालो स्वर यख राला, दायीं जसि फेरा रीटि की आला

बसग्याळि गंगा बणि की आख्यूं मा- तरणी छ बांसुळी

गिरधारी प्रसाद कंकाल ने घिडंवा (नर गौरैया) तथा घिडुड़ी (मादा गौरैया) को नर-नारी के प्रतीक के रुप में चुनकर गरीब पर्वतीय दम्पत्ति की कथा-व्यथा को मनोरंजक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है। कवि चक्रधर बहुगुणा ने भी प्रतीकों में अपनी बात कही है। नौबत संग्रह की दीवा कविता में दिया-चेतना का, अन्धकार चेतना का, ज्योति ज्ञान का, तेल विवेक का, घानी संघर्ष का, और बाती त्याग का प्रतीक है। सदानन्द जखमोला के रैबार काव्य में बिम्बों की भरमार है। जैसे-

भींचूळों सी तिगुड़ी ढसको, प्यार पींदी धमेल, भैलो खिल्दा नितम्बों मा, चुंटि फूंदा भग्यान

मर्छाणी को अतुल गति से छांछ छुळदों किलोल, पुन्यो से ही दरश परश् पर्व काल सुकाळों।

मंगतू काव्य में कवि डंडरियाल ने मंगतू की गरीब पारिवारिक स्थिति के अनेक बिम्ब उतारे है।

2. छन्द विधान - गढ़वाली कवियों ने परम्परागत और शास्त्रीय छन्दों में रचना की है। मंगतू में बीस मात्रा के छन्द को अपनाया गया है।- किलै मेरि ईजत गिरीं इतग रैन्दी,

म्यरा बाब जी जो हमुम छैन्दि हून्दी।।

म्यरा बाब जी तुम यखा आइ जावा।

प्वड्यूं गौरु का ल्याख मी देखि जावा।।

फ्यूंली की कविताओं में नये छन्दों का वैविध्य विद्यमान है- फुर-घिंडुडी आजा, पदानु का छाजा, चाड नी जो छवी लगउं, केकु तेरा नेडु अउं, इन्नि समझि तन्नि छउं, कुछ नी तेरु काजा, पदानु का छाजा।

उमाशंकर 'सतीश' के गीतों का संग्रह खुदेड़ सन् 1956 गीतात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें एक कविता छन्द मुक्त शैली में है- हे रां/दैव/कनी होली भग्यानी/मैतासु, मेरी जिकुड़ी का/टूक होंदा/नी ओदू सरील, जगा पर/मेरी भुली/दीदी, जिया/डांडा का काफल, कन होला/ खायेणा/मेरि ब्वे होंदी/मैं मैतु बुलौंदि/ हे रां! दैव।

निष्कर्षतः गढ़वाली कवियों में पारम्परिक छन्दो के साथ ही मनमोहक मौलिक छन्दों का भी निर्माण किया। उनकी दृष्टि मुक्त छन्द वाली कविता की ओर भी आकृष्ट हुई है। गढ़वाली लोकगीतों में समय-समय पररचे जाने वाले देश, काल और परिस्थिति की प्रेरणा से उद्भूत घटना मूलक और इतिवृत्तात्मक गीतों की संख्या बहुत है। सत्य यह है कि लोक मानस अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति अधिक आकर्षित होता है। फलतः जो भी वैसी घटना घटी, झट से उस पर गीत बन जाया करते है। कुछ घटनायें ऐसी होती है जिनमें इतिहास का निर्माण होता है किन्तु कभी बहुत सामान्य घटनाएं भी गीतों में बंध जाती है। लोक की दृष्टि में उनकर भी उतना ही महत्त्व होता है।

प्राचीन काल के घटनामूलक गीत अब शेष नही रह पाए है। कुछ मुग़ल और गोरखा आक्रमण के गीत बचे है। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए है उनकी अभिव्यक्ति गीतों मे कई बार हुई है। गांधी, नेहरु, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सुमन आदि के गीत एक समय बहुत लोकप्रिय रहे है। पंचायती राज आ जाने के बाद लोक में जो राष्ट्रीय चेतना की लहर आई वह भी अनेक गीतों में बोलती है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर के गीतों में गांधी, नेहरु, सुभाष की प्रशंसा तथा स्वतन्त्रता के बाद की बदलती स्थितियों, जमाने के बदलते रंगों, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अकाल जैसी दैवी आपदाओं, स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं, अधिकारियों के हथकंडों आदि कई घटनाओं पर गढ़वाल में समय-समय पर लोक साहित्य की रचना होती रही है। इस कालखण्ड में बालगीत भी खूब रचे गये। बालगीत अब मिटते जा रहे है। पुरानी वीरगाथाएं (पवाड़े) लुप्तप्राय हो रहे है। वर्तमान समस्याओं का चित्रण करने पाले गढ़वाली के नए लेखक पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के लेखन में रुचि नही ले रहे हैं। इसका कारण उनका अपनी जड़ों से हट जाना ही माना जा सकता है। इसका प्रभाव गढ़वाली भाषा पर भी पड़ा है। उसके मूल शब्द खोते जा रहे है। गढ़वाली लोक साहित्य की परम्परा में भी भारी बदलाव आने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और रहन-सहन ने पुराने मिथकों को ध्वस्त कर दिया है। अतः आधुनिक पाठक और रचनाकार/लेखक प्राचीन परम्पराओं (मिथों) पर अविश्वास जतलाने लगे है। वें कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को महत्त्व दे रहे है। यही कारण है गढ़वाली का कल्पना से अतिरंजित लोक साहित्य धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

17.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डॉ0 गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के

लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहे है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नही गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नही पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नही लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नही दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नही है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नही बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

17.3.3 वर्तमान लोक साहित्य की विधाएं

वर्तमान समय में गढ़वाली लोक साहित्य में कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना, रेडियो रुपक, नाटक/एकांकी, हास्य-व्यंग्य, उपन्यास और रिपोर्ताज विधाएं विकसित हो रही है। नए लेखकों और कवियों ने अपना शिल्प और काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बिल्कुल ताजा और तीखे स्वाद वाला अर्थात अभिधात्मक किन्तु व्यंग्य से भरपूर (बिहारी के दोहों की तरह) लघु आकार प्रकार किन्तु तीखी मार वाला शिल्प, और वर्णन कौशल को अंगीकार कर लिया है। पुरानी परम्परा का नीतिपरक साहित्य अब बीते युग की बात हो चुका है। वर्तमान काव्य विद्या के अन्तर्गत पद्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर नए लेखकों का अधिक रुझान है।

17.4 सारांश

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डॉ0 गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहे है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नही गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नही पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लंेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नही लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नही दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नही है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नही बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

17.5 शब्दावली

मोछंग	-	छोटा वाद्य यन्त्र
माल	-	बहादुर/मल्ल
भोट	-	तिब्बत

नागरजा	-	कृष्ण
ढ़साक	-	हल्का स्पर्श
ज्यूंदाल	-	मन्त्र द्वारा फेंके गये चावल
जागरी	-	जागर गीतों के विशेषज्ञ (गायक/वादक)
अंज्वाल	-	अंजुलि
खर्क	-	भैसों के रहने का स्थान
खुंदेड़	-	एक प्रकार के गीत
कळकळी	-	उत्कंठा से उत्पन्न गले पर एक प्रकार की अद्भुत अनुभूति
औजी	-	ढोल, दमामा बजाने वाले हरिजन
गदरा	-	छोटी नदी
रुणक-झुणक	-	चुपके-चुपके मन्द ध्वनि करते हुए
मुन्यासों	-	पगड़ी
कुखड़ी	-	मुर्गी
दगड्या	-	दोस्त
बोकट्या	-	बकरा

17.6 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर

1. निम्न प्रबन्ध किसके द्वारा लिखे गये है ?

क गढ़वाल के साहित्य संस्कृति पर स्कन्द पुराण का प्रभाव

ख नागरजा महाकाव्य

ग नाथपंथ और गढ़वाल

घ जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन

2. आधुनिक गढ़वाली कथा के किन्ही तीन लेखकों के नाम लिखों ?

3. गढ़वाली नाटक विधा पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किस विद्वान ने किया है ?

4. प्रथम चरण के गढ़वाली काव्यों के नाम लिखिए।

5. निम्नलिखित आधुनिक कविता संग्रहों के लेखकों के नाम बताइये।?

क गाण्यू की गंगा, स्याण्यू का समोदर,

ख मेरी अग्याल

ग हैंसदा फूल खिलदा पात

घ कुयेड़ी

6. निम्न रचनाएं किस कवि की है ?

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू,

7. गढ़वाली प्रबन्धकाव्य पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए।

8. आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक का नाम बताओ।

9. नरेन्द्र सिंह नेगी के बसन्त पर लिखे हुए गढ़वाली गीत के बोल लिखों।

उत्तर

उत्तर 1

क चन्द्रशेखर बडोला

ख कन्हैयालाल डंडरियाल

ग डॉ0 विष्णुदत्त कुकरेती

घ डॉ0 उमाशंकर 'सतीश'

उत्तर 2

1. नरेन्द्र कठैत
2. हिमवन्तवासी
3. अबोध बन्धु बहुगुणा

उत्तर 3 डॉ0 गोविन्द चातक

उत्तर 4 प्रथम चरण के गढ़वाली काव्य निम्नलिखित है-

1. बाटा गोडाई
2. जय-विजय
3. पंछी पंचक
4. फुलकण्डी
5. मोछंग
6. प्रहलाद नाटक

उत्तर 5

क नरेन्द्र सिंह नेगी

ख ऋषिवल्लभ कण्डवाल

ग ललित केशवान

घ कन्हैयालाल डंडरियाल

उत्तर 6

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू, उक्त तीनों रचनाएं कन्हैयालाल डंडरियाल जी की है।

उत्तर 7 गढ़वाली प्रबन्ध काव्य

प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों विधाएं आ जाती है। गढ़वाली में अभी तक दो ही महाकाव्य प्राप्त हुए है। पहला महाकाव्य अबोध बन्धु रचित भूम्याल और दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल रचित नागरजा है। गढ़वाली में अनेक गीत एवं संवादात्मक खण्डकाव्य भी रचे गय है। जिनमें जय-विजय, प्रहलाद नाटक दोनों भवानीदत्त थपलियाल रचित गीतात्मक प्रबन्ध नाट्य काव्य है। इनकी शैली नाटकीय होने से लोग इन्हें नाटक ही मानते है। बाटा गोडाई बलइेव प्रसाद दीन का गीत संवादात्मक खण्डकाव्य है। जिसे रामी नाम से जाना जाता है। भजन सिंह 'सिंह' की वीर देवकी तथा तारादत्त गैरोला कृत सदेई दोनों खण्डकाव्य है। कन्हैया लाल डंडरियाल का मंगतू तथा सदानन्द जखमोला का रैबार और अश्रुमाला कृतियां खण्डकाव्य के अन्तर्गत है।

उत्तर 8 आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक श्री वीरेन्द्र पंवार है।

उत्तर 9 नरेन्द्र सिंह नेगी का बसन्त पर आधारित गढ़वाली गीत निम्नलिखित है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,
बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा
ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,
बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।
मुखड़्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,
गल्वड़्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार
आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती
उलया जिकुड़्यूं मा छलकेणू प्यार
सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे
बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड की लोक कथाएं, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, अन्सारी रोड़, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2003
2. गढ़वाली लोककथाएं, डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डॉ0 हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. उत्तराखण्ड की लोककथाएं, डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
5. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
6. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, डॉ0 जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

7. गढ़वाली लोक गीत विविधा, डॉ0 गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

17.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के वर्तमान स्वरूप पर विस्तृत निबन्ध लिखिए .